प्रकाशन-विज्ञान

PSYCHOLOGY OF EXPRESSION

लेखक,

श्री ज्योतिस्वरूप सकलानी,

असिस्टेंट मास्टर, गवर्नमेंट हाई स्कूल, आगरा

प्रकाशक

नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ

प्रथमावृत्ति] सन् १९३२ ई० [मूल्य २)

FOREWORD.

I have great pleasure in writing this FOREWORD on the praiseworthy and creditable attempt of one of my old students of Training College, Agra, Pt. J. S. Saklani, Assistant Master, Government High School, Agra. I commend it to all teachers particularly those to whom books written in English are unapproachable.

I wish the author every success in his enterprise.

J. D. TALIB-UD-DIN.

PRINCIPAL,

Government Training College,

Dated January 11, 1932. *Lucknow.*

AS A TOKEN

OF

highest regard and appreciation of his learning and abilities this book is dedicated

TO

RAI SAHEB PT. R. S. MISRA,

M. A., C. T., P. E. S.,

INSPECTOR OF SCHOOLS,

III CIRCLE, BAREILLY.

BY

THE AUTHOR

प्रस्तावना

शिक्षक की दृष्टि में मनोविज्ञान से बढ़कर और कोई अन्य विज्ञान नहीं है। केवल विषय-ज्ञान का होना ही उसके लिये पर्याप्त नहीं है। यदि उसको बच्चों में व्यक्तित्व और मौलिकता आदि उत्कृष्ट गुणों को उत्पन्न करना है, तो उसे बच्चों का ज्ञान प्राप्त करना भी अनिवार्य है। जान आदम्स का यह कहना अक्षरशः सत्य है कि जो शिक्षक जान को लैटिन पढ़ाता हो उसे जान का जानना भी उतना ही आवश्यक है जितना कि लैटिन का वह विज्ञान जिसके द्वारा जान का अध्ययन किया जाता है, मनोविज्ञान कहलाता है। 'मनो-विज्ञान' शब्द एक समस्त पद है जो दो शब्दों के योग से बना है—'मनः' और 'विज्ञान'। अतः मनोविज्ञान वह विद्या है, जिससे मनुष्य के मन का ज्ञानोपार्जन किया जाता है अर्थात् मनुष्य की मानसिक वृत्तियाँ, मानसिक क्रियाएँ या मनोगत विचार

जाने जाते हैं। मन जैसी चञ्चल वस्तु का ज्ञान प्राप्त करना उसकी विविध गतियों के आविर्भावों के अवलोकन से या मनुष्य की अनेक कला-कौशलों के निरीक्षण से हो सकता है। उदाहरणार्थ, ताजमहल को ही लीजिए—ताजमहल को देखने से हम उसके शिल्पकारों के विचारों का तथा उसके निर्माण-काल के जन-समुदाय के भावों का भी पता लगा सकते हैं। एवम् साहित्य से भी लेखक के अन्तर्गत भाव बहुत कुछ प्रकट हो जाते हैं।

मनोविज्ञान के इतिहास का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि कई शताब्दियों तक वह अध्यात्म-विद्या का एक अंग माना जाता रहा। वर्तमान समय में वह प्राणी-विज्ञान के अन्तर्गत माना जाता है। इन परिवर्तनों के समावेश के कारण इसका विषय-क्षेत्र पहले की अपेक्षा बृहत् और उद्देश्य विभिन्न हो गये हैं। अब 'मनोविज्ञान' के अन्तर्गत अध्यात्म-विद्या, शरीर-रचना-शास्त्र, प्राणी-शास्त्र, रसायन-विद्या, नीति-शास्त्र आदि के अनेक सिद्धान्त आ गये हैं। अतः अब मनोवैज्ञानिक

का काम केवल मनुष्यों के आचरण के निरीक्षण से ही पूर्णतया सम्पादित नहीं हो सकता। उसे अब गाय, भैंस, कुत्ता, बिल्ली, बन्दर, लंगूर, चींटी इत्यादि जीव-जंतुओं के आचार-व्यवहार का अवलोकन करना भी आवश्यक है। जिससे कि वह जीव-जंतुओं और मनुष्यों के आचरण और प्रवृत्तियों की पारस्परिक तुलना सरलता और सुगमता से कर सके और अपने मनोवैज्ञानिक अनुभव को उपयोगी तथा उत्तम बना सके। मनोविज्ञान जैसे बृहत् विषय का इस छोटी पुस्तक में पूर्ण विवरण देने का साहस करना स्वभावतः अनुचित ज्ञात होता है। अतएव इस पुस्तक में केवल मन की मुख्य-मुख्य क्रियाओं का उल्लेख किया गया है और मनोविज्ञान के अन्यान्य विषयों के प्रति यत्र-तत्र संकेत मात्र कर दिया गया है।

यदि कोई व्यक्ति अपनी विद्या को कार्यरूप में परिणत करने में असमर्थ हो, तो यह कह देना उचित होगा कि उसकी विद्या निरर्थक है। गणित-शास्त्र का धुरंधर विद्वान् होते हुए भी यदि कोई पुरुष अपनी

बैठक के कमरे के लिए उसके नाप की दरी मोल नहीं ले सकता, तो 'गधे के ऊपर महाभारत' का दृष्टान्त चरितार्थ होता है। वास्तविक विद्या तो वही है, जिससे भोग, यश और सुख की प्राप्ति हो। कहा भी है—"विद्या भोगकरी यशः सुखकरी"। अध्यापक को मनोविज्ञान का प्रचुर ज्ञान होते हुए भी यदि वह उस ज्ञान की सहायता से बच्चों को उचित शिक्षा नहीं दे सकता, तो उसका ज्ञान किसी काम का नहीं। स्पष्ट है कि प्रयोगात्मक विद्या ही यथार्थ विद्या है।

इस पुस्तक में मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के विवरण के पश्चात् उन सिद्धान्तों का प्रयोगात्मक विवरण भी दिया गया है, जिनसे पाठकों का अध्ययन फलीभूत हो। प्रयोगात्मक विवरण का सम्बन्ध नितान्त भाव-प्रकाशन अथवा निबन्ध-रचना से दर्शाया गया है। लेखक आशा करता है कि वह एक पंथ और दो काज में सफल हुआ है। अर्थात् प्रस्तुत पुस्तक की रचना इस प्रकार की गई है कि वह नार्मल तथा ट्रेनिंग स्कूलों के विद्यार्थियों के लिए मनोविज्ञान की पाठ्य-पुस्तक भी हो

और साथ ही साथ उन्हें हिन्दी भाषा में निबन्ध-रचना के वैज्ञानिक शिक्षण-प्रणालियों का कुछ बोध भी हो जाय। इस लक्ष्य को ध्यान में रखकर लिखने से पुस्तक के आकार का किंचित् बृहत् होना अनिवार्य था, किन्तु पुस्तक का बड़ी होना सम्भवतः पाठकों को उपयोगी ही प्रतीत होगा। लेखक का इस विषय में अधिक कहना 'अपने मुँह मियाँ मिट्ठू' बनना है। यदि पाठकों को इस पुस्तक से कुछ भी लाभ होगा तो वह अपने परिश्रम को सफल समझेगा।

मनोविज्ञान का क्षेत्र तथा अर्थ तो पूर्वोक्त वर्णन से स्पष्ट हो गया होगा। अब प्रश्न उठता है कि मनोविज्ञान जानने की क्या युक्तियाँ हैं? प्रथम कतिपय आचार्यों ने स्वयम् अपने मन का अध्ययन किया और समझा कि अन्य मनुष्यों के मन की भी वही दशा होगी, जो उनके मन की है। इस भ्रान्त बोध से अनेक अशुद्धियाँ उत्पन्न हुईं, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य का स्वभाव एक दूसरे से भिन्न होता है। इस युक्ति से यह एक बड़ा लाभ अवश्य हुआ है कि मन के विषय में बहुत सी उपयोगी बातें

प्रकट हुई, किन्तु मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों की सत्यता पूर्णरूप से निश्चित न हो सकी। हमारे व्यवहार अधिकांश आभ्यन्तरिक या मानसिक दशाओं पर निर्भर होते हैं। इस हेतु मनोवैज्ञानिक प्रथम अपने मन की दशाओं का निरूपण करता है। दूसरों की मानसिक दशाओं का अन्वेषण वह उनके केवल व्यवहारों से कर सकता है। यदि वह उनकी आभ्यन्तरिक दशाओं का अन्वेषण किये विना उनके प्रत्यक्ष व्यवहारों को अवलोकन करना चाहे तो उसका यह प्रयत्न सर्वथा निरर्थक है; क्योंकि ऐसा कदापि नहीं हो सकता। हाँ, यह तो सम्भव है कि वह अपनी मानसिक दशाओं के द्वारा अन्य व्यक्तियों के चरित्र का अनुसंधान किसी निश्चित सीमा तक लगा सकता है। स्पष्ट है कि "आत्मौपम्येन पुरुषः प्रमाणं अधिगच्छति" के नियम से ही मनोविज्ञान के ज्ञानोपार्जन का श्रीगणेश होता है। मनोविज्ञान जानने की इस विधि को "अन्तर्दर्शिनी विधि" (Introspective way) कहते हैं।

किन्तु पूर्व कथनानुसार इस विधि से हम दूसरों की

मानसिक अवस्थाओं का पूर्ण तथा विश्वसनीय ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते। ऐसा होना यदि किंचित् समय के लिये सम्भव मान भी लिया जाय, तब भी यह सिद्धान्त बाल-प्रकृति जानने के लिये तो निरर्थक ही है, क्योंकि हम युवाओं और बच्चों की प्रकृति में तो आकाश-पाताल का अन्तर है। युवाओं की मानसिक दशाओं के आधार पर बच्चों की मानसिक दशाओं का पता लगाना भूल है। अतः बाल-प्रकृति को समझाने के लिये हमको बच्चों के विविध चरित्रों का सम्यक् अवलोकन करना चाहिए। फिर उनकी प्रकृति या मानसिक दशाओं की तुलना अपनी प्रकृति से करनी चाहिए। इस विधि को आनुमानिक विधि (Analytic way) कहते हैं।

पाठकों को ध्यान रहे कि हम युवाओं के मन में जो अब इतनी उच्च क्रियाएँ करने की सामर्थ्य है, वह अनेक उन्नतियों के कारण है। बच्चों का मन तो अभी साधारण तथा अपूर्ण उन्नति की दशा में है। उसे हमारे मन की दशा तक पहुँचने के लिये बड़ी-बड़ी उन्नतियाँ करने को हैं। ज्यों-ज्यों बच्चे बड़े होते

जायँगे, त्यों-त्यों उनके मन का विकास होता जायगा। बच्चों की मानसिक उन्नति और विकास-क्रम का ध्यान रक्खे बिना यदि उन्हें शिक्षित बनाया जाय, तो वे पाठ्य विषय को समझ न सकेंगे या उसमें रुचि न प्रकट करेंगे। इसका फल यह होगा कि शिक्षक को अपने कार्य में असफलता होगी। जिन बच्चों के मन में तर्कना-शक्ति का अभाव हो, उनसे किसी वस्तु का कारण पूछने से ज्ञात होता है कि वे कारण को नहीं बता सकते और भलाई और बुराई का अन्तर नहीं जान सकते। स्पष्ट है कि बच्चों को अध्यापक तभी शिक्षा दे सकता है, जब कि वह उनकी मानसिक तथा शारीरिक उन्नतियों से परिचित हो अर्थात् मनोविज्ञान जानता हो। इस कारण इस पुस्तक में बच्चों की मानसिक उन्नति का विकास-क्रम दर्शाया गया है। मानसिक और शारीरिक उन्नति एक दूसरे से घनिष्ठ संबंध रखती है। अतएव प्रस्तुत पुस्तक में बच्चों की मानसिक और शारीरिक उन्नति का भी भली भाँति सम्बन्ध प्रकट किया गया है।

शिशु-काल से लेकर यौवन-काल तक मानसिक विकास और उन्नति के क्रम का ध्यानपूर्वक अवलोकन करने से भी 'मनोविज्ञान' जाना जाता है। किन्तु यह विधि भी बाल-प्रकृति को निश्चित रूप से जानने के लिये उचित नहीं है; क्योंकि प्रत्येक बच्चे की प्रकृति एक दूसरे से अनेक बातों में भिन्न होती है। इस लिये इस पुस्तक में भी बहुत सी बातें अशुद्ध हो सकती हैं। लेखक पाठकों से सविनय निवेदन करता है कि इस पुस्तक में यदि कोई त्रुटियाँ पाई जायँ, तो वे कृपया उसे सूचित की जायँ, जिससे कि अगले संस्करण में उनका यथोचित निवारण हो सके।

शिक्षा-संसार में जो आधुनिक महान् परिवर्तन हो रहे हैं उन सबका उद्देश्य यही विदित होता है कि व्यक्तिगत शिक्षण-प्रणाली होनी चाहिए; क्योंकि बच्चों की प्रकृति एक दूसरे से बहुत भिन्न होती है। इन परिवर्तनों से परिचित होना शिक्षक का परम कर्त्तव्य है। इस दृष्टि से इस पुस्तक के प्रथम परिशिष्ट में अनेक नवीन प्रणालियों के उद्देश्य और सिद्धान्त वर्णन किये

गये हैं। उनके अध्ययन से पाठक यह न समझ लें कि वे मनोविज्ञान के पुराने सिद्धान्तों को विध्वंस करने के विचार से दिये गये हैं वरन् वे इसलिये दिये गये हैं कि पुराने सिद्धान्त परिपूर्ण हो जायँ।

द्वितीय परिशिष्ट जो पुस्तक के अन्त में दिया गया है, उसका मन्तव्य यही है कि पाठकों को मुख्य-मुख्य मानसिक क्रियाओं का पूर्ण ज्ञान हो जाय।

लेखक को इस पुस्तक के सम्पादन करने में जो सहायता अपने परम प्रिय मित्र श्रीमान् पं० इन्द्रनारायण अवस्थीजी, B.A. C.T., अध्यापक, नार्मल स्कूल आगरा, और श्रीयुत पं० विष्णुदेव पाण्डेयजी शास्त्री, (क्वीन्स कालेज, बनारस) संस्कृत अध्यापक गवर्नमेंट हाई स्कूल, आगरा से मिली है, उसके लिये वह उनका सर्वदा अत्यन्त अनुगृहीत है।

गवर्नमेंट हाईस्कूल,
आगरा;
५—१२—३१। } ज्योतिस्स्वरूप सकलानी।

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

बालक और युवक की प्रकृति की विभिन्नता के संबंध में कुछ प्रश्न १

उपरोक्त प्रश्नों का उत्तर... ... ... ४

नैसर्गिक बुद्धि और नाड़ी-संस्थान का परस्पर सम्बन्ध ४

सब प्राणी अपने पुरखाओं से एक विशेष प्रकार का नाड़ी-संस्थान प्राप्त करते हैं... ... ५

मनुष्य और पशु में भेद ६

नैसर्गिक बुद्धियों में कुछ अनोखी विशेषताएँ ... ८

पशु का बच्चा मनुष्य के बच्चे से कुछ काल तक अधिक चतुर रहता है १०

कृषक, मोची और पंडित के बच्चे की पारस्परिक तुलना ११

स्वभाव और शिक्षा का सम्बन्ध १२

हमारा नाड़ी-संस्थान और उसके काम ... १७

हमारी मांसपेशियाँ अर्थात् कर्मेन्द्रियाँ ... २२

शारीरिक साधन की आवश्यकता २५
बच्चों को घर पर अधिक मानसिक काम करने से
हानि २७
नाड़ी-संस्थान के भाग ३०
बृहत् मस्तिष्क का नाड़ी-संस्थान ३२
लघु मस्तिष्क के अन्दर का नाड़ी-संस्थान ... ३४
रीढ़ खम्भ की सुषुम्ना नाड़ी के अन्दर का संस्थान... ३७
प्रत्यक्ष ३८
घ्राण-संवेदन या प्रत्यक्ष ३८
चाक्षुष-प्रत्यक्ष या संवेदन ३९
उपलम्भन ४०
वास्तव में युवक को उपलम्भन ही होते हैं ... ४४
बच्चे के प्रत्यक्ष और उपलम्भन जितने अच्छे होंगे
उतना ही उत्तम और स्पष्ट उसका ज्ञान होगा ४६
बच्चों को शिक्षा देते समय किस इन्द्रिय और तज्ज-
नित ज्ञान को सर्वोच्च आसन देना चाहिए ?... ४८
बच्चों को शिक्षा देने में स्पर्शेन्द्रिय का प्रयोग और
उस (प्रयोग) की महत्ता ४९
स्पर्श के प्रकार ५३
बच्चे को बिना हाथ-पैर फैलाए और हिलाए अपने
निज शरीर और आत्मा का ज्ञान भी नहीं
हो सकता है ५८

स्पर्श-क्रिया पर ही हमारी संतान की शिक्षा निर्भर है ६३
इन्द्रियजनित ज्ञान के विकास का विशेष क्रम ६४
'शब्द' पढ़ाने से पूर्व बालक में प्रत्यक्ष तथा उपलम्भन उत्पन्न करने चाहिए ७०

द्वितीय अध्याय

इन्द्रियों के साधन और उनके उचित विकास के निमित्त कौन पाठ होने चाहिए ? ... ७४
निकटवर्ती स्थूल पदार्थों के विषय में पाठ ... ७५
खिलौने के विषय में पाठ ७६
घर, पाठशाला और मार्ग के निकटवर्ती पशु-पक्षी, पेड़-पौदे और फल-फूलों के विषय में पाठ ... ८२
बच्चों का शरीर और उसके अंगों के विषय में पाठ ८६
घर, पाठशाला और मार्ग की वस्तुओं के विषय में वार्तालाप ९१
आज्ञा के विषय में कुछ मौखिक पाठ... ... ९१
विशेषणों के ऊपर पाठ ९५
खेल ९७

तृतीय अध्याय

अवलोकन १०१

व्यक्तिवाचक, जातिवाचक और सूक्ष्म भाव ... १०१
बुद्ध्यात्मक व्याख्या १०७
सूक्ष्म भाव बच्चे में किस प्रकार उत्पन्न किये जायँ ? १११
अवलोकन करने के निमित्त किसी लक्ष्य का होना आवश्यक है ११३
अवलोकन किसे कहते हैं ? ११६
अवलोकन-शक्ति बच्चों में किस प्रकार जाग्रत् की जाय... ... ... ११७
प्रयोजनजनक प्रश्न ११९
युवक और बच्चा एक ही वस्तु के प्रति विभिन्न व्यवहार क्यों प्रकट करते हैं ? १२३
बालकों की निरीक्षण-शक्ति के विकास के निमित्त पाठ-सूची १२५
अनेक पाठादर्श (लाही के कीड़े, लाही के कीड़ों को मारने की युक्तियाँ, लिफ़ाफे और बड़े मेंढक) १२९
लिखित काम का आरम्भ १३७
अध्यापक का कर्त्तव्य १४०

चतुर्थ अध्याय

कल्पना १४३
प्रतिमा १४३

प्रतिमा की स्पष्टता तथा शुद्धता किन-किन बातों पर निर्भर है ? १४६
प्रतिमा और उपलम्भन का भेद १४७
कल्पना-शक्ति किसे कहते हैं ? १५०
कल्पना-शक्ति के प्रकार १५१
फुटबाल का वर्णन १५७
प्रकाशन-कल्पना-शक्ति १५६
निर्माण-कल्पना-शक्ति १५६
उत्पादन-कल्पना-शक्ति १६०
नोट (पाठ के दो प्रधान अंग) १६१
कल्पना-शक्ति के विकास के निमित्त निबन्ध-पाठों की सूची... ... ... १६३
पाठों के नमूने (बिल्ली, छाता, रामलीला और श्याम पट्ट के संकेत) १६६
कहानी-रचना १७१
कहानी-रचना की प्रथम अवस्था १७२
सोने की अँगूठी चुरानेवाले नौकर की कहानी १७३
एक चिड़िया की कहानी १७४
नोट १७६
कहानी वर्णन करते समय ध्यान में रखने योग्य बातें १७७
भौगोलिक कहानियाँ (पिगमियों की कहानी नमूने

के ढंग पर) १८२
ऐतिहासिक कहानियाँ (रानी पद्मिनी की कहानी नमूने के ढंग पर) १८४
कहानी-रचना की दूसरी अवस्था १८५
ध्यान में रखने योग्य बातें... ... ... १८५
दुर्दांत सिंह की कहानी १८७
राजा दिलीप की कहानी... ... ... १८६
कहानी-रचना की तृतीय अवस्था १६३
ध्यान में रखने योग्य बातें १६३
संकेत १६४
चित्रों का पढ़ना १६५
तस्वीरों के प्रयोग से लाभ १६६
किस प्रकार के चित्र का किस कक्षा में किस रीति से निबन्ध-शिक्षा प्रदान करने में प्रयोग करना चाहिए ? २०५
हिन्दी-रीडर के चित्रों का प्रयोग २०६
चित्रों का प्रयोग हाई स्कूल की छठी और वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल की चौथी कक्षा में ... २१०
चित्र-पहेलिकाओं का प्रयोग २१६
पत्र-लेखन २१६
हाई स्कूल की चौथी या मिडिल वर्नाक्यूलर स्कूल की दूसरी कक्षा में पत्र-लेखन २१६

छोटे बच्चे झूठी कहानियों या बातों को सच्ची क्यों
समझते हैं ? २२५
अध्यापक को क्या करना चाहिए कि बच्चे सच और
झूठ का भेद जान सकें २२६

पञ्चम अध्याय

विभाव के विषय में कुछ अधिक बातें ... २२७
बच्चे सिद्धान्त कैसे निश्चित करते हैं ? ... २२८
निर्णय-शक्ति की परिभाषा २३०
निर्णयन की व्याख्या २३०
भेद की रीति २३१
समानता की रीति २३१
नवीन सिद्धान्तों को निश्चित करवाने में अध्या-
पक को कौन सी रीति काम में लानी चाहिए ? २३२
परिभाषा क्या वस्तु है और कब होनी चाहिए ? २३४
साधारण भाव २३४
निर्णयन और विभावना का सम्बन्ध २३७
फलितार्थ (विभाव) २३८
शिक्षा-विधि के पाँच अंग (हरबर्टाचार्य के आधार
पर) २३९
फलितार्थ (निर्णय) २४४
विवेक-शक्ति २४६

विवेक-शक्ति की परिभाषा २४६
उसके प्रकार २४६
निगमनात्मक तर्क तथा आगमनात्मक तर्क में अन्तर २५०
आगमनात्मक और निगमनात्मक रीतियाँ ... २५२
हमें उनमें से किस रीति से काम लेना चाहिए ? २५३
आरम्भ ही से निगमनात्मक रीति से काम लेने के दोष २५५
आगमनात्मक रीति के प्रयोग में ध्यान देने योग्य बातें २५८
बालकों से जो काम कराया जाय वह उनके वास्तविक जीवन से सम्बद्ध हो २६०
फलितार्थ (विवेक) २६१
निर्णय तथा विवेक-शक्तियों के उचित विकास के निमित्त निबन्ध-पाठों की सूची और पाठादर्श २६४
निबन्ध-लिखना सिखाने की रीति २७२
वाद-विवाद २७३
वाद-विवाद के लाभ २७४
युक्ति २७६
वाक्य-परिवर्त्तन की शिक्षा २८०

छठा अध्याय

लिखित काम का संशोधन ३०१

लड़कों से मौखिक काम की अपेक्षा लिखित काम अधिक कराने का कारण ३०१
लिखित काम की अशुद्धियों के संशोधन की उचित रीति ३०४
लिखित काम की अशुद्धियों को ठीक करने के निमित्त कुछ संकेत ३०५
लिखित काम करते समय बालकों के बैठने का ढंग ३१०
हकलानेवाले बालकों के विषय में कुछ बातें ... ३१४
लड़के क्यों हकलाया करते हैं ? ३१४

सप्तम अध्याय

संकल्प और व्यक्तित्व ३१८
शारीरिक, मानसिक और आत्मिक साधनों का सम्बन्ध तथा उनकी आवश्यकताएँ ... ३१८
बच्चे के मस्तिष्क को दो काम करने पड़ते हैं; किन्तु युवक के मस्तिष्क को केवल एक ही काम करना पड़ता है ३२१
भाव ३२२
भाव का मन पर प्रभाव ३२३
हस्तादि चालन की नैसर्गिक रुचि ३२५
खेल की नैसर्गिक रुचि ३२६
सुख को ढूँढ़ने और दुःख से बचने की नैसर्गिक रुचि ३२८

दंड और पारितोषिक की प्रणाली ३२९
भाव के प्रकार (स्वकीय भाव, सामाजिक भाव, सौन्दर्य विवेकी भाव, और धार्मिक भाव) ... ३३४
बाल्यकाल की तीन अवस्थाएँ ३३५
प्रथम बाल्यकाल ३३६
द्वितीय बाल्यकाल ३३८
तृतीय बाल्यकाल ३४२
प्रेरक ३४५
संकल्प ३४८
संकल्प में मन की सभी क्रियाएँ पाई जाती हैं ... ३४९
संकल्प से शिक्षा-प्रदान में लाभ ३५०
संकल्प के दुष्परिणाम ३५१
शुभ और अशुभ संकल्प ३५१
शुभ संकल्प की ही साधना शिक्षा का ध्येय है ... ३५१
संकल्प को परिमित स्वतंत्रता ही दी गई है ... ३५२
शुभ संकल्प के लक्षण ३५८

प्रथम परिशिष्ट

अध्यापक को मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का ज्ञान अवश्य होना ३६१
कक्षा-प्रणाली से हानियाँ ३६३
मोन्टेस्सरी-प्रणाली ३६४

डाल्टन-प्रणाली ३६५
स्वतंत्रता ३६८
होअर्ड-शिक्षा-प्रणाली ३७०
ग्रे-प्रणाली ३७३
प्रोजेक्ट-प्रणाली ३७४

द्वितीय परिशिष्ट

स्मृति या स्मरण-शक्ति ३७७
स्मृति का मानसिक जीवन से संबंध ... ३७७
स्मृति के गुण ३७८
उत्तम स्मृति के चार लक्षण ३८०
स्मृति के विषय में प्राचीन भ्रान्त धारणा ... ३८०
स्मृति के दो प्रकार ३८२
अभ्यास जन्य स्मृति ३८३
सहज स्मृति ३८३
भाव साहचर्य ३८६
विपरीतता का नियम ३९०
सादृश्य नियम ३९१

तृतीय परिशिष्ट

कृतज्ञता-प्रदर्शन ३९५

प्रकाशन-विज्ञान

प्रथम अध्याय

बालक और युवक की प्रकृति की विभिन्नता के संबंध में कुछ प्रश्न

(क) (१) मुर्गी का बच्चा अंडे से निकलते ही अनाज के छोटे-छोटे दाने चुगने लगता है और इधर-उधर चलना-फिरना आरम्भ कर देता है, किंतु मनुष्य का बच्चा पैदा होने के बहुत दिनों बाद इस लायक होता है। मनुष्य और मुर्गी के बच्चों में यह अन्तर क्यों पाया जाता है? बत्तक का बच्चा भी अंडे से निकलते ही तैरने लगता है। विना सीखे वह कैसे तैरने लगता है?

(२) कृषक और मोची के बच्चे की तुलना करने से विदित होता है कि कृषक का बच्चा कृषि-सम्बन्धी कार्यों (यथा पौदों को पानी देने, उनकी देखरेख करने) में विशेष रुचि प्रकट करता है, किन्तु मोची का बच्चा चमड़े की वस्तुओं के बनाने में अधिक ध्यान देता है । उसे कृषि-सम्बन्धी कार्य अच्छे नहीं लगते । कृषक और मोची के बच्चों की मनोवृत्तियों में इतना भेद क्यों पाया जाता है ?

(ख) (३) एक, दो या तीन वर्ष के बच्चे को घड़ी देकर देखो, वह क्या करता है ? वह उसे थोड़ी ही देर में तोड़-फोड़ डालता है । यदि किसी युवक को घड़ी दी जाती है तो वह उसे बड़ी सावधानी से रखता है । उसको टूटने-फूटने नहीं देता । क्या कारण है कि बच्चा और युवक घड़ी के प्रति इतना भिन्न व्यवहार प्रकट करते हैं ?

(४) रेल के एंजिन को बड़े मनुष्य भी देखते हैं और छोटे बच्चे भी; पर बड़े मनुष्य एंजिन को स्टेशन पर आते देखकर प्रसन्न होते हैं और बच्चे उसे देखकर भयभीत होते हैं । इसका क्या कारण है कि बच्चे और मनुष्य एक ही वस्तु (एंजिन) को देखते हैं, किन्तु बच्चे तो उसे देखकर डरते हैं और बड़े मनुष्य प्रसन्न होते हैं ?

(५) यदि किसी निर्धन की झोंपड़ी में आग लग जाती है, तो बड़े मनुष्य उसे देखकर पश्चात्ताप करते हैं; किन्तु छोटे बच्चों को उस झोंपड़ी का जलना एक प्रकार

का खेल-सा जान पड़ता है। वे उसे देख-देखकर प्रसन्न होते हैं। बच्चों और बुड्ढों के भावों में यह अन्तर क्यों पाया जाता है?

(ग) (६) एक समय मैंने कुछ पाँच वरस के बच्चों से वकरी का एक चित्र खींचने को कहा। उनके खींचे हुए चित्रों के देखने से मालूम हुआ कि उनमें से अनेक बच्चों ने वकरी की पाँच टाँगें बनाई हैं। वकरी को वे अकसर देखते हैं, फिर भी उन्होंने उसकी टाँगें पाँच क्यों बनाई?

(घ) (७) बच्चे कभी-कभी लाठी की सवारी करते हैं और अपने मन में कल्पना करते हैं कि वे सचमुच घोड़े ही पर सवार हैं। बड़े मनुष्य उनकी इस कल्पना पर हँसते हैं, क्योंकि वे उसे असत्य समझते हैं। इसका क्या कारण है कि बच्चे ऐसी कल्पना को सत्य और बड़े मनुष्य उसे मिथ्या समझते हैं?

(८) इसी प्रकार मैंने देखा है कि बच्चे जब गुड़ियाँ खेलते हैं, तो वे उन्हें कपड़े पहनाते हैं, खाना देते हैं, अपने साथ पलँग पर सुलाते हैं, और शीत ऋतु में उन्हें गरम कपड़े पहनाते हैं और रुई के अंदर रखते हैं कि कहीं उन्हें ठंढ न लग जाय और वे अस्वस्थ न हो जायँ।

(ङ) (९) छोटे बच्चे यदि पाठशाले जा रहे हों और कहीं रास्ते में कोई मदारी बँदरिया नचाते मिल जाय तो वे वहीं रुक जायँगे और बँदरिया के तमाशे देखने लगेंगे किन्तु बड़े लड़के मदारी के तमाशे के प्रति आकर्षित नहीं होंगे

और सीधे पाठशाले चले जायँगे। छोटे और बड़े लड़कों के स्वभाव में इस विभिन्नता के होने का क्या कारण है?

(१०) बच्चों के पढ़ते समय यदि कोई मिठाईवाला कक्षा के आगे से निकलता है, तो उनका ध्यान पढ़ाई की ओर से हटकर मिठाई की ओर लग जाता है। उसका परिणाम यह होता है कि जो पाठ पढ़ाया जाता है वह उनकी समझ में नहीं आता। यदि बड़ी कक्षाओं के लड़कों के सामने से मिठाईवाला चाहे जितनी बार भी निकले पर वे उसकी ओर ध्यान नहीं देंगे और अपने पाठ को पूर्ववत् ध्यान से सुनेंगे। ऐसा क्यों होता है?

उपरोक्त प्रश्नों का उत्तर।

ये प्रश्न यद्यपि बड़े साधारण और सरल प्रतीत होते हैं, किन्तु वे अध्यापकों के बड़े काम के हैं और रहस्ययुक्त हैं। अतएव उनका संक्षिप्त में उत्तर दे देना आवश्यक है। नीचे दिये हुए उत्तर मनोविज्ञान के आधार पर दिये गये हैं:—

नैसर्गिक बुद्धि और नाड़ी-संस्थान का परस्पर सम्बन्ध।

(क) भाग के प्रश्नों का उत्तर:—मुर्गी के बच्चे के पुरखा सैकड़ों और हज़ारों वर्षों से चुगने और चलने-फिरने का कार्य कर रहे हैं। अतः उनके नाड़ी-संस्थान में एक विशेष प्रकार का सम्बन्ध स्थापित हो गया है, जो कई पीढ़ियों से उत्तरोत्तर दृढ़ होता गया है। नाड़ी-संस्थान के भिन्न-भिन्न विभागों में इतना

घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया है कि आजकल के मुर्गी के बच्चे अत्यन्त सरलता और विना किसी वाधा के दाने चुग लेते हैं और इधर-इधर चल-फिर लेते हैं, चाहे वे तत्काल ही अंडे से क्यों न निकले हों।

सब प्राणी अपने पुरखाओं से एक विशेष प्रकार का नाड़ी-संस्थान प्राप्त करते हैं।

मनोविज्ञान-वेत्ताओं का मत है कि प्रत्येक बच्चा, चाहे वह छोटे-छोटे जीवधारियों का हो चाहे मनुष्य का। अपने मा-वाप से केवल शरीर ही नहीं प्राप्त करता वरन् एक ऐसा नाड़ी-संस्थान (Nervous System) भी पाता है, जिसमें उस कार्य के करने की जन्म ही से स्वतः नैसर्गिक बुद्धि (Natural instinct) प्रस्तुत रहती है, जिसको उसके पुरखे (वाप, दादा, परदादा, इत्यादि।) सैकड़ों और सहस्रों वर्षों से करते आये हैं। छोटे जीवधारियों में केवल जातिवाचक और व्यक्तिवाचक भावनाएँ होती हैं (जिनका वर्णन आगे किया जायगा)। अतः उनका मन इतना उच्च कोटि का नहीं होता कि उसमें विवेक-शक्ति हो। वे कार्य-कारण से अनभिज्ञ होते हैं। यही नहीं, उनमें निर्णयशक्ति का अभाव भी होता है। अतएव यह कह सकते हैं कि उनमें इतना उत्तम मन नहीं होता कि वह उनके कार्यों को चला सके। उनके सम्पूर्ण कार्य प्रायः उनकी नैसर्गिक बुद्धियों

द्वारा ही चलते हैं; यथा गाय का बाघ या सिंह से डरना।

यद्यपि गाय सिंह से भय खाती है, किन्तु उसे यह ज्ञान नहीं होता कि जब सिंह उसका वध करेगा तो उसके प्राणों को कष्ट होगा; वह यह नहीं जानती कि यदि वह मर जायगी तो उसका दूध-पीता बच्चा बड़ा दुःख पावेगा। वह इन गूढ़ बातों को नहीं समझती, किन्तु फिर भी सिंह को देखकर डरती है। इससे विदित होता है कि (यद्यपि उसका मन इतना उच्च कोटि का नहीं है कि उसमें विवेक और निर्णयशक्तियाँ हों और उसको मन का पद दिया जा सके, तथापि उसके कार्य चलते ही रहते हैं।) उसमें कोई ऐसी प्राकृतिक शक्ति होती है, जिसके कारण गाय सिंह से डरती है अथवा यों कहिए कि उसमें डरने की कोई नैसर्गिक बुद्धि जन्म ही से प्रस्तुत रहती है, जिसके कारण वह भय-जनक वस्तुओं से डरा करती है। एवम् गाय में अपने बच्चे का लालन-पालन करने की दूसरी नैसर्गिक बुद्धि होती है। मनुष्य की तरह गाय अपने बच्चे का लालन-पालन अपना कर्त्तव्य समझकर या इस हेतु से नहीं करती कि जब वह बुड्ढी होगी, तो उसका बच्चा उसकी सेवा-शुश्रूषा करेगा। यदि गाय अपना कर्त्तव्य समझकर या स्वार्थ से बच्चे का लालन-पालन करती, तो हम कह

मनुष्य और पशु में भेद।

सकते थे कि वह विवेक-शक्ति से काम लेती है। ऊपर के उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि छोटे जीवधारियों के लगभग प्रत्येक कार्य नैसर्गिक बुद्धि द्वारा ही हुआ करते हैं। यहाँ पर लगभग शब्द के ऊपर अधिक ध्यान देना चाहिए। हम देखते हैं कि गाय अपने स्वामी को पहचान लेती है। वह उसको दूसरे मनुष्यों से भिन्न समझती है। इसी प्रकार कुत्ता अपने स्वामी को पहचानता है। गाय और कुत्ते यह भी जान लेते हैं कि यह बिल्ली है, यह साँप है, यह पेड़ है, यह घर है, इत्यादि-इत्यादि। उनका यह कार्य उपरोक्त छोटे मन के द्वारा होता है, जिसको वास्तव में मन की पदवी देना अनुचित है; क्योंकि उसमें उत्कृष्ट मानसिक क्रियाओं के करने की शक्ति का अभाव होता है। (मन की उच्च और उत्कृष्ट क्रियाओं का विस्तृत वर्णन आगे चलकर किया जायगा।) यहाँ पर केवल इतना कहना पर्याप्त होगा कि गाय और कुत्ते के मन में कल्पना (आगे-पीछे की सोचना जिसका एक काम है), विवेक (अमुक कार्य करना चाहिए या नहीं—यह काम जिसका एक अंग है), निर्णय (अमुक काम कर ही दो—ऐसा निश्चय करना जिसका एक काम है), आदि शक्तियाँ नहीं होतीं। मनुष्य में उत्तम मन होता है अर्थात् मनुष्य के मन में विभावना (जातिवाचक तथा व्यक्तिवाचक भावना) शक्ति के अतिरिक्त निरीक्षण (Obser-

vation), कल्पना (Imagination), विवेक (Reasoning), निर्णय (Judgment), इत्यादि सभी उच्च-कोटि की शक्तियाँ होती हैं। अतः मनुष्य के सब कार्य मन के द्वारा हुआ करते हैं। उसमें नैसर्गिक बुद्धियाँ भी होती हैं, जिनका वह यथासमय उपयोग करता रहता है, किन्तु मन का उन शक्तियों पर भी प्रभुत्व रहता है और वह छोटे जीवधारियों के मन की तरह केवल नैसर्गिक बुद्धियों के ही वशीभूत नहीं रहता। मनुष्य का बच्चा इस संसार में मुर्गी या बत्तक के बच्चे की तरह पिता से प्राप्त मन तथा बुद्धियों को लेकर आता है। मानव-जाति के बच्चे की मानसिक शक्तियाँ एक विशेष क्रम से उन्नत तथा विकसित होती हैं। एवम् उसकी नैसर्गिक बुद्धियों के आभास होने का भी एक विशेष क्रम है। इस क्रम के अनुसार मनुष्य के बच्चे में चलने-फिरने की नैसर्गिक शक्ति उसके उत्पन्न होने के ७-८ महीने बाद आती है, किन्तु मुर्गी के बच्चे में दाने चुगने और इधर-उधर चलने-फिरने की शक्ति अंडे से बाहर निकलते ही आ जाती है। यही कारण है कि बत्तक के बच्चे उत्पन्न होते ही बिना तैरना सीखे ही तैरना आरम्भ कर देते हैं।

नैसर्गिक बुद्धियों में कुछ अनोखी विशेषताएँ।

नैसर्गिक बुद्धियों में जो विलक्षण विशेषताएँ होती हैं वे अध्यापकों के हितार्थ नीचे लिखी गई हैं.—

(अ) वे भिन्न-भिन्न जीव-जाति में भिन्न-भिन्न समय पर विशिष्ट क्रम से प्रकट होती हैं।

(आ) उचित प्रयोग न करने से उनका ह्रास होता है।

(इ) उचित प्रयोग से उनका विकास और वृद्धि होती है।

(ई) छोटे जीवधारी अपने कार्य विशेषतः नैसर्गिक बुद्धियों द्वारा करते हैं, इस हेतु उनमें जन्म-काल से ही अनेक नैसर्गिक बुद्धियाँ उपस्थित रहती हैं। यदि ऐसा न होता तो वे अपने काम कैसे चला सकते ?

(उ) नैसर्गिक बुद्धियों का असामयिक प्रयोग हानिकारक होता है।

(ऊ) नैसर्गिक बुद्धियाँ वे प्राकृतिक और अन्तरुत्पन्न शक्तियाँ हैं, जिनको हम अपने पूर्वजों से पाते हैं और जो हमें किसी विशेष कार्य करने के निमित्त प्रेरित करती हैं। (प्रत्येक मनुष्य का धर्म है कि वह अपनी संतान को उत्तम नैसर्गिक बुद्धियाँ उपार्जित करके दे; क्योंकि सन्तान की भावी उन्नति उत्तम नैसर्गिक बुद्धियों पर बहुत कुछ निर्भर है।) पशु-पक्षी विशेषतः नैसर्गिक बुद्धियों से काम लेते हैं। इस कारण मुर्गी या बत्तक के बच्चे में उत्पन्न होने के कुछ काल पश्चात् तक मनुष्य के बच्चे की अपेक्षा अधिक नैसर्गिक बुद्धियाँ होती हैं। अतएव

मुर्गी या बत्तक का बच्चा मनुष्य के बच्चे से अधिक बुद्धिमान् जान पड़ता है। किन्तु मनुष्य का बच्चा ज्यों-ज्यों बड़ा होता जाता है, उसके मस्तिष्क की वृद्धि उसके मन का विकास और उसकी नैसर्गिक बुद्धियों का प्रसार भी यथाक्रम होता जाता है। मन और नैसर्गिक बुद्धियों से बच्चा काम लेने लगता है। फलतः वह छोटे जीवधारियों के बच्चों से (जिनके कार्य अधिकांश नैसर्गिक बुद्धियों द्वारा संचालित होते हैं) आगे चलकर कहीं अधिक चतुर और बुद्धिमान् हो जाता है और इतना मनीषी हो जाता है कि बुद्धि-सम्बन्धी कार्यों में उसकी उनसे (याने छोटे जीवधारियों के बच्चों से) तुलना करना हास्यप्रद ज्ञात होता है।

पशु का बच्चा मनुष्य के बच्चे से कुछ काल तक अधिक चतुर रहता है।

स्पष्ट है कि अनेक नैसर्गिक बुद्धियों की उपस्थिति के कारण मुर्गी या बत्तक का बच्चा प्रारम्भ में मनुष्य के बच्चे से अधिक बुद्धिमान् होता है। नाड़ी-संस्थान के अनेक तंतुओं में पारस्परिक संयोग होने और नैसर्गिक बुद्धियों के आधिक्य से मुर्गी का बच्चा अंडे से निकलते ही अनाज के दाने सुगमता से चुगने लग जाता है और इधर-उधर घूमना प्रारम्भ कर देता है और बत्तक का बच्चा अंडे से निकलते ही बिना किसी बाधा के तैरना आरम्भ कर देता है।

कृषक के बच्चे के मा-बाप, दादा-परदादा, नाना-नानी, इत्यादि, सभी खेती का काम करते आये हैं। इसलिए उसने उनसे ऐसा नाड़ी-संस्थान पाया है, जिसमें कृषि-सम्बन्धी कार्यों के करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। इसी प्रकार मोची के बच्चे ने भी अपने पुरखों से ऐसा नाड़ी-संस्थान प्राप्त किया है, जिससे चमड़े के काम करने में उसकी स्वाभाविक रुचि होती है। यही कारण है कि कृषक का छोटा बच्चा पौदों के लगाने और उनके पालन-पोषण करने में अधिक ध्यान देता है और मोची का छोटा बच्चा चमड़े की चीज़ों के बनाने में खूब मन लगाता है। उनके बाल्यावस्था के खेल भी ऐसे ही कार्य-सम्बन्धी हुआ करते हैं।

कृषक, मोची और पंडित के बच्चे की पारस्परिक तुलना (Comparision)

पंडित और योद्धा के बालकों की तुलना करने से भी यह सिद्धांत पुष्ट होता है। किसी पंडित के छोटे बच्चे के चरित्र का अवलोकन करने से विदित होता है कि वह पुस्तकों के प्रति अधिक रुचि प्रकट करता है। यही नहीं, वह शुद्धता से रहना भी पसन्द करता है। वह स्वभाव से ही धीमान्, क्षमावान् और धीर दिखाई पड़ता है, किंतु किसी योद्धा के बालक की प्रवृत्तियों का निरीक्षण करने से ज्ञात होता है कि उसमें शूरता के चिह्न अधिक दिखाई पड़ते हैं। वह अन्य बालकों से बहुधा लड़ा करता है, उन्हें मारने-पीटने में विशेष भाग लेता है। वह चंचल प्रकृति का जान पड़ता

है। यदि पंडित और योद्धा के बड़ी अवस्थावाले बालकों के विषय में ये बातें कही जायँ, तो कदाचित् कोई महाशय यह कहें कि उनकी प्रकृतियों में जो विभिन्न गुण पाये जाते हैं, वे उनके घर और पाठशाला की शिक्षा के प्रभाव के फल हैं, किंतु छोटे-छोटे बालक जिन्होंने अभी कोई शिक्षा नहीं पाई है (न घर की और न पाठशाला की) उनके विषय में ऐसी शंका करने का कोई स्थान नहीं। सच तो यह है कि प्रत्येक बच्चा, चाहे वह छोटे जीवधारियों का हो या मानव-जाति का, अपने मा-बाप से केवल शरीर ही नहीं पाता, वरन् एक नाड़ी-संस्थान भी प्राप्त करता है, जिसमें उसके मा-बाप के कुछ-न-कुछ गुण अवश्य होते हैं। या यों कहिए कि उसमें मा-बाप के स्वभाव का प्रभाव बड़े या छोटे अंश में अवश्य उपस्थित रहता है।

स्वभाव और शिक्षा का सम्बन्ध

जिस काम की ओर हमारी मानसिक प्रवृत्ति होती है अथवा जो काम हमें स्वभाव से ही प्रिय लगता है, उसके करने में हमें आनन्द मिलता है। विपरीत इसके, जो काम हमारे स्वभाव के प्रतिकूल होता है, उसका करना हमें कष्ट-प्रद मालूम होता है। यहाँ पर हम यह जता देना हितकर समझते हैं कि हमारे सम्पूर्ण कार्य हमारी प्रकृति अथवा स्वभाव के अनुकूल ही नहीं होने चाहिए। ऐसा होने से मनुष्य और जानवर में कुछ भेद नहीं होगा; अतएव

प्रकृति अर्थात् स्वभाव का शिक्षा-प्रदान करने में उचित रीति से प्रयोग करना चाहिए। स्वभाव को उन कार्यों के करने में लगाना चाहिए, जिनको मनुष्य-समाज ने हितकर बताये हों। यदि शिक्षा देने में किसी बालक की प्रकृति का ध्यान न रक्खा जायगा, तो वह पढ़ाई-लिखाई को अप्रिय समझेगा और फल यह होगा कि वह बड़ी कठिनाई से शिक्षित हो सकेगा। बच्चों में अनुकरण की नैसर्गिक बुद्धि होती है। उनका स्वभाव होता है कि अपने मा-बाप तथा आसपास के मनुष्यों का अनुकरण करें। इस अनुकरण का, नैसर्गिक बुद्धि का अभीष्ट प्रयोग यही है कि बच्चों के अनुकरण के निमित्त उच्च कोटि के आदर्श होने चाहिए। यदि इस नैसर्गिक बुद्धि का उचित प्रयोग न किया जायगा, तो बच्चे पूरे बन्दर बन जायँगे और योग्य नागरिक न होंगे। "दुल्लर पूत बिल्लर होंय।"

देखा गया है कि यदि कोई बच्चा किसी हकले की नकल करता है, तो कुछ काल पश्चात् वह भी हकलाकर बोलने लगता है। ऐसे ही बहुत से लड़के नाक के स्वर से बोलनेवाले का अनुकरण किया करते हैं। परिणाम यह होता है कि वे बहुधा नाक से बोलने लगते हैं। मा-बाप का कर्त्तव्य है कि यदि उनके बच्चे ऐसे कामों का अनुकरण करें, तो वे तुरन्त उनको समझावें और उन्हें ऐसे अनुचित कार्यों के करने से रोकें, अन्यथा

परिणाम बुरा होगा। शिक्षक और माता-पिता के लिये यह परम आवश्यक है कि स्वयं शुद्ध और स्पष्ट बोलें कि बच्चे भी शुद्ध और स्पष्ट बोलने की बान डालें। ऐसे ही बच्चों में डर स्वाभाविक होता है. जिनके मा-बाप भय की नैसर्गिक बुद्धि का उचित प्रयोग नहीं जानते वे लड़कों में अनुचित भय उत्पन्न करने के कारण होते हैं। किसी वस्तु के लिये हठ करने से रोकने के निमित्त अशिक्षित मा-बाप बच्चों को अनुचित डर दिलाते हैं; यथा:— यदि घर के किसी कोने में दूसरे बच्चों के भाग की मिठाई रक्खी हो और एक बच्चे ने अपना भाग खा लिया हो और दूसरों के भाग को लेने की इच्छा करता हो, तो वे बच्चे से कहते हैं कि उस कोने में हव्वा रहता है। उसे हव्वा का भय देकर वे अपने उद्देश्य सिद्ध करते हैं। कभी-कभी ऐसा होता है कि बच्चा बर्तनों को इधर-उधर उठाकर पटकता है, उनको बजाता है, और उन्हें तोड़-फोड़ भी डालता है। (बच्चा कभी चुप बैठना नहीं जानता। उसके हाथ-पैर सर्वदा काम करने के लिए उत्सुक रहते हैं।) अतः अनेक मा-बाप इस विपत्ति के निवारणार्थ उन्हें यह डर दिलाते हैं कि पानी के बर्तनों में नाकू रहता है और इस प्रकार अपना अर्थ सिद्ध किया करते हैं। इस तरह बालकों में भूत-प्रेत का डर उत्पन्न करना हानिकारक है। ऐसे अनुचित भय के उत्पन्न करने से

बच्चों की आत्मा दुर्बल हो जाती है। डर की नैसर्गिक बुद्धि का सद्‌उपयोग यह है कि लड़कों में मिथ्या भाषण का और छल-कपट के कामों से बचने का उत्साह उत्पन्न किया जाय। जिससे वे बच्चे बड़े होकर अच्छे चाल-चलनवाले बनें और लोकप्रिय हों।

नैसर्गिक बुद्धियों के विषय में हम पहले ही कह आये हैं कि प्रकट होने से पहले उनका प्रयोग करना अत्यन्त हानि-कर है। मानव-जाति के बच्चों में चलने-फिरने की नैसर्गिक शक्ति प्रायः ७-८ मास की अवस्था में प्रकट होती है। वे मा-बाप, जो इस बात से अनभिज्ञ होते हैं, अपने ४-५ मास के ही बच्चों के हाथ पकड़-पकड़ कर मनोल्लास के निमित्त इधर-उधर चलाया फिराया करते हैं। परिणाम यह होता है कि जब बच्चों का चलने-फिरने का यथोचित समय आता है, तो वे अनैच्छिक चाल से चलने लगते हैं। उनके पैर उलटे-सीधे धरती पर पड़ते हैं। जब वे बड़े होते हैं और अनोखी चाल से चलते हैं तो अन्य लोग उन्हें देखकर हँसते हैं। इसी प्रकार बहुत से मा-बाप बालकों का छोटी ही अवस्था में विवाह कर देते हैं; क्योंकि वे यह नहीं जानते कि बालकों में संतानोत्पादन-शक्ति कितने वर्ष की आयु में प्रकट होती है। अस्तु, परिणाम यह होता है कि बच्चों में अनेक बुरी बान पड़ जाती हैं और वे असा-मयिक मृत्यु के ग्रास हो जाते हैं।

यदि बच्चों को शिक्षा देने में उनकी प्रकृति का उचित ध्यान नहीं रक्खा जाता, तो मा-बाप और बालकों को अनेक भयंकर परिणाम भोगने पड़ते हैं। यदि शिक्षा केवल प्रकृति से सम्बद्ध कर दी जाय, तो जैसा पहले कह आये हैं, मनुष्य और जानवर में कोई भेद न रह जायगा। सिद्धांत तो यह है कि अध्यापक और मा-बाप युक्ति और चतुराई से बालकों की प्रकृति का यथोचित सहारा लेते हुए उनको इस प्रकार शिक्षा दें कि वह उन्हें रोचक तथा उपयोगी जान पड़े। इस सिद्धांत पर यदि शिक्षा दी जायगी, तो बच्चे उसमें सहर्ष ध्यान देंगे। उनकी शक्तियों पर अनुचित भार नहीं पड़ेगा। वे शिक्षित भी बनेंगे और साथ ही साथ आरोग्य भी रहेंगे। वह शिक्षा किस काम की जिसको प्राप्त करने के पश्चात् लड़के क्षयरोग से पीड़ित, अन्धे और कुबड़े बन जायँ। शिक्षा का तात्पर्य तो यही है कि बच्चे बुद्धिमान्, बलवान् और सदाचारी बनें। शिक्षा प्राप्त करने के उपरांत यदि इन तीनों बातों में से एक भी कम रह गई या अन्य की अपेक्षा बढ़ गई तो यह कहना पड़ेगा कि शिक्षा ठीक नहीं हुई।

(ख) से लेकर (ङ) भाग के प्रश्नों का उत्तर मन की क्रियाओं पर अवलम्बित है। अतः वे उत्तर तब तक समझ में नहीं आ सकते जब तक कि पाठकों को मन की क्रियाओं का कम से कम मोटा ज्ञान (Rough Idea) न

हो। मन की क्रियाओं का ज्ञान तब तक नहीं हो सकता जब तक हम नाड़ी-संस्थान और उसके कार्यों के विषय में कुछ थोड़ा बहुत न जान लें। अतएव अब हम नाड़ी-संस्थान का प्रकरण प्रारम्भ करेंगेः—

(ख) भाग के प्रश्नों का उत्तरः—

हमारा नाड़ी-संस्थान और उसके काम

Nervous System and its function

मन हमारे शरीर का राजा माना जाता है; क्योंकि उसकी आज्ञा के विरुद्ध हमारे शरीर का कोई भी अंग किसी भी कार्य को नहीं करता। यह बात निम्न-लिखित उदाहरणों से स्पष्ट हो जायगीः—

(१) मान लीजिए कि आप सो रहे हैं और कोई मनुष्य आपको सुई चुभोता है। आप तो सो रहे हैं, सुई चुभानेवाले व्यक्ति को देख भी नहीं रहे हैं; किन्तु मन जो सर्वदा चैतन्य है और क्षण भर के लिए भी अपने काम को नहीं छोड़ता, तुरन्त ताड़ जाता है कि कोई सुई चुभो रहा है और आपको पीड़ा होने लगती है। आप जाग उठते हैं और अपने को सुई के चुभने से बचाने का उपाय करने लगते हैं। मन को सुई चुभने का ज्ञान कैसे होता है ?

(२) यदि आप सड़क पर चल रहे हों और आँधी आ जाय, तो मन को पता लग जाता है कि यदि आँखों की पलकें पूर्ववत् खुली ही रहीं तो कदाचित् कोई तिनका

आँख में चला जाय। इस कारण आपकी पलकों को मन आज्ञा देता है कि इस प्रकार बंद रक्खो कि रास्ता भी दिखाई पड़ता रहे और आँख के अंदर कोई तिनका भी न जाने पावे। मन पलकों को कैसे ऐसी आज्ञा भेजता है या किस वस्तु द्वारा ऐसी आज्ञा पलकों तक पहुँचती है?

(३) आपका कोई शत्रु हाथ में नंगी तलवार लिये आपकी ओर आपको वध करने के प्रयोजन से आ रहा है। इस बात का मन को शीघ्र ही अनुभव हो जाता है और वह आपके शरीर के अंगों को आज्ञा देता है कि वे भी इस घटना का सामना करने के निमित्त अस्त्र-शस्त्र-युत उद्यत हो जायँ। भाग्यवशात् यदि आप अपने शत्रु से दुर्बल हैं तो मन पैरों को आज्ञा देगा कि भागो। आप भाग जायँगे और अपने शत्रु से बचकर किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँच जायँगे। मन को यह कैसे मालूम होता है कि शत्रु आपको मारने के लिए ही आ रहा है? मन आपके शरीर के अंगों को किस वस्तु द्वारा आज्ञा भेजता है कि अब वे सावधान हो जायँ और अपने को अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित कर शत्रु का सामना करें?

यह काम मन नाड़ी-संस्थान द्वारा करता है। नाड़ी-संस्थान अनेक नाड़ियों वा नसों के समूहों से मिलकर बना है। ऊपर लिखे उदाहरणों से यह भी विदित होता है कि हमारे शरीर के अंदर दो प्रकार की नसें हैं।

चित्र नं० १

आज्ञा स्नायु का चित्र
Efferent nerve
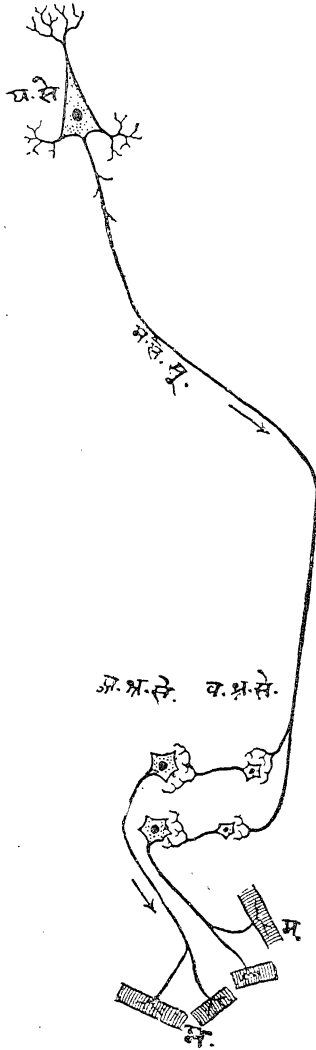
म. से.=मस्तिष्क सेल
म. से. सू.=मस्तिष्क
अ. श्र. से.=सुषुम्ना के अग्रिम
श्रृंग सेल
प. श्र. से.=पश्चिम श्रृंग सेल
म.=मांसपेशी

एक तो वे जो मन तक समाचार पहुँचाती हैं और दूसरी वे जो मन की आज्ञा को हमारी इन्द्रियों के पास पहुँचाती हैं। उन नसों को जो मन के पास समाचार ले जाती हैं ज्ञानस्नायु (Afferent nerve) कहते हैं और जो मन से इन्द्रियों के लिए आज्ञा लाती हैं, आज्ञास्नायु (Efferent nerve) कहते हैं। जिस प्रकार तारों के द्वारा तारघर का काम चलता है उसी प्रकार मन का काम भी ज्ञान-स्नायु और आज्ञास्नायु द्वारा चलता है। यदि यह कहा जाय कि ज्ञानस्नायु और आज्ञास्नायु बिजली के तारों से कई गुनी अधिक शीघ्रता से काम करते हैं तो अनुचित न होगा; क्योंकि वे एक सेकिन्ड में ६५ वार मन तक समाचार ले जा सकते हैं और मन से ६५ ही वार आज्ञा ले आते हैं। आपको कदाचित् मन और नसों की कार्य-प्रणाली की शीघ्रता और सुन्दरता के विषय में यह बात सुनकर आश्चर्य हुआ होगा; किन्तु आश्चर्य की कोई बात नहीं है; क्योंकि विना ऐसी शीघ्र और सुन्दर कार्य-प्रणाली के मनुष्य के कार्य नहीं चल सकते।

प्रत्येक वस्तु के रंग, रूप और आकार को हमारी आँखें देखती हैं। अतः लाल, पीले, हरे, नीले इत्यादि का ज्ञान आँखों द्वारा होता है। इसी प्रकार शब्द की मधुरता और कर्कशता का ज्ञान कान द्वारा होता है। ऐसे ही खट्टे, मीठे, कड़ुवे, इत्यादि स्वादों का ज्ञान जिह्वा

द्वारा होता है। सुगन्ध और दुर्गन्ध का ज्ञान नासिका के द्वारा होता है। अमुक वस्तु कोमल है या कठिन, शीतल है या उष्ण, इनका ज्ञान त्वचा के द्वारा होता है। अब यह प्रश्न उठता है कि ज्ञानस्नायु कैसे ये समाचार मन के पास ले जाते हैं कि यह पदार्थ पीला, लाल या हरा है? यह वस्तु खाने में मीठी है या कड़वी, अमुक वस्तु कोमल है या कठिन? इत्यादि इस प्रश्न का उत्तर यह है कि ज्ञानस्नायु हमारे कर्ण, नासिका, त्वचा, रसना, चक्षुओं से मिले होते हैं। इसी बात को दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि ज्ञानस्नायु ज्ञानेन्द्रियों से मिले होते हैं। कर्ण, नासिका, त्वचा, रसना और नेत्रों को ज्ञानेन्द्रियाँ कहते हैं। हमारे शरीर के अंदर जो मांस-पेशियाँ होती हैं उनको कर्मेन्द्रियाँ कहते हैं। ज्ञानेन्द्रियों को बाह्य वस्तुओं, घटनाओं, और कार्यों का जो ज्ञान होता है, वे उसे ज्ञानस्नायु द्वारा (जो कि ज्ञानेन्द्रियों से मिले रहते हैं, जैसा कि अभी बतलाया गया है) मन के पास पहुँचाती हैं। मन से जो आज्ञा मिलती है, उसे आज्ञास्नायु कर्मेन्द्रियों के पास (अर्थात् मांसपेशियों के पास) पहुँचाती हैं। "ज्ञानेन्द्रिय और ज्ञानस्नायु", "कर्मेन्द्रिय और आज्ञास्नायु" की कार्य-प्रणाली के विषय में अब तक जो कुछ कहा गया है, वह नीचे के चित्र से स्पष्ट हो जायगा:—

हमारी मांसपेशियाँ अर्थात् कर्मेन्द्रियाँ

पाठकों के मन में सम्भवतः ये प्रश्न उठें कि मांसपेशियाँ क्या वस्तु हैं ? वे कैसी होती हैं ? वे किस प्रकार से काम करती हैं ? अतः मांसपेशियों के विषय में कुछ लिख देना आवश्यक प्रतीत होता है। मांसपेशियाँ अर्थात् कर्मेन्द्रियाँ मांस के बने हुए एक प्रकार के लम्बोतरे पिण्ड व बन्धन

चित्र नं० २
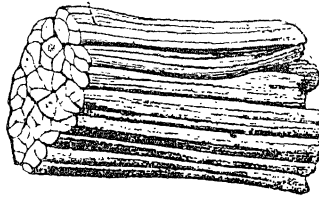
मांसपेशियाँ

हैं। ये बन्धन मध्य भाग पर मोटे होते हैं किन्तु सिरों पर, बटे हुए डोरे की शकल के होने के कारण, पतले होते हैं। क्योंकि ये बन्धन सिरों पर बटे हुए तागे की तरह होते हैं, अतएव उनके सिरे मध्यभाग से अधिक बलिष्ठ होते हैं। ये प्रत्येक जोड़ पर से होकर एक अस्थि से दूसरी अस्थि तक जाते हैं और जोड़ के आगे की ओर और पीछे की ओर होते हैं। जोड़ के आगे की ओर लगी हुई मांसपेशियों का काम यह होता है कि वे नीचे की हड्डी को आगे करते हैं। जो मांसपेशियाँ जोड़ के पीछे की ओर लगी होती हैं उनका काम नीचे की हड्डी को पीछे ले जाना है।

हमारे शरीर में जहाँ-जहाँ पर जोड़ हैं, वहाँ पर ऐसी दो प्रकार की मांसपेशियाँ अवश्य होती हैं, एक तो वे, जो जोड़ के आगे की ओर लगी होती हैं और दूसरी वे, जो जोड़ के पीछे की ओर लगी होती हैं। आगे की ओर लगी हुई मांसपेशियों के अंगों को मोड़नेवाली और पीछे की ओर लगी हुई मांसपेशियों को, अंगों को फैलानेवाली मांसपेशियाँ कहते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि मांसपेशियों में सिकुड़ने और फैलने का गुण होता है। तुम अपने बाहु को मोड़ो और फैलाओ और देखो कि बाहु को मोड़ने और फैलाने से मांसपेशियों की क्या दशा होती है? तुमको

चित्र नं० ३
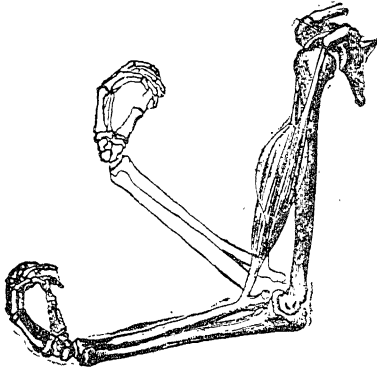
बाहु के मोड़ने से मांसपेशियाँ छोटी होकर फूल जाती हैं।

विदित होगा कि बाहु के मोड़ने से मांसपेशियाँ छोटी होकर फूल जाती हैं, किन्तु फैलाने से वे लम्बी और

पतली हो जाती हैं। अर्थात् अपनी वैसी ही दशा में आ जाती हैं जिसमें कि वे बाहु के मोड़ने से पहले थीं।

अब तुम अपने हाथों से कोई भी काम करो और देखो कि काम करते समय हाथ की मांसपेशियाँ किस दशा में रहती हैं। तुमको ज्ञात होगा कि किसी भी कार्य के करते समय वे छोटी हो जाती हैं और फूलकर मोटी हो जाती हैं। जब तुम कार्य करना समाप्त कर चुको, तो मांसपेशियों की दशा का पुनः अवलोकन करो। तुमको विदित होगा कि काम पूर्ण होने के पश्चात् वे अपनी पूर्ववत् दशा में आ जाती हैं।

हम अपने सम्पूर्ण कार्य इन्हीं मांसपेशियों द्वारा करते हैं। चलने में पैर आगे को नहीं पड़ सकते, यदि मांसपेशियाँ काम न करें। मुँह से हम खा नहीं सकते, जब तक मुँह की मांसपेशियाँ काम न करें। हाथों से हम कोई भी वस्तु नहीं उठा सकते, जब तक कि हाथों की मांसपेशियाँ काम न करें। अर्थात् यदि हमारी मांसपेशियाँ काम न करें, तो हम कोई काम नहीं कर सकते। यही कारण है कि मांसपेशियों को मनोविज्ञानवेत्ताओं ने कर्मेन्द्रियों (कार्य करनेवाली इन्द्रियाँ) का नाम दिया है। इन कर्मेन्द्रियों के अन्दर अनेकों आज्ञास्नायु मस्तिष्क से आकर फैल गये हैं। यदि आज्ञास्नायु इनके अन्दर मस्तिष्क से आकर न फैले होते, तो मन की आज्ञा उन तक न

पहुँच पाती और हमारे सब काम स्थगित रह जाते।

उन मनुष्यों के बाहु की मांसपेशियों को देखिए जो डंड लगाया करते हैं। आपको अनुभव होगा कि डंड लगानेवाले मनुष्यों के बाहु की मांसपेशियां अच्छी प्रकार भरी हुई होती हैं। उसी प्रकार बोझा ढोनेवाले कुलियों के टाँगों की मांसपेशियाँ, जो पिंडलियों के अन्दर होती हैं, खूब भरी होती हैं। लाठी चलानेवाले मनुष्यों की भुजाओं में भी भारी-भारी मांसपेशियाँ होती हैं। इन उदाहरणों से क्या बात झलकती है? इनसे यह स्पष्ट होता है कि मांस-पेशियों का यदि सुचारुरूप से प्रयोग किया जाय, तो वे भारी और बलिष्ठ होती हैं और यदि उनका प्रयोग न किया जाय, तो ये पतली, हलकी और निर्बल हो जाती हैं।

शारीरिक साधन की आवश्यकता
Necessity of Physical training

जो विद्यार्थी पाठशाला के खेलों में अधिक भाग लेते हैं, उनकी मांसपेशियाँ भारी, सुन्दर, और बलिष्ठ होती हैं; क्योंकि खेलने में बालक उनका अच्छा प्रयोग करते हैं। जो विद्यार्थी रात-दिन पुस्तकों के पढ़ने में ही लगे रहते हैं, वे दुबले-पतले दिखाई पड़ते हैं; क्योंकि वे अपनी मांसपेशियों का प्रयोग नहीं करते। वे माँ-बाप जो इस विषय को नहीं जानते, हमने उनको अपने बच्चों से सर्वदा यही कहते सुना है कि "खेलोगे कूदोगे होगे खराब, पढ़ोगे लिखोगे तो होगे नवाब।"

अहा! जो माँ-बाप बच्चों से ऐसा कहा करते हैं, वे कितनी भारी भूल करते हैं !!! वे इस बात का अनुभव नहीं कर सकते हैं कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन रह सकता है।

जिन मांसपेशियों का अब तक वर्णन किया गया है उनको हम अपने इच्छानुकूल काम में लाते हैं, अथवा वे हमारी इच्छा के अनुसार काम करती हैं। यथाः—हाथ, पाँव और मुँह की मांसपेशियाँ। यदि हम अपने हाथ की मांसपेशियों से काम न लेना चाहें तो हमारा हाथ कोई भी काम नहीं कर सकता। ऐसी मांसपेशियाँ जो हमारी इच्छा-नुकूल काम करती हैं, उनको ऐच्छिक मांसपेशियाँ कहते हैं और जो मांसपेशियाँ हमारी इच्छा के वशीभूत नहीं हैं, यथाः—हृदय की और आमाशय की मांसपेशियाँ, उनको अनैच्छिक मांसपेशियाँ कहते हैं। यदि हम यह इच्छा करें कि हमारा हृदय धड़कना बन्द कर दे, तो क्या वह ऐसा करेगा? कदापि नहीं। वह तो अपना काम करता ही जायगा; क्योंकि शिक्षक का अधिक सम्बन्ध ऐच्छिक मांसपेशियों से है। अतः अनैच्छिक मांसपेशियों के विषय में यहाँ पर विस्तृत वर्णन देना आवश्यक नहीं प्रतीत होता।

यहाँ पर शरीर और मन के सम्बन्ध में कुछ कह देना आवश्यक है। पाठकों ने अनुभव किया होगा कि जब वे रोगी और दुर्बल रहते हैं, तो वे किसी भी काम में अपना मन नहीं लगा सकते। यदि वे अस्वस्थ दशा

में ऐसा करने की चेष्टा करते हैं, तो उनकी और भी अधिक कमज़ोरी प्राप्त होती है। ज्वर की दशा में यदि कोई मनुष्य पढ़ने-लिखने में मन लगाता है तो उसे बड़ी कमज़ोरी और थकावट मालूम होती है। ऐसे ही जब मन पर उदासी छाई होती है तो शरीर भी उदास और उत्साहहीन दिखाई पड़ता है। अर्थात् मन का प्रभाव शरीर पर पड़ता है और शरीर का मन पर। इससे विदित होता है कि शरीर और मन का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। बहुत से शिक्षक इस नियम को नहीं समझते, अतः वे बालकों को इतना अधिक काम घर पर करने को दे देते हैं कि उनकी शक्तियों के ऊपर अनुचित भार पड़ जाता है। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि इस अनुचित भार के पड़ने से लड़कों की कई एक शक्तियाँ इतनी क्षीण हो जाती हैं कि वे भविष्य में अपना काम उचित रीति से करने में असमर्थ हो जाते हैं।

बच्चों को घर पर अधिक मानासिक काम करने से हानि।

देखा गया है कि अध्यापक बच्चों को बहुत-सा काम रटने को देते हैं। जो बच्चे रटने का काम अधिक करते हैं, उनकी स्मरणशक्ति (Memory) इतनी दुर्बल और कम हो जाती है कि वे दिन-रात पुस्तकों में लगे रहने पर भी किसी बात को स्मृति में नहीं रख सकते। यही कारण है कि अनेकों रट्टू लड़के परीक्षा में

फ़ेल हो जाते हैं। प्रत्येक इन्द्रिय व शक्ति अनुचित काम लेने से क्षीण हो जाती है । आपने देखा होगा कि जो विद्यार्थी सन्ध्या-समय भी पढ़ते रहते हैं, उनकी आँखें ठीक प्रकार से अपना काम नहीं कर सकतीं। उनको ऐनक लगाना पड़ता है । अतएव शिक्षकों और माँ-बाप को सर्वदा इस बात से सावधान रहना चाहिए कि विद्यार्थियों की शक्तियों और इन्द्रियों पर अनुचित बोझ न पड़े । उन्हें यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि प्रत्येक इन्द्रिय या शक्ति से वही काम लिया जाय, जिसके वह योग्य है । मान लो कि किसी अध्यापक को लड़कों को 'शीत' और 'उष्ण' का ज्ञान कराना है । 'शीत' और 'उष्ण' का अच्छा ज्ञान लड़कों को तभी हो सकता है, जब वे अपनी त्वचा का प्रयोग करें । अर्थात् जब कि लड़के अपने हाथों से ठंढी और गरम वस्तुएँ छुएँ । यदि अध्यापक स्वयम् ही शीत और उष्ण पदार्थों को छुए और कहे कि यह वस्तु इतनी उष्ण है कि इसे छूने से मेरा हाथ जलता है, तो इससे बच्चों को वैसा अच्छा ज्ञान नहीं होगा, जैसा कि सचमुच अपने हाथों से छूने से होगा । ऐसे ही हलकी और भारी वस्तुओं का अच्छा ज्ञान बच्चों को तभी होता है, जब वे स्वयम् हलके और भारी पदार्थों को उठाते हैं और अपनी मुस्लियों का प्रयोग करते हैं। यदि अध्यापक केवल यह कहे कि लोहा

भारी होता है और रुई हलकी तो इससे बच्चों को 'हलके' और 'भारी' का सच्चा ज्ञान नहीं हो सकता।

मीठे और खट्टे का उत्तम ज्ञान तभी होगा, जब बच्चे अपनी जिह्वा का प्रयोग करेंगे अर्थात् खट्टी-मीठी वस्तुओं को चखेंगे। अब यह प्रश्न उठता है कि बच्चों को इन्द्रियों के प्रयोग से उत्तम ज्ञान क्यों होता है? यह बात नीचे दिये हुए उदाहरणों से स्पष्ट हो जायगी।

(१) मानो कि किसी बच्चे को 'कठिन' और 'कोमल' शब्द पढ़ाये जा रहे हैं। यदि अध्यापक उससे 'कोमल' और 'कठिन' वस्तुओं को छूने को कहता है, तो उसके छूने से बच्चे की त्वचा पर एक विशेष प्रकार का प्रभाव पड़ता है। उस प्रभाव को त्वचा ग्रहण करती है। ज्ञानस्नायु त्वचा से मिले हुए हैं। इस कारण त्वचा उस स्पर्श-प्रभाव को ज्ञानस्नायु को सौंप देती है। ज्ञानस्नायु मन से मिले हैं अतः वे तुरन्त ही उस स्पर्श-प्रभाव को मन तक ले जाते हैं। जब प्रभाव मन के पास पहुँच जाता है, तब मन उस पर विचार करता है और उसका अनुवाद (Interpret) करता है। प्रभाव के अनुवाद के पश्चात् मन को ज्ञान याने बोध होता है कि अमुक वस्तु कठिन है या कोमल।

(२) ऐसे ही यदि अध्यापक किसी भवन का वर्णन कर रहा हो और बच्चों को उस भवन को न दिखावे तो उनको उस भवन का अच्छा ज्ञान नहीं हो सकता।

अगर अध्यापक बच्चों को उस भवन के पास ले जाकर उसे बच्चों को दिखावे, तो बच्चे अपनी आँखों का प्रयोग करेंगे। उस भवन को देखने से बच्चों की आँखों पर ईथर हवा की थरथराहटों का प्रभाव पड़ेगा। उस प्रभाव को चाक्षुष इन्द्रिय ग्रहण करेगी और ग्रहण करने के पश्चात् चाक्षुष इन्द्रिय उसे ज्ञानस्नायु को सौंप देगी। ज्ञानस्नायु उस प्रभाव को मन तक ले जायँगे। प्रभाव के पहुँचने पर मन उस पर विचार करेगा और उसका अनुवाद करेगा। प्रभाव का अनुवाद करने के पश्चात् मन को ज्ञान होगा कि अमुक भवन कैसा सुन्दर है? कैसा बना हुआ है इत्यादि। यदि भवन सुन्दर है, तो मन कर्मेन्द्रियों को अर्थात् आँखों की मांसपेशियों के लिए आज्ञास्नायु द्वारा आज्ञा प्रेषित करेगा कि उस भवन को देखना बंद मत करो, किन्तु उसे देखते ही जाओ। ज्यों ही आज्ञास्नायु इस आज्ञा को पावेंगे, त्यों ही वे उसे कर्मेन्द्रियों के पास ले जायँगे, जो आज्ञा के मिलने पर तुरन्त देखने के कार्य में रत हो जायँगी।

नाड़ी-संस्थान का ठीक-ठीक ज्ञान तभी हो सकता है जब कि उसके भागों के विषय में भी कुछ जानकारी हो।

नाड़ी-संस्थान के भाग

Parts of the Nervous System

नाड़ी-संस्थान दो मुख्य भागों में विभक्त है। पहला

मस्तिष्क के अंदर का नाड़ी-संस्थान और दूसरा रीढ़ खम्भ की सुषुम्ना नाली के अंदर का नाड़ी-संस्थान। मस्तिष्क के दो मुख्य भाग हैं। बृहत् मस्तिष्क और लघु मस्तिष्क।

चित्र नं० ४
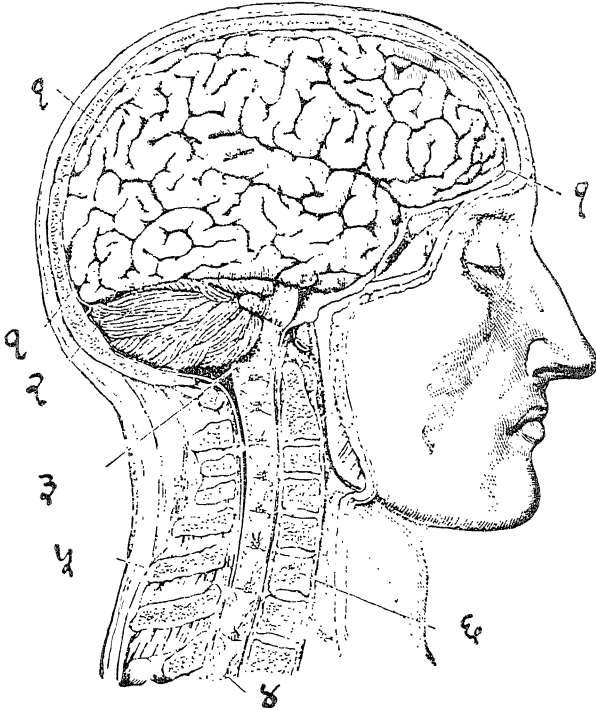
मस्तिष्क और सुषुम्ना के ऊपरी भाग पार्श्विक दृश्य

१—बृहत् मस्तिष्क के चक्रांग
२—लघु मस्तिष्क
३—सुषुम्ना-शीर्षक
४—सुषुम्ना
५—कशेरुकाओं के कंटक
६—कशेरुकाओं की गाँठ

अतः मस्तिष्क के अंदर का नाड़ी-संस्थान भी दो भागों में बँटा है। बृहत् मस्तिष्क के अंदर का नाड़ी-संस्थान और छोटे यानी लघु मस्तिष्क के अंदर का नाड़ी-संस्थान।

बृहत् मस्तिष्क का नाड़ी-संस्थान

बृहत् मस्तिष्क के नाड़ी-संस्थान से बारह जोड़ी नसें या

चित्र नं० ४
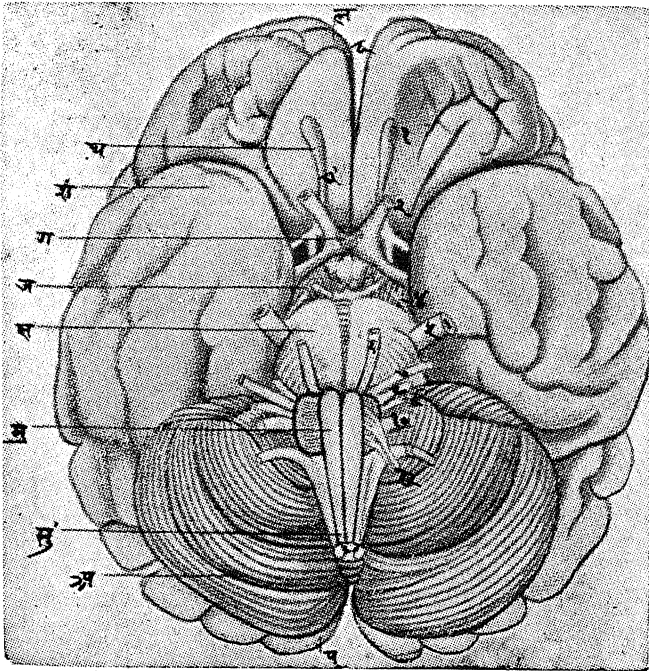
मस्तिष्क का अधोभाग और बारहों नाड़ियाँ

रज्जुयें निकलती हैं। यथा, घ्राण-रज्जु, चाक्षुष रज्जु, श्रावण रज्जु इत्यादि। ये नसें विशेष ज्ञानेन्द्रियों से जाकर मिल जाती हैं, जिनसे उनका कार्य-क्रम उचित रीति से चलता है। घ्राण रज्जु घ्राणेन्द्रिय अर्थात् नासिका से मिली है और उसकी सहायता से नासिका अपना कार्य ठीक प्रकार से करती है; चाक्षुष रज्जु चक्षुओं से मिली है, जिससे आँखें अपना काम ठीक करती हैं; श्रावण रज्जु कर्णेन्द्रिय अर्थात् कानों से जा मिली है। इसके द्वारा कान अपना कार्य ठीक ढंग से करते हैं, इत्यादि-इत्यादि। इससे स्पष्ट है कि देखने, सुनने, सूँघने, समझने, बूझने, पढ़ने और लिखने का कार्य बृहत् मस्तिष्क की नाड़ी-संस्थान द्वारा ही होता है। देखा गया है कि यदि किसी मनुष्य या बच्चे के बृहत् मस्तिष्क में किसी प्रकार की भारी चोट लग जाय, तो उसके अंदर का नाड़ी-संस्थान बिगड़ जाता है। घोड़े पर से गिरने के बाद बहुत से व्यक्ति सोचने, समझने, और बूझने की शक्तियों को खो बैठते हैं; क्योंकि घोड़े पर से गिरते समय उनके बृहत् मस्तिष्क पर भारी चोट लगती है। जो अध्यापक या मा-बाप इस बात से अनभिज्ञ होते हैं, वे बहुधा बच्चों के मस्तिष्क पर ही चाँटे मारा करते हैं। यदि कभी क्रोध में चाँटा बच्चों के मस्तिष्क पर ज़ोर से लग जाय, तो बहुत कुछ सम्भव है कि बच्चे सोचने, समझने, और बूझने की शक्तियों से वंचित हो जायँ।

लघु मस्तिष्क के अंदर का नाड़ी-संस्थान

छोटे मस्तिष्क के अंदर का नाड़ी-संस्थान शरीर की

चित्र नं० ६
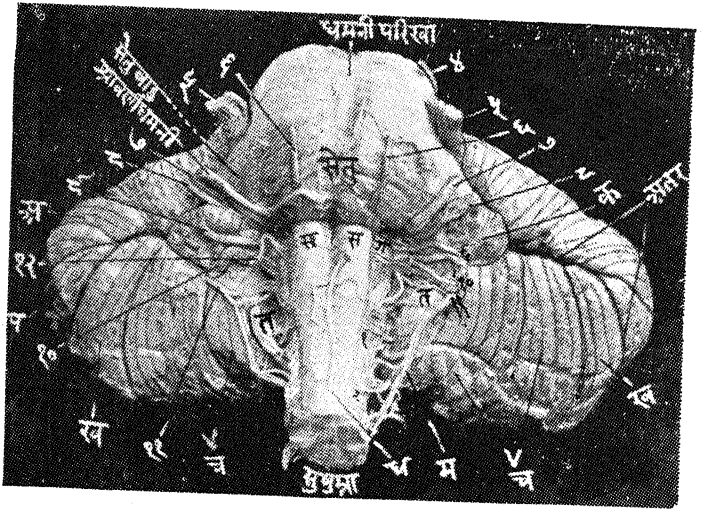
सेतु, लघु मस्तिष्क और सुषुम्ना शीर्षक

उन मांसपेशियों को नियमित क्रम से चलाने का कार्य करता है, जिनका सम्बन्ध आमाशय, हृदय, और फेफड़ों से है। अर्थात् शरीर के भीतरी अंगों से होता है। अतः छोटे मस्तिष्क के विकार के कारण फुस्फुस की धड़कन में दोष उत्पन्न हो जाता है। इसी के विकार के कारण साँस लेने का काम भी भली भाँति नहीं चलता। जब मनुष्य को शीत लग जाती है, तो उस समय उसका

सुषुम्ना-पूर्व पृष्ठ सुषुम्ना-पश्चात् पृष्ठ

चित्र नं० ७
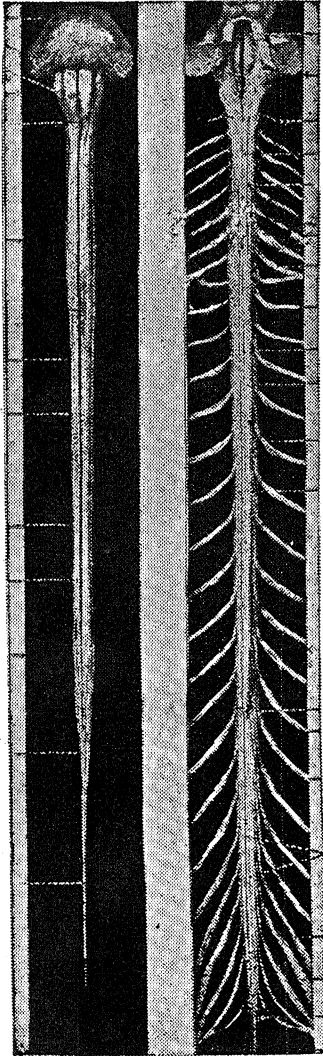
सुषुम्ना से निक-
लनेवाली नाड़ियों
के मूल

ग्रैवेयक नाड़ी

वक्षीय नाड़ी

कटि नाड़ी

त्रिक नाड़ी

चित्र नं० ८

सुषुम्ना और इससे निकलनेवाली नाड़ियों के मूल

प्रथम ग्रैवेयक नाड़ी

१ से ७ ग्रीवा के कशेरुक

प्रथम वक्षकीय नाड़ी

१ से १२ वक्ष प्रांत के कशेरुक

प्रथम कटि नाड़ी

१ और २ कटि कशेरुक

प्रथम त्रिक नाड़ी
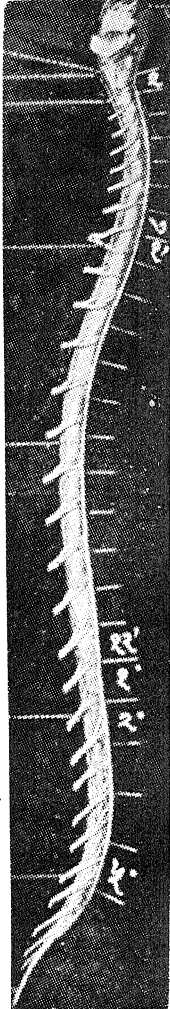
छोटा मस्तिष्क भी रुग्ण हो जाता है। लू लग जाने से भी इसमें बड़ी हानि होती है। इसी हेतु लू के दिवसों में इसे बहुत सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया जाता है।

रीढ़खम्भ की सुषुम्ना नाड़ी के अंदर का संस्थान

इस नली में से होकर अनेक नसें गई हैं और निकली हैं। इनमें से जो नसें निकली हैं वे पीठ, हस्त, पाद, वक्षःस्थल, त्वचा, इत्यादि अंगों और प्रत्यंगों के ऊपर फैली हुई मांस-पेशियों से मिली हैं। अतएव सुषुम्ना नाड़ी के अंदरवाली नसें इन सबका कार्य चलाती हैं। इस सुषुम्ना नली पर चोट आ जाने से बहुत से मनुष्यों के हाथ-पैर की पेशियाँ अधिकार से बाहर हो जाती हैं। जब ऐसा होता है तो उनके हाथ-पैर इच्छा-विरुद्ध हर समय हिला करते हैं। साधारण भाषा में ऐसी दशा को लकवे का मार जाना कहते हैं। पहले दिये हुए चित्र के देखने से पाठकों को मस्तिष्क, सुषुम्ना और उनसे निकली हुई नसों का ज्ञान हो जायगा:—

नाड़ी-संस्थान के विषय में अब तक जो वर्णन किया गया है, वह कदाचित् पाठकों को अप्रासंगिक विदित होता होगा; किन्तु उसके जाने बिना मन की क्रियाओं का ज्ञान नहीं हो सकता। यदि अध्यापक को मन की क्रियाओं का ज्ञान न हो, तो वह बच्चों को उचित शिक्षा नहीं दे सकते। पहले बताया जा चुका है कि मन की क्रियाओं के विकास

का एक विशिष्ट क्रम है । उस क्रम के अनुसार मन की सबसे पहली क्रिया जिससे बच्चे का ज्ञान प्रारम्भ होता है 'प्रत्यक्ष' है । अतः हम प्रथम 'प्रत्यक्ष' का वर्णन करेंगेः—

"प्रत्यक्ष" (Sensation)

कभी कभी ऐसा होता है कि हम अपने कार्य में इतने लीन रहते हैं कि यदि हम कोई शब्द सुनते हैं, अथवा कोई सुगन्ध सूँघते हैं, अथवा कोई वस्तु छूते या देखते हैं, तो हम नहीं बतला सकते कि हमने कौन शब्द सुना, कौन वस्तु देखी या छुई और कौन सुगन्ध सूँघी है ? तब हमको केवल इतना ही आभास (Awareness) होता है कि हमने कोई शब्द सुना है, कोई सुगन्ध सूँघी है या कोई वस्तु छुई या देखी है, किन्तु यह नहीं बतला सकते कि कौन शब्द सुना है ? कौन सी सुगन्ध सूँघी है ? कौन वस्तु देखी या छुई है ? तब कहेंगे कि हमें शब्द-प्रत्यक्ष (Word-Sansation), घ्राण-प्रत्यक्ष (Smell-Sensation), स्पर्श-प्रत्यक्ष (Touch-Sensation) और चाक्षुष प्रत्यक्ष (Sight-Sensation) हुए हैं ? ये प्रत्यक्ष हमको कैसे होते हैं ? इस प्रश्न के उत्तर में निम्न-लिखित उदाहरण दिये जाते हैं:—

(क) 'घ्राण संवेदन या प्रत्यक्ष'

(Sensation of smell)

सुगन्ध के सूक्ष्म परिमाणु किसी पुष्प, इत्र या अन्य

किसी सुगन्धित वस्तु से आकर हमारी नासिका अर्थात् घ्राणेन्द्रिय तक पहुँचते हैं और उस पर टकराकर एक विशेष प्रकार की थरथराहट या कम्पन (Vibrations) उत्पन्न करते हैं। प्रत्येक इन्द्रिय ऐसी अद्भुत तरह से बनी होती है कि उसमें बाह्य वस्तुओं की थरथराहटों को ग्रहण करने की अत्यन्त क्षमता होती है। नासिका इन थरथराहटों के प्रभाव को ज्ञानस्नायु को भेजती है। ज्ञानस्नायु उस प्रभाव को मन तक पहुँचाते हैं। मन अन्य कार्य में रत होने से केवल इतना ही जानता है कि कोई सुगन्ध आ रही है, किन्तु यह नहीं जानता कि कौन सुगन्ध आ रही है और किस वस्तु से आ रही है। जब मन को केवल इतना ही आभास होता है, तो हम कहते हैं कि मन को या हमको 'घ्राण-प्रत्यक्ष' हो रहा है।

(ख) "चाक्षुष-प्रत्यक्ष या संवेदन"
(Visual Sensation)

किसी वस्तु के देखने से नेत्रों पर (अर्थात् चाक्षुष इन्द्रिय पर) एक प्रकार की थरथराहट होती है। नेत्र उस थरथराहट को तुरन्त ग्रहण कर ज्ञानस्नायु को सौंप देते हैं। ज्ञानस्नायु उसको मन के प्रति ले जाते हैं। मन किसी काम में लगे रहने से केवल इतना ही जानता है कि कोई वस्तु देखी जा रही है; किन्तु उसे इस बात का ज्ञान नहीं होता कि कौन वस्तु दिखाई दे रही है। जब

हमारे मन की यह दशा होती है, तो हमको चाक्षुष-संवेदन या प्रत्यक्ष होते हैं। इसी प्रकार हमको 'स्वाद-प्रत्यक्ष', 'श्रवण-प्रत्यक्ष', और 'स्पर्श-प्रत्यक्ष' भी होते हैं। 'प्रत्यक्ष' मन (Mind) की सबसे प्रथम और साधारण क्रिया है। इसी से ज्ञान-प्राप्ति का आरम्भ होता है। 'प्रत्यक्ष' के उपरान्त मन को 'उपलम्भन' होता है।

'उपलम्भन' (Perception)

अनेक वस्तुओं के जो प्रभाव ज्ञानेन्द्रिय पर पड़ते हैं, वे ज्ञानस्नायु द्वारा मन के पास पहुँचते हैं। उनके पहुँचने से मन को जो चेतना होती है, उसे प्रत्यक्ष कहते हैं; किन्तु पूर्वोक्त कथनानुसार प्रत्यक्ष की दशा में मन को यह बोध नहीं होता कि प्रत्यक्ष किस वस्तु का है। जब मन ज्ञानस्नायु के भेजे हुए प्रत्यक्षों पर विचार करता है, तो वह अनेक तर्क-वितर्क भी करता है अर्थात् संवेदनों (प्रत्यक्षों) का अनुवादन करता है। प्रत्यक्षों के अनुवाद के पश्चात् मन यह जानने लगता है कि यह शब्द अमुक वस्तु का है, यह सुगन्ध अमुक पदार्थ की है, यह स्वाद अमुक चीज़ है, आदि। अर्थात् मन प्रत्यक्षों को वाह्य वस्तुओं से सम्बद्ध करता है। जब मन ऐसा करता है, तो कहते हैं कि उसको उपलम्भन हो रहा है। मन की उस क्रिया को जिसके द्वारा वह विविध वस्तुओं से उत्पन्न प्रत्यक्षों को उन वस्तुओं से सम्बद्ध करता है, जिनसे कि वे आते

हैं, उपलब्धि अथवा उपलम्भन-शक्ति कहते हैं। मानो कि किसी मनुष्य को यह बोध हुआ कि गेंद गोल है या यह ज्ञान हुआ कि साबुन चिकना है, या यह ज्ञात हुआ कि सुगन्ध गुलाब की है, या यह प्रतीत हुआ कि शब्द घंटे का है, तो इससे यह बात स्पष्ट होती है कि उस मनुष्य को उन वस्तुओं के गुण विदित हैं। (गुलाब का गुण सुगन्ध देना है; घंटे का गुण शब्द करना है; साबुन में चिकनाहट का गुण है; इत्यादि)। अतः उपलम्भनों के होने से हम गुणों को उन पदार्थों से सम्बद्ध कर लेते हैं, जिनसे वे सम्बन्ध रखते हैं । प्रत्यक्ष की क्रिया में बाह्य वस्तु का केवल आभास होता है। उसमें यह शक्ति नहीं होती कि वस्तुओं और उनके गुणों का ज्ञान हो सके। प्रत्यक्ष और उपलम्भन का अन्तर नीचे के उदाहरणों से अधिक स्पष्ट और सुबोध हो जायगा :—

(क) कल्पना करो कि एक विद्यार्थी जिसने अब स्कूल छोड़ दिया है पहले गवर्नमेंट हाई स्कूल, आगरे में पढ़ता था। वह विद्यार्थी अपने मित्रों से वार्तालाप करने में मग्न है और वह गवर्नमेंट हाई स्कूल, आगरे की घंटी का शब्द सुनता है। घंटी का शब्द होने से विद्यार्थी के कानों में (याने कर्णेन्द्रिय पर) एक प्रकार की थरथराहट हो रही है, जिसको कि ईथर वायु लाई है। उस थरथराहट को ज्ञानस्नायु मन के प्रति ले जाते हैं। मन तो मित्रों

से वार्तालाप करने में मग्न है। अतएव घंटी की ध्वनि से जो थरथराहट उत्पन्न होती है, उसकी ओर मन ध्यान नहीं दे रहा है। ऐसी अवस्था में मन को केवल इतना आभास तो अवश्य होता है कि वह कोई शब्द सुन रहा है, किन्तु वह यह नहीं जानता कि शब्द किस वस्तु का हो रहा है। जब ऐसा होता है, तो कहते हैं कि लड़के को (विद्यार्थी को) शब्द-प्रत्यक्ष हो रहा है। घंटी बजती ही जाती है और कर्णेन्द्रिय पर घंटी के ध्वनि की थरथराहटें बार-बार टकराकर अपना प्रभाव डाल रही हैं और विद्यार्थी को शब्द-प्रत्यक्ष बार-बार हो रहे हैं। प्रत्यक्षों के बार-बार होने से विद्यार्थी का मन उनकी (प्रत्यक्षों की) ओर आकर्षित होता है और उनका अनुवाद करता है। प्रत्यक्षों का अनुवाद करने से मन को विदित होता है कि यह शब्द गवर्नमेंट हाई स्कूल, आगरे की घंटी का है। इससे स्पष्ट है कि मन ने प्रत्यक्षों को उस वस्तु से सम्बद्ध कर लिया है जो कि उन्हें उत्पन्न कर रही है। जब विद्यार्थी के मन की यह दशा होती है, तो कहेंगे कि विद्यार्थी को शब्द उपलम्भन हो रहे हैं।

(ख) कल्पना करो कि कोई अध्यापक किसी कक्षा को (जिसमें बहुत बालक बैठे हैं) पढ़ा रहा है। एक लड़का पेंसल खट-खट कर रहा है। अध्यापक का मन पाठ पढ़ाने में इतना जमा हुआ है कि वह यह नहीं जानता कि

कौन लड़का खट-खट कर रहा है; किन्तु अध्यापक को इतना आभास अवश्य हो रहा है कि कोई खट-खट का शब्द कर रहा है। अध्यापक पढ़ाता ही चला जा रहा है और विद्यार्थी भी बराबर खट-खट करता ही जाता है। बार-बार खट-खट शब्द के प्रभाव अध्यापक को कर्णेन्द्रिय पर पड़ रहे हैं। वे प्रभाव ज्ञानस्नायु द्वारा मन तक पहुँचते हैं। मन को उनकी चेतना होती है। यहाँ तक अध्यापक को शब्द-प्रत्यक्ष हुए। प्रत्यक्ष होने के पश्चात् मन खट-खट करनेवाले विद्यार्थी की ओर ध्यान देता है और अध्यापक विद्यार्थी को खट-खट करते पकड़ लेता है। अब उसको विदित हो जाता है कि खट-खट अमुक लड़का कर रहा है अर्थात् खट-खट शब्द के प्रत्यक्षों को अध्यापक का मन बाह्य वस्तु से (यानी विद्यार्थी से) जो उस प्रभाव को उत्पन्न कर रही है, सम्बद्ध कर लेता है। जब अध्यापक यह जान लेता है कि खट-खट अमुक लड़का कर रहा है तो कहेंगे कि अध्यापक को खट-खट शब्द के उपलम्भन हो रहे हैं। मन की उस क्रिया को जिसके द्वारा वह बाह्य वस्तुओं से उत्पन्न प्रत्यक्षों को उन (बाह्य वस्तुओं) से सम्बद्ध करता है जिनसे कि वे उत्पन्न होते हैं, उपलब्धि या उपलम्भन-शक्ति कहते हैं।

आगे चलकर बताया जायगा कि इस उपलम्भन-शक्ति

के द्वारा बच्चा अपने शरीर और उसके अवयवों को बाह्य पदार्थों से भिन्न समझता है अर्थात् उसे यह बोध हो जाता है कि उसका शरीर और उसके (शरीर के अंग) बाहरी वस्तुओं से भिन्न हैं। आगे चलकर उस क्रिया का वर्णन भी किया जायगा जिसके द्वारा बच्चा इस भिन्नता को अनुभव करता है।

युवा मनुष्य प्रत्यक्षों के होते ही उनका लगाव यानी सम्बन्ध उन वस्तुओं से तुरन्त कर देते हैं, जिनसे वे उत्पन्न होते हैं। अतः उनको वस्तुतः उपलम्भन ही होते हैं, संवेदन अर्थात् प्रत्यक्ष नहीं होते। इसका क्या कारण है? इस प्रश्न का उत्तर नीचे दिया गया है:—

कल्पना करो कि कोई युवा पुरुष नारंगी देखता है। ज्यों ही वह नारंगी देखता है, त्यों ही वह उस प्रत्यक्ष को जो उसे नारंगी देखने से होता है, नारंगी से सम्बद्ध कर लेता है। नारंगी के प्रत्यक्ष को वह नारंगी से इतनी शीघ्र सम्बद्ध कर लेता है कि उसके प्रत्यक्ष और उपलम्भन में कोई अन्तर ज्ञात नहीं होता। युवक प्रत्यक्ष को नारंगी से इस कारण शीघ्र सम्बद्ध कर लेता है कि उसने अनेक नारंगियाँ पहले भी देखी हैं। नारंगियों के अतिरिक्त उसने और फल भी देखे हैं, यथा आम, अंगूर, केले, नाशपाती, अमरूद, बेर, निम्बू, इत्यादि-इत्यादि। यही नहीं, उसने इन

वास्तव में युवक को उपलम्भन ही होते हैं।

फलों को हाथ में उठाया है, उनको खाया है और सूँघा भी है। खाते समय उसे ज्ञात हुआ है कि अमुक फल मीठा है या खट्टा। वह इतना ही नहीं जानता वरन् यह भी जानता है कि कौन फल किस ऋतु में पकता है। उस युवक को कदाचित् उन फलों के वृक्षों का भी बोध है। उसने उन फलों को वृक्षों से गिरते भी देखा है और उनके भूमि पर गिरने से जो शब्द होते हैं, उनको भी सुना है। जब उसने उन फलों को खाने के निमित्त काटा है, तो उस समय उसने उनके अंदर की बनावट का अवलोकन भी किया है। ऐसी घटनाओं और अनुभव के कारण उस युवक को पूर्वोक्त तथा अन्य फलों के अनेक प्रत्यक्ष और उपलम्भन हुए हैं, यथा चाक्षुष (Visual), घ्राण (Smell), स्पर्शन (Touch), स्वाद (Taste), श्रावण (Ear), इत्यादि। अतः जब युवक नारंगी को देखता है, तो (पहले के) पूर्व के सम्पूर्ण प्रत्यक्ष और उपलम्भन उसके मन में पुनः जाग्रत् हो जाते हैं अर्थात् केवल चाक्षुप प्रत्यक्ष ही नहीं जाग्रत् होते, किन्तु अनेक प्रत्यक्ष और उपलम्भन भी मन में उपस्थित हो जाते हैं, यथा घ्राण, स्वाद, श्रावण, स्पार्शन। उपस्थित प्रत्यक्षों और उपलम्भनों का सम्मिश्रण पूर्व के प्रत्यक्षों और उपलम्भनों से हो जाता है, यानी वर्तमान में जो प्रत्यक्ष हो रहे हैं, वे भूत के प्रत्यक्षों और उपलम्भनों से

मिल जाते हैं और इस कारण नारंगी का अच्छा ज्ञान हो जाता है। अतएव युवा पुरुष नारंगी को केवल देखने से ही जान लेता है कि नारंगी खट्टी है या मीठी, ताज़ी है या बासी। वह जान लेता है कि नारंगी के अन्दर बहुत-सी फाँकें हैं। यही कारण है कि युवक को वास्तव में प्रत्यक्ष नहीं होते किन्तु उपलम्भन ही होते हैं। आदि में युवक को भी बच्चे की तरह नारंगी का बहुत थोड़ा ज्ञान था। नारंगी और अन्य फलों को देखने-भालने, छूने, चखने, काटने, और उठाने से युवक का ज्ञान धीरे-धीरे बढ़ता गया। उसको अनेक प्रत्यक्ष और उपलम्भन होने से फलों का उत्तम, अधिक और स्पष्ट ज्ञान होता गया। प्रत्यक्ष और उपलम्भनों की एक विशिष्टता यह है कि यदि वे एक बार हो जाते हैं तो वे दुबारा शीघ्रता, सुगमता और सरलता से स्मृति में आ जाते हैं और बाह्य वस्तुओं की ज्ञान-प्राप्ति में सहायक होते हैं।

बच्चे के प्रत्यक्ष और उपलम्भन जितने अच्छे होंगे उतना ही उत्तम और स्पष्ट उसका ज्ञान होगा।

एक छोटे बच्चे का उदाहरण लीजिए जिसने कभी घड़ी नहीं देखी है। यदि कोई अध्यापक उस बच्चे को घड़ी के ऊपर पाठ दे रहा हो और घड़ी केवल दिखाकर उससे कहता है कि यह घड़ी है। यह समय देखने के काम में आती है। यह काँच और चाँदी की बनी है। इत्यादि-इत्यादि। तो क्या ऐसा कहने

से ही बच्चे को घड़ी का स्पष्ट ज्ञान हो जायगा ? हम तो यही कहेंगे कि नहीं। इस प्रकार अध्यापकगण बच्चों को अनेक ऐसी वस्तुओं के विषय में पाठ देते हैं, जिन्हें उन्होंने पहले कभी देखा नहीं; छुआ नहीं; सूँघा नहीं; तोड़ा-फोड़ा नहीं; चक्खा नहीं; उठाया नहीं; अर्थात् जिनके प्रत्यक्ष और उपलम्भन इन्हें पहले नहीं हुए हैं। अतः बच्चों का उन पाठों के देने की बड़ी आवश्यकता है जिनसे उन्हें अनेक वस्तुओं के छूने, चखने, तोड़ने, फोड़ने, उठाने, फेंकने, पकड़ने, काटने, सूँघने, देखने का वार-बार अवसर मिले। जो अध्यापक बच्चों को शिक्षा देने में इस सिद्धान्त का ध्यान नहीं रखते, वे बच्चों को अनेक पाठ तो पढ़ा देते हैं; किन्तु फिर भी बच्चों को स्पष्ट ज्ञान नहीं होता। अतः जब वे बच्चों की परीक्षा लेते हैं और देखते हैं कि उन्हें उनके प्रश्नों का उत्तर नहीं आता या जब इन्सपेक्टर महाशय पाठशाला का निरीक्षण करते समय बच्चों से प्रश्न पूछते हैं और बच्चे उत्तर नहीं दे पाते तो वे उन (बच्चों) से क्रुद्ध हो जाते हैं और यदि उन्होंने (बच्चों ने) भविष्य में किसी प्रश्न का उत्तर नहीं दिया तो उन्हें बड़ी मार मारते हैं।

जिन माता-पिता के पास पर्याप्त धन हो, उन्हें चाहिए कि वे अपने छोटे बच्चों को अनेक प्रकार के खिलौने खेलने को दें ताकि उनके छूने, तोड़ने-फोड़ने से उन्हें (बच्चों को)

अनेक प्रत्यक्ष और उपलम्भन हों और उनके ज्ञान का विकास हो। बहुत से माँ-बाप बच्चों को खिलौने इस कारण नहीं देते कि वे उन्हें तोड़-फोड़ डालते हैं। मैंने देखा है कि वे खिलौनों को ऐसे उच्च स्थान पर टाँग या रख देते हैं, जहाँ बच्चे पहुँच न सकें।

बच्चों को शिक्षा देते समय किस इन्द्रिय और तज्जनित ज्ञान को सर्वोच्च आसन देना चाहिए ?

इस प्रश्न के उत्तर में कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं। उनके पढ़ने से जो फल निकले वही इस प्रश्न का उत्तर जानना चाहिए:—

(१) घंटी की ध्वनि का ज्ञान हमको तभी होता है जब ईथर वायु आकर हमारे कर्णों को स्पर्श करती है। यदि ईथर वायु हमारे कानों को न छुए, तो घंटी के ध्वनि की लहरों का प्रभाव हमारी कर्ण-इन्द्रिय पर नहीं पड़ सकता। जब तक कर्णेन्द्रिय पर ध्वनि की लहरों का प्रभाव नहीं पड़ेगा, तब तक शब्द-प्रत्यक्ष और शब्द-उपलम्भन नहीं हो सकते।

(२) स्वाद-प्रत्यक्ष या उपलम्भन हमको तब तक नहीं हो सकते जब तक कि कोई वस्तु हमारी जिह्वा का स्पर्श न करे।

(३) घ्राण-प्रत्यक्ष या उपलम्भन हमको तभी हो सकते

हैं, जब सुगन्ध या दुर्गंध के सूक्ष्म परमाणु हमारी घ्राणे-न्द्रिय अर्थात् नासिका को स्पर्श करते हैं।

(४) स्पर्श-प्रत्यक्ष और उपलम्भन भी तभी होते हैं जब कोई वस्तु या पदार्थ हमारी त्वचा को स्पर्श करे या हम किसी वस्तु या पदार्थ को स्पर्श करें। इन दोनों दशाओं में उस वस्तु वा पदार्थ का प्रभाव हमारी त्वचा पर पड़ता है। वह प्रभाव ज्ञानस्नायु द्वारा शरीर में होता हुआ मस्तिष्क तक पहुँचता है और तब मन को उस प्रभाव की प्रतीति होती है।

(५) एवम् चाक्षुष प्रत्यक्ष और उपलम्भन भी तभी होते हैं जब बाह्य पदार्थों का प्रभाव हमारे चक्षुओं पर पड़कर उनको स्पर्श करता है।

अब यह कह देना अनुचित न होगा कि सर्व प्रकार के प्रत्यक्षों और उपलम्भनों का होना स्पर्श-क्रिया पर ही निर्भर है। स्पर्श-क्रिया स्पर्शेन्द्रिय (त्वचा) के द्वारा ही होती है।

अतः बच्चों की शिक्षा में स्पर्शेन्द्रिय और तज्जनित ज्ञान को सर्वोच्च आसन देना चाहिए।

बच्चों को शिक्षा देने में स्पर्शेन्द्रिय का प्रयोग और उस (प्रयोग) की महत्ता

स्पर्शेन्द्रिय (Sense of touch) का बच्चों को शिक्षा देने में अच्छा प्रयोग करना आवश्यक है। इसके प्रयोग करने से जो लाभ होते हैं उनका महत्त्व निम्न-लिखित उदाहरणों से विदित हो जायगा।

(क) कल्पना करो कि कोई शिक्षक छोटे बच्चों को ककड़ी के विषय में कुछ पढ़ा रहा है। वह बच्चों से कहता है कि ककड़ी हाथ में उठाओ। ककड़ी हाथ में उठाने से हाथ ककड़ी को छुएगा। ककड़ी छूने से बच्चों की त्वचा पर एक प्रकार का विशिष्ट प्रभाव पड़ेगा अर्थात् बच्चों को ज्ञात होगा कि ककड़ी कठिन है या कोमल, ठंढी है या उष्ण, चिकनी है या खुरदरी। ककड़ी को उठाने में बच्चों ने अपनी मुस्लियों (Muscles) का प्रयोग भी किया। मुस्लियों का प्रयोग करने से उनके (मुस्लियों के) ऊपर कुछ ज़ोर भी पड़ा। मुस्लियों पर ज़ोर पड़ने से बच्चों को विदित हुआ कि ककड़ी भारी है या हलकी। ककड़ी का स्पर्श करने से बच्चों को यह ज्ञात हुआ कि ककड़ी ठोस है या पोली। ककड़ी के उठाने से बच्चों को केवल स्पर्श प्रत्यक्ष (Sensation of touch) और उपलम्भन ही नहीं हुए किन्तु उन्हें मुस्लियों के प्रत्यक्ष (Muscular Sensation) और उपलम्भन भी हुए।

(ख) जब मैं घंटी बजाता हूँ तो मुझे स्पर्श-प्रत्यक्ष (संवेदन) और उपलम्भन तो होते ही हैं किन्तु घंटी बजाने में मुझे अपना हाथ भी हिलाना पड़ता है। हाथ को इधर-उधर हिलाने से मेरी हस्त-मुस्लियों पर भी ज़ोर पड़ता है। इस कारण मुझे मुस्ली-संवेदन और उपलम्भन भी हुए।

इस प्रकार स्पर्श-क्रिया से (वस्तुओं के छूने से) स्पर्श संवेदन और उपलम्भनों के अतिरिक्त मुस्ली-संवेदन (Muscular Sensation) और उपलम्भन भी होते हैं। मुस्लियों के प्रयोग से हमें एक विशेष प्रकार का आनन्द प्राप्त होता है । आनन्द मिलने से हमारा ध्यान किसी भी कार्य में अच्छी तरह लगता है । अर्थात् जिस काम को करने से हमें आनन्द मिलता है, उस काम में हमारा मन (Mind) अधिक ध्यान देता है । जिस काम के करने या होने में मन विशेष ध्यान देता है, उसका ज्ञान हमें शीघ्र हो जाता है और इसके साथ-साथ ज्ञान भी अच्छा होता है और यह ज्ञान चिरस्थायी होता है ।

मुस्लियों के प्रयोग करने की हमें स्वाभाविक इच्छा होती है । हम जब किसी व्यक्ति को साइकिल पर सवार देखते हैं, तो हमें भी साइकिल पर सवार होने की प्रबल इच्छा होती है ।

यदि लड़के सैनिकों या बालचरों को सामने से मार्च करते हुए निकलते देखते हैं, तो वे भी अपने स्थान पर खड़े-खड़े अपने हाथ पैर चलाने लगते हैं । इससे प्रतीत होता है कि वे अपनी मुस्लियों के चलाने की प्रबल इच्छा को रोक नहीं सकते । (छोटे बच्चे तो साइकिल पर सवार होने के लिए हमसे भी अधिक उत्सुक होते हैं । उन्हें तो चलती-फिरती वस्तुओं को देखने में ही बड़ा

आनन्द आता है।) जब हम किसी को फुटबाल खेलते देखते हैं, तो हमारी भी यही इच्छा होती है कि हम भी फुटबाल खेलें। यदि दो-चार मनुष्य ताश खेल रहे हों, तो हम भी चाहते हैं कि ताश के खेल में भाग लें। हम ताश के खेल देखने ही से संतुष्ट नहीं होते। जब हम कोई घंटी देखते हैं, तो हमें केवल उसे देखकर ही चैन नहीं पड़ती। हम यह भी इच्छा करते हैं कि उसे बजावें। टौर्च को देखकर भी हम यही इच्छा करते हैं कि उसे छुएँ, जलावें, खोलें और देखें कि उसके अन्दर क्या है। इन सब उदाहरणों से यह विदित होता है कि मुस्लियों का प्रयोग करने की हमें प्रबल इच्छा होती है। यदि कोई हमें नवीन वस्तु जो हमने देखी नहीं है दिखावे तो हमारी यही इच्छा होती है कि उस वस्तु को हाथ में लें, उसे छुएँ, उसे चक्खें, उसे खोलकर देखें कि उसके अन्दर क्या है? यद्यपि देखने से हमें उस वस्तु के चाक्षुष प्रत्यक्ष और उपलम्भन हो जाते हैं; किन्तु चैन तब तक नहीं पड़ती, जब तक उसे छुएँ नहीं। यद्यपि ताश के खेल को देखने से हमें चाक्षुष प्रत्यक्ष और उपलम्भन तो हो जाते हैं, किन्तु जबतक हम ताश को हाथ में लेकर न खेलें तब तक हमें पूर्ण आनन्द और संतोष नहीं होता अर्थात् जब तक हम ताश को स्पर्श कर अपनी स्पर्श-इन्द्रिय का प्रयोग न करें तब तक हमको चैन नहीं पड़ती। तात्पर्य यह है कि

वस्तुओं के स्पर्श करने की हममें नैसर्गिक इच्छा होती है। नैसर्गिक इच्छा के अनुकूल काम करने से हमें आनन्द प्राप्त होता है। आनन्द मिलने से रुचि होती है कि उस कार्य को जिसके करने से आनन्द मिल रहा है और अधिक करें। किसी कार्य में मन के लगने से वह शीघ्र समझ में आ जाता है। जिस पाठ में विद्यार्थी अरुचि प्रकट करते हैं, वह उन्हें सरलता से समझ में नहीं आता। स्पर्श-इन्द्रिय के प्रयोग से हमें आनन्द मिलता है, अतः जिस काम में स्पर्श-इन्द्रिय का प्रयोग किया जाता है, उसमें हम अधिक ध्यान देते हैं। जितना अधिक ध्यान किसी काम में या वस्तु पर लगता है, हमें उस काम या वस्तु के उतने ही अच्छे और उत्तम प्रत्यक्ष और उपलम्भन होते हैं। जितने अच्छे हमारे प्रत्यक्ष और उपलम्भन होंगे, उतना ही उत्तम और स्पष्ट हमारा ज्ञान होगा।

स्पर्श के प्रकार (Kinds of Touch)

ऊपर लिखे उदाहरणों से पाठकों को विदित हो गया कि स्पर्श दो प्रकार के होते हैं:—कर्माधान स्पर्श (Passive Touch) और क्रियावान् स्पर्श (Active Touch) जब हमारा शरीर किसी पदार्थ को छूता है या कोई पदार्थ हमारे शरीर को छूता है और उस पदार्थ का स्पर्श करने में हमें अपनी मुस्लियों का

प्रयोग नहीं करना पड़ता, तो हमें कर्माधान स्पर्श होता है और जब हमें स्पर्श करने में अपनी मुस्लियों का प्रयोग करना पड़ता है तो हमें क्रियावान् स्पर्श होता है। यथा—

(क) जो वस्त्र हम पहने रहते हैं, वे हमारे शरीर को स्पर्श करते रहते हैं या हमारा शरीर उन्हें स्पर्श करता रहता है। धारण किये हुए वस्त्रों को स्पर्श करने में हमें अपनी मुस्लियों का प्रयोग नहीं करना पड़ता। इसी प्रकार हमारे पैरों की त्वचा पहने हुए पदत्राणों को छूती रहती है, किन्तु पहने हुए पदत्राणों को स्पर्श करने में हमें अपनी मुस्लियों का प्रयोग नहीं करना पड़ता। एवम् जब हम शय्या पर शयन करते हैं, तो शय्या को हमारे अंग छूते रहते हैं किन्तु इस दशा में भी हमें अपनी मुस्लियों का प्रयोग नहीं करना पड़ता। ऐसे ही हम सड़क पर चल रहे हैं और भाग्यवशात् कोई काँटेदार पौदा हमारे शरीर को छू लेता है तो इस दशा में भी हमें अपनी मुस्लियों का प्रयोग नहीं करना पड़ता। जब किसी वस्तु को स्पर्श करने में हमें अपनी मुस्लियों का प्रयोग नहीं करना पड़ता, जब स्पर्श-क्रिया (Act of touch) में हमारी मुस्लियों पर बोझ नहीं पड़ता, तो हमें कर्माधान स्पर्श होता है। ऐसी दशा में हमें जो प्रत्यक्ष और उपलम्भन होते हैं, उन्हें कर्माधान स्पर्श-संवेदन का उपलम्भन कहते हैं।

अब निम्न-लिखित उदाहरणों का अवलोकन कीजिए।

उनके अवलोकन से पाठकों को विदित होगा कि यद्यपि उनमें भी स्पर्श का वर्णन है, तथापि 'स्पर्श' के अतिरिक्त उनमें मुस्लियों का प्रयोग भी है।

(ख) डेस्क के ऊपर हाथ फेरने में हमें डेस्क को तो अवश्य स्पर्श करना पड़ता है, किन्तु उसके ऊपर हाथ फेरने से हमें अपना हाथ इधर-उधर ले जाना पड़ता है। हाथ को डेस्क के धरातल के ऊपर इधर-उधर ले जाने में हमें अपनी मांसपेशियों का (याने मुस्लियों का) प्रयोग भी करना पड़ता है। अतः डेस्क के ऊपर हाथ फेरने में हमें उसका स्पर्श भी करना पड़ता है, जिससे हमें स्पर्श का ज्ञान होता है और मुस्लियों पर ज़ोर देने से हमें मुस्लियों का ज्ञान भी होता है।

किसी वस्तु को ऊपर उठाने में हमें एक तो उस वस्तु को छूना पड़ता है और साथ ही साथ अपनी मुस्लियों पर भी ज़ोर देना पड़ता है। यदि वस्तु भारी है, तो मुस्लियों पर अधिक ज़ोर देना पड़ेगा और यदि वस्तु हलकी है, तो मुस्लियों पर पहले की अपेक्षा कम ज़ोर देना पड़ेगा। मुस्लियों पर न्यूनाधिक भार पड़ने से किसी वस्तु के भारीपन और हलकेपन का ज्ञान होता है।

कोई वस्तु यदि दूर हो तो उसे पकड़ने के लिए हमें हाथ फैलाना पड़ता है। हाथ फैलाने से हमारी हस्त-

मुस्लियों को (Muscles of hand) भी फैलाना पड़ता है। अतः हमारी हाथ की मुस्लियों पर ज़ोर पड़ता है जिसके कारण हमें मुस्ली-प्रत्यक्ष और उपलम्भन होते हैं। जब हम उस वस्तु को हाथ से पकड़ेंगे, तो हमें स्पर्श-प्रत्यक्ष और उपलम्भन होंगे।

क भाग में जो उदाहरण दिये गये हैं, उनमें केवल "स्पर्श" क्रिया ही है। ख भाग में जो उदाहरण हैं, उनमें केवल स्पर्श-क्रिया ही नहीं है, किन्तु स्पर्श-क्रिया के संग संग मुस्लियों का प्रयोग भी है। क भाग के उदाहरणों में जिस स्पर्श का वर्णन किया गया है, उसे कर्माधान स्पर्श कहते हैं। ख भाग में जिस स्पर्श का वर्णन किया गया है उसे क्रियावान् स्पर्श कहते हैं। डेस्क पर हाथ फेरने में हमें डेस्क के धरातल का ज्ञान होता है कि वह सम है या खुरदरा। डेस्क के धरातल पर हाथ फेरते समय हाथ इधर-उधर जाता है। यदि हाथ सरलता से डेस्क के धरातल पर फिर जाता है, तो हस्त-मुस्लियों को कम परिश्रम करना पड़ता है और यदि डेस्क का धरातल खुरदरा है, तो हस्त-मुस्लियों को कुछ अधिक परिश्रम करना पड़ता है। इसी प्रकार यदि हम किसी कोमल पदार्थ को हाथ से दबाएँ तो हमारी हस्त-मुस्लियों को कम परिश्रम करना पड़ता है, यदि वस्तु कठिन है, तो उसके दबाने में हस्त-मुस्लियों को अधिक परिश्रम

करना पड़ता है। किसी वस्तु के दबाने में मुस्लियों पर जितना अधिक ज़ोर पड़ेगा, उतनी वह कठिन होगी। किसी चीज़ या पदार्थ को पकड़ने में हमें जितना अधिक अपना हाथ फैलाना पड़ेगा, उतना ही अधिक परिश्रम हमारी मुस्लियों को करना पड़ेगा। यदि हाथ अधिक दूर फैलाना पड़ेगा, तो हमें ज्ञान होगा कि वस्तु अधिक दूर है और यदि हमको हाथ कम फैलाना पड़ेगा, तो हमें बोध होगा कि वस्तु निकट है। यदि वस्तु बहुत ही दूर है, तो हाथ फैलाने के अतिरिक्त हमें अपनी कमर भी झुकानी पड़ेगी और यदि वस्तु इतनी दूर है कि हाथ फैलाने और कमर झुकाने से भी कार्य सिद्ध नहीं होता अर्थात् वस्तु को पकड़ने में हम असमर्थ रहते हैं, तो उस वस्तु के पकड़ने के निमित्त उठकर कुछ दूर पैरों से चलना पड़ता है। ऐसा करने में हमें अपनी पाद-मुस्लियों का प्रयोग भी करना पड़ता है। दूरी का ज्ञान होना सबसे पहले हाथ के फैलाने और हिलाने से ही आरम्भ होता है।

कठिनता और कोमलता का ज्ञान स्पर्श-क्रिया ही से होता है। कठिन और कोमल का उत्तम और स्पष्ट ज्ञान मुस्लियों के प्रयोग से प्राप्त होता है। ऊँचे और नीचे के ज्ञान का आरम्भ भी मुस्लियों के प्रयोग से होता है। यदि कोई वस्तु ऊँची है, तो हमें अपनी आँखें

और ग्रीवा को ऊपर उठाना पड़ता है । आँखें और ग्रीवा ऊपर की ओर तभी उठ सकती हैं, जब मांसपेशियाँ (मुस्लियों) का प्रयोग किया जाता है। हम पीछे कह आए हैं कि मांसपेशियों को काम में लाने से एक तो हमें आनन्द प्राप्त होता है और दूसरे हमें स्पष्ट ज्ञान प्राप्त होता है। अतः अध्यापकों को छोटे बालकों को पाठ पढ़ाते समय ऐसा अवसर अवश्य देना चाहिए, जिससे कि उन्हें स्पर्श करने का और अपनी मुस्लियों के प्रयोग का भी अवकाश मिले । इसका परिणाम यह होगा कि बच्चों को उस पाठ का स्पष्ट और उत्तम ज्ञान प्राप्त होगा।

बच्चे को विना हाथ-पैर फैलाए और हिलाए अपने निज शरीर और आत्मा (Self) का ज्ञान भी नहीं हो सकता है।

जो शिक्षक बच्चों को केवल वस्तुएँ दिखाकर (अर्थात् दर्शनमात्र कराकर) रख देते हैं, उनको छूने, उठाने, खोलने, फेंकने, पकड़ने और काटने, चखने का अवसर नहीं देते, वे केवल भूल ही नहीं वरन् महान् भूल करते हैं। दूसरे शब्दों में यों कहना चाहिए कि बच्चों को अपनी त्वचा और मुस्लियों के प्रयोग करने का अवकाश न देकर वे बड़ी चूक करते हैं । जब तक बच्चे वस्तुओं को उठाएँगे नहीं उन्हें हलके और भारी का ज्ञान कैसे हो सकता है ? जब तक बच्चे वस्तुओं के पकड़ने के निमित्त अपना हाथ न फैलाएँगे

उन्हें दूर और निकट का ज्ञान कैसे प्राप्त हो सकता है ? एवम् जब तक बच्चे वस्तुओं को दबाने में अपनी मुस्लियों पर ज़ोर न देंगे, तो उन्हें कठिन और कोमल का ज्ञान कैसे हो सकता है ? जब तक बच्चे पोली वस्तु के अन्दर देखने में अपनी चाक्षुष मुस्लियों का प्रयोग कर उनके ऊपर ज़ोर नहीं डालेंगे, तो उन्हें ठोस और पोले का ज्ञान कैसे होगा ? केवल यही नहीं, बच्चों को विना हाथ-पैर फैलाए और हिलाए अर्थात् विना स्पर्श और मुस्लियों के प्रयोग के अपने शरीर और आत्मा का ज्ञान भी नहीं हो सकता है । कदाचित् अभी यह वाक्य स्पष्ट न हो अतः इसके बारे में कुछ कह देना भी यहाँ पर हम हितकर समझते हैं ।

बच्चा जब बकौवाँ-बकौवाँ चलता है, तो कभी-कभी उसका सिर दीवार से टकरा जाता है । दीवार से टकराने में सिर को आघात पहुँचता है । जब सिर में चोट लगती है, तो बच्चे को दुःख होता है । बार-बार दीवार से टकराने में बच्चे के सिर पर बार-बार चोट लगती है और उसको बार-बार दुःख होता है । जब बच्चे का सिर दीवार से टकराता है, तो उसका सिर दीवार को स्पर्श करता है । दीवार को स्पर्श करने से बच्चे को दीवार के प्रत्यक्ष और उपलम्भन होते हैं । दीवार के प्रत्यक्ष और उपलम्भनों के होने के कारण बच्चा दीवार को अपने शरीर से

भिन्न समझता है और भविष्य के लिए इतना जानकार हो जाता है कि वह अपने सिर को दीवार के निकट नहीं ले जाता; क्योंकि वह जानता है कि दीवार के निकट सिर ले जाने में कहीं सिर में चोट न लग जाय।

कभी-कभी बच्चा अपनी उँगली को जलते हुए दीपक की लौ से छुआ देता है । बच्चे की उँगली जब दीपक की जलती हुई लौ को स्पर्श करती है, तो वह जल जाती है। उँगली के जलने से बच्चे को बड़ा कष्ट होता है और बच्चे के मन को विदित होता है कि जलती हुई लौ को उँगली से छूने में उँगली जल जाती है और कष्ट होता है । यह ज्ञान बच्चे को तभी होता है, जब वह लौ को अपनी उँगली से स्पर्श करता है। यदि बच्चा लौ का स्पर्श न करे, तो उसे यह कैसे ज्ञात हो सकता है कि जलती हुई लौ को छूने से उँगली जल जाती है। लौ को स्पर्श करने के कारण बच्चा जानने लगता है कि 'वह' लौ से भिन्न है। जब बच्चा अनेक खिलौनों से खेलता है, तो वह उन्हें छूता है। खिलौनों को स्पर्श करने से बच्चे को खिलौनों के प्रत्यक्ष और उपलम्भन होते हैं। प्रत्यक्ष और उपलम्भनों के होने के कारण बच्चा जानने लगता है कि खिलौने उसके शरीर से भिन्न पदार्थ हैं।

बहुधा देखा गया है कि बच्चा अपने पैर के अँगूठे को हाथों से पकड़ कर चूसता है। अँगूठे को छूने और

चूसने से बच्चे को अँगूठे, मुख और हाथों के प्रत्यक्ष और उपलम्भन होते हैं। इस कारण बच्चा जानने लगता है कि अँगूठा उसके मुँह से भिन्न है, मुख हाथों से भिन्न है। किंतु यदि बच्चा दैवयोग से अपने अँगूठे को दाँतों से दबा डाले और बच्चे को दुःख हो, तो वह जानने लगता है कि यद्यपि ये अंग भिन्न-भिन्न हैं तथापि हैं वे सब उसी के शरीर के भाग।

छोटे बच्चे अपने सिर को अपने हाथों से थपथपाया करते हैं। कभी-कभी वे अपने सिर पर खिलौना मार लेते हैं। खिलौने की चोट लगने से बच्चे को कष्ट का अनुभव होता है। हाथों से सिर को स्पर्श करने में बच्चे को विदित होता है कि सिर भी उसके शरीर का एक भाग है। एवम् जब बच्चा किसी वस्तु के खाने में अपने मुँह की मुस्लियों का प्रयोग करता है, तो उसे जान पड़ता है कि मुँह भी उसका एक अंग है। इस प्रकार बच्चा अपने शरीर और उसके भागों को बाह्य पदार्थों से भिन्न समझने लगता है।

ज्यों-ज्यों बच्चा बड़ा होता जाता है, उसे अपनी आत्मा (Own self) का ज्ञान होने लगता है। जब वह कोई अच्छा कार्य करता है, तो उसके माँ-बाप, भाई-बहन, उसकी प्रशंसा करते हैं। अपनी प्रशंसा सुनकर बच्चा अपने 'आपको' कुछ समझने लगता है अर्थात् उसमें आत्म-गौरव-रूपी बीज का अंकुर निकलने लगता है।

कभी-कभी उसके माँ-बाप उससे कहते हैं कि देखो तुम्हारा सहपाठी दूसरा लड़का, जो तुम्हारी ही अवस्था का है, ७वीं श्रेणी में पहुँच गया है। किन्तु तुम अभी ५वीं कक्षा में ही पढ़ते हो या कभी वे उससे यह कह देते हैं कि अमुक लड़का तुमसे भूगोल में कई गुना चतुर और बुद्धिमान् है; क्योंकि उसने भूगोल में तुमसे अधिक नम्बर पाये हैं। ऐसी बातों को समझाने से अथवा इस प्रकार के प्रबोध से लड़का परिश्रम करने लगता है; क्योंकि लड़के के मन में स्पर्द्धा की जागृति हो जाती है। स्पर्द्धा की जागृति से लड़के का ध्यान अपनी उन्नति की ओर खींच जाता है, याने वह ऐसा काम करने लगता है, जिससे उसकी आत्मा को आनन्द प्राप्त हो। जब लड़का कोई अनुचित कार्य करता है, तो उसके माँ-बाप, गुरुजन, भाई-बन्धु और अन्य हितैषीगण उसके अनुचित कार्य की निन्दा करते हैं। निन्दा की चर्चा सुन बच्चे को बुरा लगता है। उसकी आत्मा को दुःख होता है। वह भविष्य के लिए ऐसा प्रयत्न करता है कि जिससे वह बुराइयों से बचे और उनसे बचकर अपने माँ-बाप, गुरु, भाई-बन्धु, इत्यादि का लाड़ला बने। (ऐसे प्रयत्न करने से उसका ध्यान अपनी 'आत्मा' की ओर आकर्षित होता जाता है। इस प्रकार गर्व (Pride), ईर्ष्या (Jealousy), लोभ (Avarice), प्रशंसा (Praise), सुख, दुःख, स्पर्द्धा

(Competition), न्याय और प्रतिवाद की ओर लड़के का ध्यान आकृष्ट करने से उसके विचार बाह्य वस्तुओं से हटकर उसके 'अंतःकरण' की ओर लगने लगते हैं। जिसका परिणाम यह होता है कि उसे अपनी आत्मा का आभास होने लगता है। यह आत्म-अनुभव जैसा पहले बतला चुके हैं स्पर्श-प्रत्यक्ष और उपलम्भनों के होने से आरम्भ होता है। मुस्ली-प्रत्यक्ष और उपलम्भन उस (आत्मअनुभव) को और भी अधिक स्पष्ट और पुष्ट करते हैं। जब अपने शरीर और उसके अंगों का ज्ञान और आत्मज्ञान का अंकुर बच्चों में स्पर्श-क्रिया और मुस्लियों के प्रयोग से उत्पन्न होता है तो शिक्षक के लिए यह परम आवश्यक है कि वह बच्चों की पढ़ाई में इसका अवश्य प्रयोग करे।

मुस्लियों के प्रयोग से जो स्पर्श होता है, उसे क्रियावान् स्पर्श कहते हैं और जिस स्पर्श-क्रिया में मुस्लियों का प्रयोग नहीं करना पड़ता, उसे कर्माधान स्पर्श कहते हैं। अतः मुस्लियों के प्रयोग करने से भी और साधारण ढंग से छूने में भी स्पर्श-क्रिया सम्मिलित है अर्थात् दोनों दशाओं में 'स्पर्श'-क्रिया ही प्रधान है। इस हेतु यह कह देना अनुचित न होगा कि स्पर्श-क्रिया पर ही हमारी सन्तान की शिक्षा निर्भर है।

स्पर्श-क्रिया पर ही हमारी संतान की शिक्षा निर्भर है।

अब तक हम उस ज्ञान का वर्णन करते आये हैं, जिसे हम इन्द्रियों द्वारा प्राप्त करते हैं। उस वर्णन से यह तो अवश्य स्पष्ट हुआ होगा कि इन्द्रियाँ ही हमारे ज्ञानरूपी भण्डार में प्रवेश करने के निमित्त राजमार्ग हैं किन्तु उससे अभी पाठकगणों को इस विषय का बोध सम्भवतः न हुआ होगा कि इन्द्रिय-जनित ज्ञान के विकास का क्रम क्या है अर्थात् उन्हें अभी यह न विदित हुआ होगा कि सबसे पहले किस इन्द्रिय से ज्ञान-प्राप्ति का श्रीगणेश होता है। अतएव अब हम इन्द्रिय-जनित ज्ञान के विकास का क्रम दर्शाते हैं—

इन्द्रियजनित ज्ञान के विकास का विशेष क्रम।

इन्द्रिय-जनित ज्ञान के विकास का एक विशेष क्रम होता है। उस क्रम का विवरण नीचे दिया गया है—

(१) बच्चे को सबसे पहले स्पर्शेन्द्रिय द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है। उत्पन्न होने के समय से ही बच्चा बाह्य पदार्थों को छूना आरम्भ कर देता है। जब वह अपनी माँ के अंक में पड़ा रहता है, तो उसका शरीर उसकी माँ के अंक को स्पर्श करता रहता है। इस कारण उसे यह ज्ञान होता रहता है कि उसका शरीर उसकी माँ की गोद से भिन्न है। जब बच्चा पालने में पड़ा रहता है, तो उसके हाथ-पाँव पालने की रस्सी और डंडों को छूते रहते हैं। रस्सी और डंडों को छूने से बच्चे को पालने के स्पर्शन प्रत्यक्ष और

उपलम्भन होते रहते हैं। इस हेतु वह अपने शरीर को पालने से भिन्न समझने लगता है। बच्चा अपनी माँ के मुख को तो देखता रहता है; किन्तु अभी उसकी आँखों में इतनी शक्ति नहीं होती कि वे वाह्य वस्तुओं का ज्ञान ग्रहण कर सकें। बच्चे की यह दशा उत्पन्न होने के कुछ दिवस पश्चात् तक रहती है। यही कारण है कि पहले बच्चा अपनी माँ और अन्य स्त्रियों में कुछ भी अन्तर नहीं समझता। ज्यों-ज्यों उस की चाक्षुष-इन्द्रियों की वृद्धि और पुष्टि होती जाती है, वे (चाक्षुष-इन्द्रियाँ) अपना कार्य करना प्रारम्भ कर देती हैं। फिर बच्चा अपनी माँ के गोद से दूसरी स्त्रियों के गोद में नहीं जाना चाहता और यदि कोई स्त्री उसे बलपूर्वक अपनी गोद में ले लेती है, तो वह रोने लगता है। पहले जब बच्चे की चाक्षुष-इन्द्रियाँ इतनी उत्तम नहीं थीं कि वे अपना कार्य उचित रीति से कर सकतीं, उस समय यदि बच्चे को कोई भी स्त्री गोद में ले लेती थी, तो वह रोता न था; क्योंकि उसे यह ज्ञान न था कि उसकी माँ और अन्य स्त्रियों की मुखाकृतियों में क्या अन्तर है। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि बच्चे को पहले चाक्षुष-प्रत्यक्ष और उपलम्भन नहीं होते थे। किन्तु जिस समय बच्चे की चाक्षुष-इन्द्रियाँ ज्ञान ग्रहण करने में असमर्थ होती हैं, उस समय उसकी स्पर्शेन्द्रिय अपना काम सुचारु रूप से संचालित करती रहती हैं।

यही कारण है कि यदि बहुत छोटे बच्चे की उँगली पैर से दब जाय या उसका हाथ जल जाय, या उसकी उँगली दीपक की लौ को या जलते हुए कोयले को दैवात् स्पर्श कर ले, तो वह रोने लगता है। दीपक या कोयले से जलने का ज्ञान बच्चे को तभी हो सकता है जब बच्चे की स्पर्शेन्द्रिय अपना कार्य करे अर्थात् बाह्य वस्तुओं के प्रभाव (Effect) को ग्रहण कर सके।

(२) स्पर्शेन्द्रिय-जनित ज्ञान के पश्चात् बच्चे को चाक्षुष-इन्द्रिय-जनित ज्ञान अर्थात् दृष्टि-ज्ञान होता है। बच्चे के सामने यदि पहले-पहल कोई दीपक लाया जाय तो प्रतीत होगा कि कुछ समय तक बच्चा दीपक की ज्योति पर अपनी आँखें ठहरा नहीं सकता। उसकी आँखें दीपक की ज्योति के कारण पहले चकाचौंध हो जाती हैं; क्योंकि उसकी आँखों की मुस्लियाँ पहले निर्बल होती हैं। धीरे-धीरे ज्यों-ज्यों बच्चे की आँखों की मुस्लियाँ पुष्ट और बलवती होती जाती हैं, त्यों-त्यों बच्चा दीपक की ज्योति पर अपनी आँखें ठहराने लगता है। पीछे-पीछे वह दीपक को देख कर प्रसन्न होता है और जलते हुए दीपक की ओर टकटकी बाँध कर देखने लगता है। कुछ दिवस पश्चात् बच्चा अँधेरे में रहना अच्छा नहीं समझता और यदि उसके सामने से जलता हुआ दीपक हटाया जाय तो वह रोने लगता है। (क्योंकि उसे अन्धकार प्रिय नहीं

लगता ।) ज्यों ही बच्चे के सामने फिर से दीपक लाया जाता है, वह रोना बन्द कर देता है। बच्चा जब अनेक वस्तुओं को देखता है, तो उसे चाक्षुष-प्रत्यक्ष और उपलम्भन होते हैं । जिनसे वह जानने लगता है कि यह बिल्ली है, यह कुत्ता है, यह टोपी है, यह पुस्तक है। वस्तुओं के अन्दर देखने से बच्चे को ज्ञान होता है कि वे पोली हैं या ठोस ।

(३) चक्षुरिन्द्रिय-जनित ज्ञान के पश्चात् बच्चे को कर्ण-इन्द्रिय-जनित ज्ञान अर्थात् श्रावण-ज्ञान होता है। वार्त्तालाप करने और समझने की शक्ति बच्चे को उत्पन्न होने के बहुत दिवस पश्चात् प्राप्त होती है । मेघों के गर्जन को अथवा तोपों की गूँज को सुनकर बच्चा प्रथम डरा करता है । बच्चे की माँ उससे प्रतिसमय कुछ-न-कुछ बोला ही करती है, चाहे बच्चा उसकी वार्त्तालाप को समझे या न समझे। कुटुम्ब के अन्य लोग भी उससे बोला ही करते हैं । बच्चा उन लोगों के शब्दों को पहले चुपचाप सुना करता है, यद्यपि वह बोल नहीं सकता तथापि उसे माँ-बाप, भाई-बहन के बोले हुए शब्दों के प्रत्यक्ष और उपलम्भन होते ही रहते हैं। जिनके होने के कारण वह उनके शब्दों में भेद जानने लगता है और उन्हें उनके शब्दों से पहचानने लगता है। पीछे बच्चा जब बड़ा होता जाता है, तो उनके शब्दों का अनुकरण करने लगता

है। ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता जाता है उसे अनेक जीवों और वस्तुओं के शब्द-प्रत्यक्ष और उपलम्भन होते हैं, यथा घोड़े का हिनहिनाना, गाय का रँभाना, पक्षियों का चहचहाना, गधे का रेंकना, कुत्ते का भौंकना; मनुष्यों का रोना और गाना, घन्टी का बजना, शीशों का टूटना, घड़े का फूटना, सीटी का बजना इत्यादि । वह ध्वनि-प्रत्यक्ष और उपलम्भनों के होने के कारण जीवों और वस्तुओं को उनकी वाणी से सम्बद्ध कर लेता है । एवं वह वस्तुओं को उनके नाम से सम्बद्ध कर लेता है । अतः उसे यह ज्ञान होने लगता है कि अमुक वस्तु को पुस्तक कहते हैं, ऐसी वस्तु को लेखनी कहते हैं, ऐसी वस्तु को रोटी कहते हैं, ऐसी वस्तु को घड़ा कहते हैं। यही नहीं, वह अपने माँ-बाप, भाई-बहिन, और साथियों के शब्दों के उच्चारण का वैसा ही ढंग ग्रहण करता है, जैसा कि उनका है अर्थात् वह उनकी बोली का अनुकरण करता है। शब्दों को वस्तुओं से सम्बद्ध करने के कारण और मनुष्यों की बोली के अनुकरण करने के कारण वह कुछ समय पश्चात् बोलना सीख लेता है और दूसरों की कही हुई बातों को समझने लगता है ।

(४) श्रावण ज्ञान के पश्चात् बच्चे को स्वाद-ज्ञान और स्वाद-ज्ञान के पश्चात् घ्राण-ज्ञान होता है । बहुधा देखा गया है कि बच्चों को जो पदार्थ खाने में स्वादिष्ट

लगते हैं, वे उन सबको मीठे बतलाते हैं और जो चीज़ें उन्हें खाने में अच्छी नहीं लगतीं, उन सबको कड़वी बतलाते हैं।

ऊपर लिखे क्रम से यह सिद्ध नहीं होता है कि जब बच्चों को शिक्षा देना आरम्भ करें तो सर्वप्रथम अध्यापक-गण स्पर्शेन्द्रिय का, तत्पश्चात् चक्षुरिन्द्रिय का तत्पश्चात् कर्णेन्द्रिय का तत्पश्चात् स्वाद-इन्द्रिय का और अन्त में घ्राणेन्द्रिय का साधन करें। ऊपर जो क्रम बतलाया है, वह तो केवल इस प्रयोजन से लिखा गया है कि अध्यापकों को छोटे बच्चे की आदि दशा में ज्ञान के विकास-क्रम का कुछ बोध हो जाय। हमारी पाठशालाओं में तो प्रायः पाँच वर्ष के बच्चे प्रवेश होने के निमित्त आते हैं। पाँच वर्ष के बच्चों में तो बहुत कुछ इन्द्रिय-जनित ज्ञान प्रवेश होने के पहले ही से उपस्थित होता है। यह दूसरी बात है कि उनका ज्ञान स्पष्ट व पुष्ट न हो; किन्तु कुछ-न-कुछ ज्ञान उनमें अवश्य होता है। अतः अध्यापक का धर्म है कि वह उनके ज्ञान को स्पष्ट और पुष्ट करें। किसी वस्तु या पदार्थ का स्पष्ट ज्ञान तभी होता है, जब हमें उस वस्तु या पदार्थ के अनेक और भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रत्यक्ष और उपलम्भन हों। भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रत्यक्ष और उपलम्भन हमें तभी होते हैं, जब हम अपनी भिन्न-भिन्न इन्द्रियों का प्रयोग करते हैं।

तात्पर्य यह है कि बच्चों की पढ़ाई में उनकी इन्द्रियों को जितना ही अधिक व्यवहार में लाया जायगा, उतना ही अधिक, उत्तम, स्पष्ट और पुष्ट उनका ज्ञान होगा। इस सिद्धान्त के समर्थन में एक उदाहरण नीचे दिया जाता है:—

'शब्द' पढ़ाने से पूर्व बालक में प्रत्यक्ष तथा उपलम्भन उत्पन्न करने चाहिए।

कल्पना करो कि दो अध्यापकों को 'नारंगी' शब्द पढ़ाना है। उनमें से एक तो बच्चों को नारंगी केवल दिखाकर ही कह देता है कि यह नारंगी है और मन में सन्तुष्ट होकर समझने लगता है कि बच्चों को 'नारंगी' का स्पष्ट ज्ञान हो गया। वह अनुमान करता है कि यदि कोई हम-से केवल 'नारंगी' शब्द कह देता है, तो हमें 'नारंगी' का ज्ञान उस मनुष्य के नारंगी-शब्द कहने पर ही हो जाता है। हमने तो इन बच्चों को नारंगी दिखला भी दी है। अतएव अब तो बच्चों को नारंगी का अच्छा ज्ञान हो ही गया होगा। जो अध्यापक ऐसा अनुमान करता है, वह यह विचार नहीं करता कि उसने भूत में 'नारंगी' केवल देखी ही नहीं है; किन्तु उसने उसे छुआ है, छीला है, छील कर खाया है, और नारंगी के अतिरिक्त उसने अनेक फल छील और काटकर खाये हैं। उसको 'नारंगी' के अनेक प्रत्यक्ष तथा उपलम्भन पहले हो चुके हैं।

नारंगी के प्रत्यक्ष और उपलम्भनों के अतिरिक्त उसे अन्य फलों के प्रत्यक्ष और उपलम्भन भी हो चुके हैं। नारंगी शब्द के सुनते ही पूर्व के सब प्रत्यक्ष और उपलम्भनों का सम्मिश्रण हो जाता है। स्मृति के कारण वे फिर से मन में सम्मिश्रित दशा में जाग्रत् हो जाते हैं। अतः नारंगी-शब्द के केवल उच्चारण ही से उसे नारंगी का ज्ञान हो जाता है। दूसरा अध्यापक बच्चों को नारंगी केवल दिखाकर ही सन्तुष्ट नहीं होता। वह तो नारंगी को दिखाने के अतिरिक्त बच्चों से उसे छुवाता है, छिलवाता है, फड़वाता है और सुँसुँवाता है। यही नहीं, वह बच्चों को छोटी और बड़ी नारंगियाँ दिखाता है। उन्हें कच्ची और पक्की नारंगियाँ चखने को देता है। इस क्रिया से बच्चों को स्पर्शन, श्रावण, घ्राण, चाक्षुष और स्वाद-प्रत्यक्ष और उपलम्भन होते हैं। इस हेतु बच्चों को नारंगी का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है। यदि दूसरा अध्यापक भी बच्चों को नारंगी केवल दिखाकर ही रख देता, तो बच्चों को नारंगी के स्वाद का शुद्ध ज्ञान कहाँ से होता? वे यह कैसे जान पाते कि कच्ची नारंगी खट्टी होती है किन्तु और पक्की मीठी होती है? वे इस बात से अनभिज्ञ रहते कि नारंगी की कैसी सुगन्ध होती है? उन्हें यह ज्ञान न होता कि नारंगी के अन्दर कई फाँकें होती हैं, इत्यादि। अतः शिक्षा देने में अध्यापक को

बच्चों की सब इन्द्रियों का यथाशक्ति प्रयोग करना चाहिए ; किन्तु प्रधानता स्पर्शेन्द्रिय को ही देनी चाहिए जैसा कि पीछे वर्णन किया गया है ।

कोई-कोई अध्यापक बच्चों को केवल शब्द ही सिखाते हैं । वस्तुओं का तो वे बच्चों को दर्शनमात्र भी नहीं कराते । वे बच्चों को नवीन शब्द (जिनके उन्हें प्रत्यक्ष और उपलम्भन कभी भी नहीं हुए हैं) पुस्तकों से पढ़कर सुना देते हैं और उनके दूसरे शब्दों में अर्थ बतला देते हैं । इतना ही करने पर वे अनुमान कर लिया करते हैं कि बच्चों को उन नये शब्दों का शुद्ध ज्ञान हो गया होगा । वे इस बात का तो विचार भी नहीं करते कि जो अर्थ उन्होंने बताए हैं, वे बच्चों की समझ में आ भी गये हैं या नहीं । परिणाम यह होता है कि बच्चे नवीन शब्दों को बिना समझे-बूझे रटा करते हैं । इस कारण वे स्मृति में ठहर नहीं सकते । जो अध्यापक बच्चों से ऐसा कराते हैं अर्थात् बिना समझाये-बुझाये नये शब्द रटने को देते हैं वे निस्सन्देह उनका अमूल्य समय नष्ट करते हैं । शिक्षकों को चाहिए कि वे बच्चों की इन्द्रियों का शिक्षा-प्रदान करने में उचित प्रयोग करें । ताकि नये शब्दों का वे समझ जायँ । लेखक ने (जो कि गवर्नमेंट हाई स्कूल आगरे की तीसरी कक्षा के विद्यार्थियों को डाइरेक्ट रीति से अँगरेज़ी पढ़ाता है) स्वयम् अनेक अध्यापकों

को अपने ऊपर, जब कि वह बच्चों के सम्मुख कूदने-फाँदने का काम किया करता था, हँसी करते देखा है। बहुत से अध्यापक तो यह भी कह देते थे कि हमसे ऐसा काम नहीं हो सकता। किन्तु मैं अपने अनुभव से कहता हूँ कि बच्चों की इन्द्रियों का प्रयोग अध्यापकगण निर्लज्ज और निडर होकर करवाया करें, तो बच्चे अच्छी उन्नति करते हैं। उन्हें इस बात की लज्जा नहीं होनी चाहिए कि वे बन्दर की नाईं बच्चों के सामने कूदते-फाँदते हैं। (१) पीछे बताया जा चुका है कि बच्चे उछलती, कूदती, नाचती, फाँदती और दौड़ती वस्तुओं में अधिक ध्यान देते हैं। (२) वे सर्वदा कोई न कोई कार्य करने को उद्यत रहते हैं। चुपचाप बैठना तो वे बड़ा ही बुरा समझते हैं। यदि १ ले और २ रे सिद्धान्त का उपयोग बच्चों की पढ़ाई में नहीं किया जाता, तो वह उन्हें भारतुल्य विदित होती है, और पाठशाला को एक प्रकार का बन्दीगृह समझते हैं। यह भी एक कारण है कि बहुत से बच्चे घर से पाठशाला जाते समय मार्ग में ही छिप जाते हैं और बहुत से सर्वदा यही मनाया करते हैं कि किसी न किसी कारण यदि पाठशाला में छुट्टी ही रहा करे तो क्या ही अच्छा हो।

द्वितीय अध्याय

इन्द्रियों के साधन और उनके उचित विकास के निमित्त कौन पाठ होने चाहिएँ ?

इस अध्याय में हम यह निश्चय करेंगे कि इन्द्रियों के साधन (Training of Senses) और उनके उचित विकास (Development) के निमित्त निबन्ध-शिक्षा देने में बच्चों के लिए कौन-कौन से पाठ होने चाहिएँ। पाठशाला की प्रारम्भिक कक्षा में प्रायः ५ या ६ वर्ष की अवस्थावाले बच्चे प्रविष्ट होते हैं। प्रथम अध्याय में पहले ही बता चुके हैं कि इस अवस्था के बच्चों का ज्ञान कुछ न कुछ विकसित होता है; किन्तु अनुभव से सिद्ध है कि उनका ज्ञान शुद्ध और स्पष्ट नहीं होता। अतः उनके निमित्त ऐसे पाठों की अत्यन्त आवश्यकता है जिनके पढ़ाने से उन्हें उत्तम संवेदन और उपलम्भन हों और अपनी इन्द्रियों के प्रयोग करने का खूब अवसर मिले। प्रथम अध्याय में बच्चों की प्रकृति का शिक्षा से घनिष्ठ सम्बन्ध भी दर्शाया गया है। अतएव जो पाठ बच्चों को दिये जायँ वे उनकी प्रकृति से अवश्य सम्बद्ध होने चाहिएँ। इन दो मोटे सिद्धान्तों के अनुसार ५ या ६ वर्ष की आयुवाले बालकों के निमित्त निबन्ध-पाठों की एक सूची नमूने के रूप में नीचे दी जाती है:—

(क) निकटवर्ती स्थूल पदार्थ जिनको बच्चे प्रतिदिन कक्षा के कमरे में देखते हैं (उनके विषय में वार्त्तालाप करना) यथाः—

(१) अध्यापक की मेज़।

(२) बच्चे के बैठने की कुर्सी।

(३) श्याम पट्ट अर्थात् लिखने का काला तख़्ता।

(४) पाठशाला के कमरे की दीवारें, (भित्तियाँ) कपाट, और खिड़कियाँ।

(५) शिक्षक का सन्दूक़।

(६) हाज़िरी-रजिस्टर।

(७) डेस्क।

(८) गोलियों का चौखटा।

(९) भूगोल का चित्र (नक़्शा)।

(१०) शिक्षक की पुस्तकें, इत्यादि-इत्यादि।

नमूने के ढंग पर एक पाठ उसके पढ़ाने की रीति के सहित नीचे दिया गया हैः—

बालक के बैठने की कुर्सी।

अध्यापक एक कुर्सी को कक्षा के सामने रक्खे। फिर निम्न-लिखित प्रश्न बच्चों से पूछेः—

(१) बच्चो, यह क्या है? (वह कुर्सी है।) ध्यान रखना चाहिए कि बच्चों के उत्तर पूर्ण वाक्यों में हों।

(२) कुर्सी किस लिए है? (कुर्सी बैठने के लिए है।)

(३) कुर्सी कहाँ है ? (बच्चे चाक्षुष इन्द्रिय का प्रयोग कर उत्तर देंगे कि कुर्सी फ़र्श पर है ।)

(४) (शिक्षक कुर्सी को उठाकर मेज़ के या किसी और वस्तु के ऊपर रखकर पूछे) अब कुर्सी कहाँ है ? (इस प्रश्न के उत्तर देने में फिर बच्चे चक्षुओं का प्रयोग करेंगे और उत्तर देंगे:—कुर्सी मेज़ पर है ।)

(५) (अब शिक्षक बच्चों से कहे कि कुर्सी को फ़र्श पर रक्खो । इस काम को करने में उन्हें कुर्सी छूनी पड़ेगी और उठानी पड़ेगी । कुर्सी को छूने और उठाने से उनको स्पर्शेन्द्रिय और मुस्लियाँ व्यवहार में आएँगी । अतः उन्हें स्पर्श तथा मुस्ली-प्रत्यक्ष और उपलम्भन होंगे ।) तुम कुर्सी को कहाँ रखते हो ? (फ़र्श पर)

(६) उठाने से कुर्सी कैसी विदित होती है ? (भारी)

(७) (अब अध्यापक बच्चों से अनेक 'भारी' और हलकी वस्तुओं को उठवावे ताकि बच्चों को हलके और भारी का स्पष्ट ज्ञान हो। यथा—रुई, पत्थर, लोहा, काग़ज़, इत्यादि) काग़ज़ उठाने से कैसा विदित होता है ? लोहा उठाने से कैसा विदित होता है ?

(८) कुर्सी किस वस्तु की बनी है ? (लकड़ी की) पुस्तक किस वस्तु की बनी है । (काग़ज़ की) दावात किस चीज़ की बनी है ? (काँच की) इस कमरे में और कौन वस्तुएँ लकड़ी की बनी हैं ?

(९) (अब अध्यापक बच्चों के सम्मुख इधर-उधर घूमे और पूछे) मैं क्या कर रहा हूँ ? (श्रीमान् आप घूम रहे हैं ।) मैं किस वस्तु द्वारा घूम रहा हूँ ? (टाँगों से ।) मेरी कितनी टाँगें हैं ? (दो ।) तुम्हारी कितनी टाँगें हैं । (दो ।) तुम्हारी टाँगें किस काम के लिए हैं ? (अब शिक्षक कुर्सी की टाँगों की ओर संकेत करते हुए पूछे) ये क्या हैं ? (वे कुर्सी की टाँगें हैं ।) कुर्सी की कितनी टाँगें हैं ? कुर्सी की टाँगें किस काम की हैं ? (इन प्रश्नों के उत्तर देने में बच्चे अपने चक्षुओं का प्रयोग करेंगे ।)

(१०) (अब अध्यापक अपनी पीठ को छूता हुआ पूछे ।) यह क्या है ? (वह आपकी पीठ है।) (अध्यापक अपनी पीठ झुकावे और पूछे ।) मैं क्या करता हूँ ? (आप अपनी पीठ झुकाते हैं ।) (तुम लोग भी अपनी पीठ झुकाओ) तुम क्या करते हो ? (कुर्सी की पीठ की ओर संकेत करते हुए अध्यापक पूछे) यह कुर्सी का कौन भाग है ? कुर्सी की पीठ किस काम की है ? कुर्सी की पीठ को कौन बालक झुका सकता है ? क्यों नहीं ?

(११) (अध्यापक कुर्सी पर बैठे और पूछे) मैं कहाँ बैठा हूँ ? (श्रीमान्, आप कुर्सी पर बैठे हैं ।) (अब अध्यापक बालकों को भी कुर्सी पर बैठने का अवसर दे जिससे उन्हें अपनी मुस्लियों का प्रयोग करना पड़े ।) तुम कहाँ वैठे हो ? (इस कुर्सी पर खड़े हो) तुम कहाँ

खड़े हो ? इस प्रकार के वार्तालाप के पश्चात् शिक्षक बालकों को दो दलों में बाँट दे और एक दल को दूसरे दल से कुर्सी के विषय में प्रश्न पूछने का अवसर दे। पाठ में ऐसा परिवर्त्तन प्रवेश करने से उसमें रोचकता आ जाती है और बच्चों को प्रश्न पूछने का भी अभ्यास हो जाता है। जिस दल के बालक प्रश्नों का कम उत्तर दें उन्हें समझना चाहिए कि वे हार गये। बच्चों को दलों में विभाजित करने से पहले ही यह सब बातें समझा देनी चाहिए। यदि बालकों को यह बातें समझा दी जायँ तो वे पाठ में ध्यान लगाते हैं और उसके प्रति अपना उत्साह प्रकट करते हैं।

नोटः—हमारी मति के अनुसार छोटे बच्चों के निमित्त जो पाठशाला की सबसे छोटी कक्षा में भर्त्ती होते हैं, ऐसे पाठ देने की आवश्यकता है। एक तो ऐसे पाठ बच्चों को खेल से प्रतीत होते हैं; दूसरे उन्हें अपनी मुस्लियों को प्रयोग करने का अवसर मिलता है; तीसरे मुस्लियों के प्रयोग करने की बच्चों में नैसर्गिक इच्छा होती है; चौथे बच्चे प्रतिदिन कुर्सी, मेज़, इत्यादि वस्तुओं को देखते हैं। अतः इन वस्तुओं के विषय में जो कुछ उनसे कहा जाता है, उसे वे समझ लेते हैं। उन्हें यह भी ज्ञात होता है कि जो कुछ वे पढ़ रहे हैं, वह उनके लाभ का है। पाँचवाँ लाभ ऐसे पाठों के पढ़ाने से यह है कि ५ से ८ वर्ष की

अवस्था तक बच्चा अपने ही प्रतिवेश याने अड़ोस-पड़ोस का ही दास होता है। अर्थात् उसका ज्ञान अधिकतर अपने अड़ोस-पड़ोस के बारे में ही अधिक होता है; क्योंकि वह उनकी वस्तुओं को प्रतिदिन देखता है, छूता है, उठाता है, तोड़ता है, इत्यादि।

(ख) बच्चे खिलौने खेला करते हैं। खिलौने उन्हें बड़े प्यारे लगते हैं। अतः कुछ मौखिक पाठ (Oral Lessons) खिलौनों के ऊपर भी बच्चों को देने चाहिए, यथाः—

(१) गेंद।

(२) लट्टू।

(३) चकडोर।

(४) पतंग।

(५) सीटी।

(६) गुड़िया।

(७) रबर के गुब्बारे जिनको बच्चे बहुधा हवा में उड़ाया करते हैं।

(८) छोटे-छोटे लोहे के खिलौने, जैसे रेल, मोटर, रस्सी पर उछलनेवाले बंदर, इत्यादि-इत्यादि।

रबर की गेंद के ऊपर एक पाठ नमूने के ढंग से नीचे दिया गया हैः—

रबर की गेंद

पाठ की सामग्रीः—अध्यापक, एक रबर की गेंद, पाठ-

शाला के खेल-कूद के सुपरिन्टेन्डेन्ट (प्रबन्धक) महोदय से ले आवे और उसे बच्चों को दिखावे। तत्पश्चात् निम्न-लिखित प्रश्न बच्चों से पूछे:—

प्रश्नः—(१) यह क्या है? (श्रीमान्, वह एक गेंद है।)

(२) (गेंद को अध्यापक अपनी जेब में रख ले और पूछे) गेंद कहाँ है? (जेब में)।

(३) कौन बच्चा आकर गेंद को हमारी जेब से निकालेगा? (स्पर्शेन्द्रिय और मुस्लियों का प्रयोग।)

(४) तुम क्या करते हो? (मैं आपकी जेब से गेंद निकाल रहा हूँ।) (मुस्ली और त्वचा का प्रयोग)

(५) (गेंद को मेज़ के ऊपर रक्खो।) तुमने गेंद कहाँ रक्खी है?

(६) गेंद किस चीज़ की बनी है? (रबर की।) (चाक्षुष प्रयोग)

(७) तुमने रबर की बनी कौन-कौन वस्तुएँ देखी हैं? (चक्षुरिन्द्रिय का प्रयोग)

(८) (अब अध्यापक गेंद को भूमि पर पटके और जब गेंद उछले तो पूछे) गेंद क्या करती है?

(९) (अब अध्यापक गेंद को भूमि पर पटकने को कहे और पूछे) तुम क्या करते हो? (त्वचा और मुस्लियों का प्रयोग)

(१०) (फिर अध्यापक गेंद को ऊपर आकाश

में फेंके और जब वह नीचे आवे तो उसे पकड़े) मैं क्या करता हूँ ? (बच्चो, तुम भी गेंद को ऊपर आकाश में फेंको और उसे लोको ।) तुम क्या करते हो ?

(११) (अध्यापक गेंद पर ठोकर मारे और पूछे) मैं क्या करता हूँ ?

(अध्यापक बच्चों को भी गेंद पर ठोकर मारने को कहे) वह क्या करता है ?

(१२) (बच्चो, गेंद को दाहिने हाथ की हथेली पर रक्खो और इस लोहे के टुकड़े को बायें हाथ की हथेली पर रक्खो ।) दोनों में से कौन हलका है ? गेंद हलका क्यों प्रतीत होता है ? (उसके अन्दर हवा है ।)

ऊपर लिखे प्रश्नों का पूछना जब समाप्त हो जाय, तब अध्यापक बच्चों की दो टोलियाँ बना दे और फिर उन टोलियों को परस्पर प्रश्न करने को कहे ।

तत्पश्चात् शिक्षक बच्चों को श्रेणी के कमरे के बाहर ले जाय और वहाँ उन्हें गेंद उछालने, पटकने, फेंकने, पकड़ने और ठुकराने का अच्छा अवसर दे । जो कार्य बच्चे करें, उनके विषय में अध्यापक प्रश्न पूछे ।

नोट:—अध्यापक को इस बात का भली प्रकार अवलोकन करना चाहिए कि गेंद और कुर्सी के पाठ पढ़ाने में बच्चों की अनेक इन्द्रियों का प्रयोग यथा सम्भव किया गया है;

किन्तु मुख्यतः उनको स्पर्शेन्द्रिय (और मुस्लियों) को व्यवहार में लाया गया है।

(ग) बच्चे अपने गृहों पर, पाठशाला जाने के मार्ग में और पाठशाला के आसपास अनेक छोटे जानवर देखते हैं; यथाः—

(१) कुत्ता । अ.

(२) बिल्ली । अ.

(३) मुर्ग़ी । अ.

(४) बत्तख़ । ब.

(५) गाय या बैल या भैंस । अ.

(६) बकरी । ब.

(७) टिड्डा । ब.

(८) चींटी । ब.

(९) मछली । ब.

(१०) मेंढक या केंचुवा या मच्छर इत्यादि । ब.

अतः अध्यापक इन पर भी कई सरल पाठ दे सकता है। नमूने के ढंग पर एक पाठ पिल्ले के विषय में नीचे दिया गया है।

कुत्ते का पिल्ला ।

नोटः—बहुत से अध्यापक इस बात का बहाना किया करते हैं कि वे कुत्ते का पिल्ला घर से कैसे ला सकते हैं।

किन्तु ऐसा बहाना निरर्थक है; क्योंकि यदि अध्यापक किंचित् समय के लिये घर पर ही यह सोचकर चले कि कुत्ते का पिल्ला किस प्रकार पाठशाला में विना उसके लाये मिल सकता है, तो उसे कुत्ते के पिल्ले मिलने के अनेक उपाय समझ में आ जायँगे। पाठशाला के छात्रालय में अनेक कुत्ते रहा करते हैं। अध्यापक उसको वहाँ के किसी चपरासी द्वारा मँगा सकते हैं। बहुत से बच्चों के घरों में कुत्ते पाले जाते हैं। वह बच्चों से कह सकता है कि तुममें से कोई बच्चा (जिसके घर पर कुत्ते का पिल्ला हो) कुत्ते का पिल्ला लेते आना। पाठशाला का मेहतर भी कुत्ते का पिल्ला सरलता से ला सकता है। यदि इनमें से कोई भी न ला सके, तो अध्यापक किसी निकट के स्थान को स्मरण रक्खे, जहाँ उसने पिल्ले देखे हों और पाठ पढ़ाने के निमित्त प्रधान अध्यापक से छुट्टी लेकर या आज्ञा प्राप्त कर बच्चों को उस स्थान पर ले जाय। पाठ की सब कठिनाइयाँ हल हो सकती हैं, यदि अध्यापक उसके ऊपर किंचित् ध्यान दे।

'जिन खोजा तिन पाइयाँ" यह कहावत उन्हें सर्वदा ध्यान में रखनी चाहिए। इसके अनुसार काम करने से उन्हें विदित होगा कि बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं।

जैसे हो पिल्ला बच्चों के सम्मुख होना अत्यन्त आवश्यक है।

प्रश्नः—(१) यह क्या है (पिल्ला।)

(२) बड़ा होकर यह हमारे किस काम का होगा ? या तुम लोग इसे क्यों पालते हो ? (बड़ा होकर वह हमारे घरों की रक्षा करता है।)

(३) तुम इसे खाने को क्या क्या पदार्थ देते हो ? (चक्षुरिन्द्रिय का प्रयोग।)

(४) पाठशाला के हलवाई से इसके लिए कौन बच्चा एक पैसे का दूध ला सकता है ?

(५) (अच्छा इसे दूध पीने को दो) तुम पिल्ले को क्या पिला रहे हो ?

(६) (कुत्ते के पिल्ले बहुधा जाड़े की ऋतु में मिलते हैं।) बच्चो, तुम गरम वस्त्र क्यों पहने हो ? (ताकि ठंढ न लगे।) तुम लोग तो गरम वस्त्र धारण कर अपने को ठंढ से बचाते हो। बताओ तो यह अपने को ठंढ से कैसे बचाता है ? (उसके शरीर पर घने बाल हैं।)

(७) (पिल्ले के बालों पर हाथ फेरो।) (मुस्लियों का प्रयोग) इसके बाल छूने से कैसे प्रतीत होते हैं ? (कोमल)

(८) (कुत्ते के पिल्ले की टाँगों की ओर संकेत करते हुए पूछो) ये क्या हैं ? (टाँगें) पिल्ले की कितनी टाँगें हैं ? (चार) (आओ इसकी टाँगों को हाथ से छू-छूकर गिनो।) तुम क्या करते हो ? तुम्हारी कै टाँगें

हैं ? कुर्सी की कितनी टाँगें हैं ? तुम अपनी टाँगों से क्या लाभ उठाते हो ? पिल्ले की टाँगें किस लिए हैं ? (चक्षु-रिन्द्रिय का प्रयोग ।)

(९) यदि तुम्हारे शरीर पर मक्खी बैठे, तो तुम उसे कैसे उड़ाते हो ? (अपने हाथों से ।) पिल्ले के शरीर पर यदि मक्खी बैठे, तो वह कैसे उड़ाता है ? (वह अपनी दुम हिलाकर उसे उड़ा देता है ।)

(१०) (पिल्ले को उठाकर मेज़ पर रक्खो ।) तुम क्या करते हो ? पिल्ला कहाँ है ? (मुरली प्रयोग ।)

(११) (पिल्ले को भूमि पर रक्खो ।) अब पिल्ला कहाँ है ?

(१२) तुम किस से सुनते हो ? (कानों से ।) पिल्ले के कितने कान हैं ? (पिल्ले के कान गिनो) (पिल्ले के कान छुओ ।) तुम क्या छूते हो ? (अपने कान छुओ ।) तुम क्या छूते हो ?

(१३) तुम किस चीज़ से देखते हो ? (आँखों से ।) तुम्हारी कितनी आँखें हैं ? पिल्ले के कितनी आँखें हैं ? (दो ।) (अपनी आँखें बन्द करो) तुम क्या बन्द करते हो ? (अपनी आँखें खोलो ।) तुम क्या खोलते हो ? (पिल्ले की आँखें अपने हाथ से बन्द करो ।)

तुम क्या करते हो ? (पिल्ले की आँखें खोलो ।) तुम क्या करते हो ? वह क्या करता है ? (इत्यादि ।)

(१४) (पिल्ले को इस रस्सी से बाँधो ।) मोहन क्या करता है ? (पिल्ले को खोलो ।) भास्कर क्या करता है ?

(१५) वीरेन्द्र तुम पिल्ले को गोद में ले जाकर पाठ-शाला के चपरासी को दे आओ । (मुस्ली और त्वचा का प्रयोग ।)

इसके उपरान्त बच्चों से कह दे कि वे पिल्ले के विषय में बहुत-सी बातें अपने माँ-बाप से घर पर पूछें ।

बच्चों से कुत्ते और उसके पिल्ले की ध्वनि का अनुकरण भी करावे ।

(घ) बच्चों के शरीर और उसके अंगों पर अनेक रोचक पाठ दिये जा सकते हैं, यथाः—

(१) हाथ ।
(२) पैर ।
(३) सिर ।
(४) पेट ।
(५) आँख ।
(६) नाक, इत्यादि ।

सिर

प्रश्नः—तुम्हारा शरीर कितने भागों में बँटा है ? (अच्छा, आज हम सिर के विषय में बातचीत करेंगे ।)

(अब अध्यापक बच्चों से कहे कि अपने अपने सिर

छुओ।) प्रश्नः—तुम क्या छूते हो ? (हम अपना सिर छूते हैं।) (तुम लोग अपने-अपने सिर को हिलाओ।) मोहन क्या करता है ? रंगा क्या करता है ? वे क्या करते हैं ? (अपना सिर नीचे की ओर झुकाओ।) तुम क्या झुकाते हो ? (राम, तुम्हारे कितने सिर हैं ? बिल्ली के कितने सिर होते हैं ? कुत्ते के कितने सिर होते हैं ?) (अपने सिर को डेस्क पर रक्खो) तुम क्या करते हो ? तुम्हारा सिर कहाँ है ? बताओ तुम्हारा सिर कहाँ से कहाँ तक है ? (अपने सिर को दाहिनी ओर घुमाओ।) तुम अपने सिर को किस ओर घुमाते हो ? (अपने सिर को बाईं ओर घुमाओ।) मोहन अपना सिर किस ओर घुमाता है ?

मुँह

प्रश्नः—तुम खाते किससे हो ? (मुँह से।) (अपने मुँह को हाथ से छुओ।) तुम क्या छूते हो ? (अपना मुँह खोलो।) तुम क्या करते हो ? (अपना मुँह बंद करो।) तुम क्या बंद करते हो ? (अपना मुँह किसी रूमाल से पोंछो।) रूमाल से तुम क्या करते हो ? (अपने मुँह को वायु भरकर फुलाओ।) तुम क्या करते हो ? यदि तुम्हारा मुँह सी दिया जाय तो क्या होगा ? तुमने अभी हाथ फेरकर अपना सिर बताया है। अब यह तो बताओ कि तुम्हारा मुँह किसका भाग है ? (सिर का) सिर

के और कौन-कौन भाग हैं ? (यदि बच्चे उत्तर न दे सकें तो उनसे यही प्रश्न पूछा जाय।) तुम देखते किससे हो ?

आँख

(आँखों से) (अपनी आँखें छुओ।) तुम क्या छूते हो ? वह क्या छूता है ? तुम्हारी कितनी आँखें हैं ? (अपनी आँखें बंद करो।) तुम क्या बंद करते हो ? (अपनी आँखें खोलो।) तुम क्या खोलते हो ? (अपनी आँखें चारों ओर घुमाओ।) तुम क्या करते हो ? आँखें हमारे किस काम की हैं ? (सोहन की आँखों पर एक पट्टी बाँधो।) वह क्या करता है ? सोहन की आँखों पर क्या वस्तु बँधी है ? (सोहन की आँखों की पट्टी खोलो।) राजेन्द्र क्या करता है ? राजेन्द्र, तुम क्या करते हो ? एक बच्चे के कितनी आँखें होती हैं ?

नाक

प्रश्नः—आँखों के अतिरिक्त सिर के और कौन-कौन भाग हैं ? (नाक, कान।) (अपनी नाक छुओ।) तुम क्या करते हो ? तुम्हारी नाक में कितने छिद्र हैं ? (अपनी नाक साफ़ करो।) तुम क्या साफ़ करते हो ? इस कक्षा में किस बच्चे की नाक गन्दी है ? (यह पुष्प लो और सूँघो।) तुम क्या सूँघते हो ? (पुष्प।) तुम पुष्प किस अंग से सूँघते हो ? नाक किस काम की है ? यदि

तुम्हारी नाक न हो तो क्या होगा ? तुम्हारी कितनी नाक हैं ? चार बच्चों की कितनी नाक होंगी ?

कान

प्रश्नः—तुम किससे सुनते हो ? (कान से ।) तुम्हारे कितने कान हैं ? (अपने कानों को पकड़ो ।) तुम क्या करते हो ? (सब बच्चे अपना दाहिना कान पकड़ें ।) मोहन ने अपना कौन-सा कान पकड़ा है ? भास्कर ने अपना कौन सा कान पकड़ रक्खा है ? वीरेन्द्र, तुम क्या कर रहे हो ? पिल्ले के कितने कान होते हैं ? कान हमारे किस काम के हैं ? (अपने कानों में उँगली डालो ।) तुम्हारी उँगली कहाँ है ? ऐसे प्रश्न-उत्तर जब समाप्त हो जायँ तब अध्यापक बच्चों को प्रश्न पूछने का अवसर दे ।

तत्पश्चात् निम्न-लिखित खेल बच्चों को खेलाया जायः—अध्यापक बच्चों से कहे कि मैं जो कहता जाता हूँ, देखो कि वैसा ही करता हूँ कि नहीं, तुम भी जैसे मैं कहता हूँ वैसे मेरे साथ-साथ करते जाओ । यदि मैं कोई काम ठीक नहीं करता, तो तुम उसे ठीक-ठीक करो ।

फिर अध्यापक कहे—कान छुओ; नाक छुओ; आँख छुओ; मुँह छुओ; और जो-जो अध्यापक कहता जाय सो-सो स्वयम् करता जाय और बच्चे भी उसका अनुकरण करते जायँ, किंतु इस खेल में यह आवश्यक नहीं है कि जैसा शिक्षक कहे वैसा करे भी । उसकी इच्छा है कि

वह वैसा करे या न करे। मान लो कि अध्यापक कहता है कान छुआ; नाक छुआ; आँख छुओ इत्यादि तो अध्यापक जब यह कहता है कि कान छुओ, उस समय वह आँख छू सकता है। एवम् जिस समय वह कहता है, नाक छुओ, उस समय वह कान छू सकता है और यदि वह चाहे तो जब वह कहता है, नाक छुओ तो, वह नाक को भी छू सकता है अर्थात् वह जो कुछ कहता है वैसे ही वह कर भी सकता है और उसके विपरीत भी कर सकता है। इस खेल को खेलाने में आनन्द तब आता है जब अध्यापक तो कहता है, कान छुओ और बच्चे उसका अनुकरण करने से छूते हैं नाक।

नोट:—इस प्रकार के अनेक खेल अध्यापक खोजखोजकर निकाल सकते हैं; किंतु ऐसे खेल खोजकर निकालना चाहिए जो कि उन बातों से सम्बद्ध हों, जो पाठ में पढ़ाई गई हों। यदि उनका सम्बन्ध पाठ के विषय से होगा, तो बच्चे खेल ही खेल में नवीन पाठ सीख जायँगे।

(ङ) बच्चे घर पर और रास्ते में अनेक पेड़-पत्ती, फल-फूल, इत्यादि वस्तुओं को देखते हैं, यथा:—

(१) पीपल, आम, बरगद, सेमल, शीशम, नीम, जामुन, इमली आदि के पेड़।

(२) केले, अमरूद, अंगूर, नाशपाती, सेब, अनार, सेम और मटर की फलियाँ, इत्यादि।

(३) गुलाब का फूल, गेंदे का फूल, सूर्यमुखी का फूल, कनेर का फूल, इत्यादि । उनके ऊपर भी अनेक सरल और मौखिक पाठ दिये जा सकते हैं ।

(च) बच्चे कई प्रकार की वस्तुएँ घर पर, पाठशाला में, और रास्ते में आते-जाते समय देखते हैं । उनके विषय में अध्यापक वार्त्तालाप कर सकते हैं ; यथाः—

(१) बाल्टी या डोल ।

(२) मिठाई बेचनेवाले का तराज़ू ।

(३) खुरपी, फावड़ा, (जो कि नेचर स्टडी में काम आते हैं ।)

(४) चमड़े का बटुआ या कपड़े का बटुआ ।

(५) छाता, लालटेन, मोमबत्ती ।

(६) पाठशाला की घंटी या और कोई घंटी ।

(७) बोतल, गोली, कंघी, आइना, साबुन, तेल, तौलिया, इत्यादि ।

(८) ऐनक, उसका ढकना ।

(९) टोपी, कोट, पाजामा, धोती, सुई, तागा, क़ैंची, इत्यादि ।

(१०) चाक़ू, उस्तरा, रन्दा, आरी, नसेनी, इत्यादि (बढ़ईख़ाने की वस्तुएँ ।)

(छ) बच्चों को कुछ मौखिक पाठ उन आज्ञाओं

के विषय में भी दिये जा सकते हैं, जिनका प्रयोग शिक्षक बहुधा श्रेणी के कमरे के अन्दर करते हैं; यथाः— जाना-आना, बैठना-उठना, खोलना-बन्द करना, लगाना-खोलना, श्यामपट्ट साफ़ करना, लिखना-पढ़ना, उछलना-कूदना, दौड़ना, खड़ा रहना, खींचना, इत्यादि ।

(ज) बच्चों को ऐसे शब्दों के ऊपर भी पाठ दिये जा सकते हैं; जैसेः—सम-विषम; खुरदरा-चिकना; कठिन-कोमल; पुष्ट-निर्बल; श्याम-श्वेत; छोटा-लम्बा; पीला; हरा; लाल; मोटा-पतला; नवीन-पुराना; खट्टा-मीठा; कड़वा; नमकीन; इत्यादि ।

नोटः—आज्ञाओं के ऊपर एक पाठ नमूने के ढंग से नीचे दर्शाया गया है:—

आज्ञाः—आना-जाना; खोलना-बन्द करना; दौड़ना-खड़ा रहना।

आना-जानाः—(पहले अध्यापक स्वयम् दरवाज़े तक जाय और जिस समय जा रहा हो पूछे) मैं क्या कर रहा हूँ ? (आप दरवाज़े तक जा रहे हैं।) अब शिक्षक बालकों से कहे—भास्कर तुम दरवाज़े तक जाओ; सोहन तुम खिड़की तक जाओ, रमेश तुम कमरे से बाहर जाओ; रमा तुम श्याम के पास जाओ और उनसे पूछता जाय: भास्कर तुम क्या कर रहे हो ? सोहन तुम कहाँ जा रहे हो ? रमेश तुम कहाँ जा रहे हो ? रमा तुम क्या कर रहे

हो ? फिर अध्यापक उन बालकों से कहे:—भास्कर, तुम मेरे पास आओ; (जब भास्कर आ रहा हो तो अध्यापक पूछे) भास्कर तुम क्या करते हो ? रमेश, तुम कमरे के अन्दर आओ। (जब रमेश कमरे के अन्दर आ रहा हो, तो अध्यापक पूछे) रमेश तुम क्या करते हो ? इस प्रकार शिक्षक बच्चों को आने-जाने का खूब अभ्यास करावे। अध्यापक दो बच्चों को भिन्न-भिन्न दूरी के स्थानों तक जो कि कमरे के निकट ही हों जाने की आज्ञा दे और कहे, 'अच्छा देखता हूँ तुममें से कौन शीघ्र आता है'। ऐसा कहकर बच्चों में स्पर्द्धा उत्पन्न करे।

खोलना और बन्द करना:—अध्यापक कमरे के कपाट बन्द करे और खोले। जब वह कपाट बन्द कर रहा हो तो कहे, 'मैं कपाट बन्द कर रहा हूँ।' जब अध्यापक कपाट खोल रहा हो तो बच्चे कहें, 'मैं कपाट खोल रहा हूँ' फिर प्रश्न पूछे:—मैं क्या कर रहा हूँ ? इसके पश्चात् शिक्षक बच्चों को अनेक अभ्यास बन्द करने और खोलने का करावे, यथा वीरेन्द्र, तुम उस खिड़की को बन्द करो। मोहन, तुम उसे खोलो। भास्कर, तुम अपना मुँह खोलो। भास्कर, अब तुम अपना मुँह बन्द करो। बच्चो, अपनी आँखें बन्द करो। बच्चो, अपनी आँखें खोलो। सब बच्चे अपनी-अपनी पुस्तक खोलें। सब बच्चे अपनी-अपनी पुस्तक बन्द करें। इत्यादि-इत्यादि। जब बच्चे बन्द करने

और खोलने का काम कर रहे हों तो शिक्षक पूछता जाय:—तुम क्या कर रहे हो ? वह क्या कर रहा है ? वे क्या कर रहे हैं ? तुम क्या बन्द करते हो ? मोहन क्या खोल रहा है ? इत्यादि ।

दौड़ना और खड़ा रहना:—पहले अध्यापक कमरे के अन्दर बच्चों के सम्मुख दौड़े और फिर कुछ दूर यानी ७-८ क़दम दौड़कर खड़ा हो जाय। जब अध्यापक दौड़ रहा हो तो पूछे, 'मैं क्या कर रहा हूँ ?' और जब वह खड़ा रहे, तो पूछे, 'मैं क्या कर रहा हूँ'। अब अध्यापक दौड़ने और खड़े रहने के अनेक अभ्यास करावे।

खेल:—अध्यापक बच्चों को कमरे के बाहर मैदान में ले जाय। वहाँ उनको एक क़तार में अर्थात् लाइन में खड़ा करे। अध्यापक उनके सम्मुख कुछ दूरी पर खड़ा हो जाय और उन्हें समझावे कि जब मैं कहूँ 'बैठो' तो तुम खड़े रहना और जब मैं कहूँ अध्यापक कहता है कि बैठो तब तुम लोग बैठ जाना। उनके हृदय में यह बात अच्छी प्रकार बैठा दे कि जब मैं 'मैं' शब्द प्रयोग करूँ तो तुम लोग जो कुछ मैं आज्ञा दूँ उसके विपरीत काम करना; किन्तु जब मैं किसी भी आज्ञा के पूर्व 'अध्यापक' शब्द जोड़ दूँ तो तुम उस समय सही काम करना अर्थात् आज्ञा मानना। यदि आज्ञा अध्यापक के नाम से दी जाय और कोई बच्चा उसे ठीक रीति से न कर पाये तो वह

'मर जायगा' और रेखा से स्वयम् बाहर निकल जायगा। इसी प्रकार अध्यापक बच्चों को अनेक आज्ञा दे सकता है; यथा मुँह खोलना या बन्द करना; दौड़ना या खड़ा रहना; इत्यादि-इत्यादि। ऐसे खेलों से बच्चों की अवधान शक्ति प्रबल होती है। इसके अतिरिक्त उन्हें मुस्लियों के प्रयोग करने का अच्छा अवसर मिलता है, जिसके कारण वे पाठ के नये शब्दों के प्रति अति रुचि प्रकट करते हैं।

(ञ) एक और सूची पाठों की नीचे दी जाती है। बच्चे उन पाठों में सहर्ष ध्यान देते हैं; यथाः—

डेस्क, मेज़, कुर्सी, पुस्तक, लेखनी, श्यामपट्ट, कमरे का फ़र्श इत्यादि का नाप कराना जिससे उन्हें दूरी का ज्ञान हो।

विशेषणों के ऊपर एक आदर्श पाठ।

विशेषणः—श्याम और श्वेत; मोटा और पतला; छोटा और लम्बा।

अध्यापक बच्चों को अनेक 'श्याम' और श्वेत वस्तुएँ दिखाता हुआ कहता जाय—यह वस्तु श्वेत है, पर वह श्याम है। यथा खड़िया श्वेत है, किन्तु कोयला काला (श्याम) है। यह टोपी श्याम है, किन्तु वह टोपी श्वेत है। दीवार श्वेत है, किन्तु श्यामपट्ट श्याम है। यह लेखनी श्वेत है, किन्तु वह लेखनी श्याम है। इत्यादि।

फिर अध्यापक इस प्रकार के प्रश्न पूछेः—इस पुस्तक

का क्या रंग है ? खड़िया का क्या रंग है ? इस लेखनी का क्या रंग है ? उस लेखनी का क्या रंग है ? राम के कोट का क्या रंग है ? सोहन की टोपी किस रंग की है ? (अब अध्यापक श्वेत टोपी को श्याम टोपी के ऊपर रक्खे और पूछे) श्याम टोपी कहाँ है ? श्वेत टोपी कहाँ है ? (श्वेत टोपी को मेज़ पर रक्खो) अब श्वेत टोपी कहाँ है ? (श्याम कोट को खूँटी पर टाँगो ।) तुम क्या करते हो ? इत्यादि ।

मोटा और पतलाः—दो बालक जिनमें से एक पतला हो और दूसरा मोटा कक्षा के सामने खड़े किये जायँ । अब अध्यापक कहे—यह बालक मोटा है, किन्तु वह पतला है । फिर अध्यापक अनेक मोटी और पतली वस्तुएँ दिखावे । यथाः—यह कागज़ मोटा है, किन्तु वह कागज़ पतला है । यह छड़ी मोटी है, किन्तु वह छड़ी पतली है । यह लकड़ी का टुकड़ा मोटा है, किन्तु वह लकड़ी का टुकड़ा पतला है । (ऐसे भिन्न-भिन्न उदाहरण देकर बालकों को मोटे और पतले का ज्ञान कराया जाय ।) प्रश्नः—यह किताब कैसी है ? पतली किताब कहाँ है ? मेरे हाथ में मोटी लकड़ी के कितने टुकड़े हैं ? इस कक्षा में सबसे मोटा कौन बालक है ? इस कक्षा के सबसे पतले बालक का क्या नाम है ? मोटे कागज़ का क्या रंग है ? (पतले कागज़ को जेब में रक्खो ।) तुम क्या करते हो ?

(लकड़ी का मोटा टुकड़ा मेज़ पर रक्खो ।) लकड़ी का मोटा टुकड़ा कहाँ है ? इत्यादि-इत्यादि ।

छोटा और लम्बा :—बच्चों को अनेक छोटी वस्तुएँ दिखाई जायँ और साथ ही साथ कई लम्बी चीज़ें भी दिखाई जायँ । उनकी ओर संकेत करते हुए अध्यापक कहे कि यह छड़ी लम्बी है, पर वह छोटी । मोहन छोटा है, किन्तु भास्कर लम्बा है । मेरा हाथ लम्बा है, पर तुम्हारा हाथ छोटा है । यह रस्सी लम्बी है, किन्तु वह रस्सी छोटी है । यह लकीर लम्बी है, किन्तु वह लकीर छोटी है । इत्यादि-इत्यादि । प्रश्नः—(१) मेरे हाथ में कैसी छड़ी है ? (छोटी ।) (२) (तुम लम्बी छड़ी हाथ में लो) तुम्हारे हाथ में कैसी छड़ी है ? (३) (लम्बी रस्सी को मेज़ पर रक्खो ।) लम्बी रस्सी कहाँ है ? (४) (लम्बी और छोटी रस्सी को जोड़ो ।) तुम क्या करते हो ? (५) वह क्या करता है ? इत्यादि-इत्यादि ।

जब प्रश्न और उत्तर का कार्य समाप्त हो जाय तब बच्चों को दो दलों में बाँट दो और उन्हें भी प्रश्न पूछने का अवकाश दो ।

इसके उपरान्त बच्चों को खेल खेलने का अवसर दे ।

खेल

खेल नं० १, १० छोटी और १० लम्बी लकीरें अपनी कापियों में खींचो । खेल नं० २, अपने ग्राम के १० छोटे और १० लम्बे लड़कों के

नाम लो। खेल नं० ३, इस खेल को खेलाने के निमित्त बच्चों को बाहर मैदान में ले जाय। मैदान में ले जाकर बच्चों को दो रेखाओं में खड़ा कर दे। एक रेखा में छोटे-छोटे बच्चे खड़ा करे और दूसरी में लम्बे-लम्बे। दोनों रेखाओं के मध्य में कुछ दूरी अवश्य रक्खे। छोटे बच्चों की पीठ लम्बे बच्चों की पीठ की ओर होनी चाहिए। जिस ओर बच्चों का मुख है, उस ओर दोनों तरफ़ बराबर दूरी पर यानी २० फ़ीट या १५ फ़ीट की दूरी पर एक-एक और दूसरी रेखा भूमि पर खींची हुई होनी चाहिए। अब अध्यापक बच्चों को समझा दे कि जब मैं कहूँ "छोटे" तो छोटे बच्चे अपनी सीध में भागेंगे और लम्बे बच्चे उन्हें छूने का प्रयत्न करेंगे। यदि लम्बे बच्चे उन्हें उस रेखा के अन्दर-अन्दर जो कि २० या १५ फ़ीट की दूरी पर खींची हुई है छू लेंगे, तो छोटे बच्चे जो छू जायँगे लम्बों में मिलते जायँगे और यदि छोटे बच्चे उस २० या १५ फ़ीट की दूरीवाली रेखा से आगे निकल जायँगे, तो लम्बे बच्चे उन्हें छूने के अधिकारी न रहेंगे। कदाचित् उस रेखा से परे कोई लम्बा बच्चा छोटे बच्चे को छू भी ले तो भी छोटा बच्चा अपने ही दल में बना रहेगा। यही बात लम्बे बच्चों को समझा दे। जिस दल में कम बच्चे रह जायँगे, वह दल हारा हुआ माना जायगा। नीचे जो चित्र दिया गया है, उससे ऊपर लिखा हुआ खेल अच्छी तरह समझ में आ जायगा:—

चित्र नं० ६
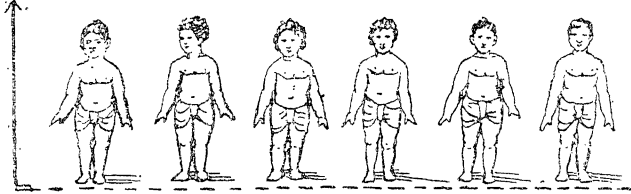
यदि छोटे बच्चे इस ....

लकीर को पार कर देंगे, तो उन्हें छूना निरर्थक है।
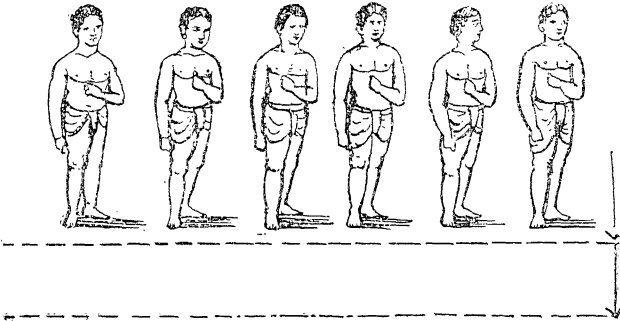
यदि लम्बे बच्चे इस लकीर को पार कर लेंगे, तो उन्हें छूना निरर्थक है।

नोटः—तीर बच्चों के मुँह और भागने की दिशा बताते हैं।

नोटः—इस अध्याय में पाठों के जो नमूने दिये गये हैं वह इस उद्देश्य से नहीं कि अध्यापक उनका अक्षरशः अनुकरण करें, किन्तु उनको देने का प्रयोजन यह है कि

शिक्षक उन सिद्धान्तों पर विचार करें, जिनके अनुसार वे लिखे गये हैं। प्रत्येक अध्यापक का कर्त्तव्य है कि वह सर्वदा शिक्षा-सिद्धान्तों को मनन करता रहे और स्वेच्छा-नुकूल उन्हें उचित रीति से प्रयोग करता रहे।

तृतीय अध्याय

अवलोकन (Observation)

जैसा कि प्रथम अध्याय में बतला चुके हैं, बच्चों का वस्तुओं का ज्ञान उनको छूने-चखने, देखने-भालने, तोड़ने-फोड़ने, और उठाने-फेंकने से ही होता है। या यों कहिए कि त्वचा, मुस्ली, आँख, कान, नाक, रसना इत्यादि इन्द्रियों के प्रयोग से बच्चों को उनका कुछ न कुछ ज्ञान अवश्य हो जाता है। इस ज्ञान का परिणाम यह होता है कि बच्चा केवल क्षणिक और साधारण दृष्टि ही से वस्तुओं को पहचान लेता है और उनके मोटे-मोटे गुणों को जान लेता है। वस्तुओं के गुणों को जानने के कारण वह उनकी जातियाँ बना लेता है।

व्यक्तिवाचक भाव, जातिवाचक भाव और सूक्ष्म भाव

व्यक्तिवाचक, जातिवाचक और सूक्ष्म भाव। (Particular Idea, Generic Idea & Abstract Idea)

कुत्ता जब अपने स्वामी को देखता है, तो उसे प्यार करता है; किन्तु किसी अज्ञात मनुष्य को देखकर वह उसे प्यार नहीं करता। वरन् भूँकता है और काटने दौड़ता है। यदि कुत्ता अपने स्वामी की विशेषताओं को समझता न होता, तो अज्ञात मनुष्य और उसमें कुछ भेद न कर सकता। वह उससे भी वैसा

ही व्यवहार प्रकट करता, जैसा कि वह अज्ञात मनुष्य के प्रति करता है। अर्थात् अपने स्वामी ही को देखकर वह भूँकता और काटने दौड़ता है। इससे स्पष्ट है कि कुत्ते को अपने स्वामी और अन्य मनुष्यों का ज्ञान अवश्य है। कुत्ता बिल्ली को देखकर उसका पीछा करता है और उसे मार डालने का प्रयत्न करता है। एवम् एक कुत्ता दूसरे कुत्ते को देखकर भूँकने लगता है। एक कुत्ता दूसरे अज्ञात कुत्ते को अपने स्वामी के घर पर नहीं आने देता।

गाय का उदाहरण लीजिए। गाय अपने स्वामी और उसके घरवालों को मारने नहीं दौड़ती; किन्तु बहुधा देखा गया है कि वह अज्ञात मनुष्यों को मारने दौड़ती है। यदि गाय अपने स्वामी को पहचानती न होती और उसको अन्य व्यक्तियों से भिन्न न समझती, तो वह अवश्य उसे भी मारने दौड़ती। इससे विदित है कि गाय को अपने स्वामी और अन्य व्यक्तियों का ज्ञान अवश्य है। नगर में रहनेवाली गौओं को मैंने देखा है कि वे ग्राम में रहनेवाली गौओं से कम चौंकने और डरनेवाली होती हैं। नगर में रहनेवाली गायों के सम्मुख होता हुआ यदि कोई मोटर, या गाड़ी, या छातावाला मनुष्य निकल जाय, तो वे चौंकती नहीं; किन्तु ग्राम में रहनेवाली गायें जब नगर में आकर पहले-पहल इन

वस्तुओं को देखती हैं, तो उन्हें उनका ज्ञान न होने से डर प्रतीत होता है। अतएव वे चौंका करती हैं। यदि नगर की गायों को मोटर, गाड़ी, छाता, इत्यादि का ज्ञान न होता, तो वे भी गाँव की गायों की नाईं चौंका करतीं। तीतर, बटेर, चकोर, इत्यादि पक्षी भी अपने स्वामी को पहचानते हैं। अतः जब उनका स्वामी उन्हें बुलाता है, तो वे उसके पास आ जाते हैं। सड़कों पर जो कुत्ते पड़े रहते हैं, उनके सामने से अनेक मनुष्य, जानवर, गाड़ी, मोटर, साइकिल निकल जाती हैं; किन्तु वे उन्हें देखकर भूँकते तक नहीं; क्योंकि उन्हें उनका कुछ न कुछ ज्ञान अवश्य है और वे उन्हें पहचानते हैं। किन्तु उनके सामने से यदि कोई अज्ञात या अद्भुत वस्तु यथा रीछ निकल जाय, तो वे उसे देखकर भूँकने लगते हैं। इससे प्रतीत होता है कि जिन वस्तुओं को वे प्रायः देखाभाला करते हैं, उनका उन्हें कुछ न कुछ ज्ञान अवश्य हो जाता है। मुझे अपना अनुभव है कि एक मुहल्ले में मैंने पहले-पहल घर किराये पर लिया। जो नया घर मैंने किराये पर लिया था उसके सन्निकट एक अन्य घर था। उस घरवालों का एक कुत्ता था। कुछ दिवस तक जब कभी मेरा और मेरे बाल-बच्चों का उस कुत्ते से सामना होता, तो वह हमें काटने दौड़ता था। किन्तु जब हम उस मुहल्ले में रहने लगे, तो वह शनैः शनैः हम सबको पहचान गया

और फिर हमें देखकर भूँकता न था। जब कभी हमारे घर पर कोई अज्ञात व्यक्ति आता तो वह भूँकने लगता था। कहने का तात्पर्य यह है कि हमको प्रतिदिन कई बार देखने-भालने से वह कुत्ता हमें पहचान गया। वह हमें पहचान तो गया था; किन्तु हमें अपने स्वामी की नाईं प्यार नहीं करता था। अर्थात् वह कुत्ता हम में, अपने स्वामी में, और अज्ञात व्यक्तियों में भेद कर सकता था, या यों कहिए कि उसको हमारा, अपने स्वामी का और अनजान व्यक्तियों का ज्ञान यानी भाव था। इन उदाहरणों के पढ़ने से पाठकों को दो प्रकार के भावों का आभास हुआ होगा।

(१) व्यक्तिवाचक भावः—वे भाव जो किसी विशेष व्यक्ति या पदार्थ से सम्बन्ध रखते हैं, व्यक्तिवाचक भाव कहलाते हैं। कुत्ते के जो भाव अपने स्वामी के प्रति होते हैं, उन्हें व्यक्तिवाचक भाव कहते हैं; क्योंकि वे एक विशेष व्यक्ति से, जो कुत्ते का स्वामी है, सम्बन्ध रखते हैं। एवम् गाय को जो भाव अपने स्वामी के होते हैं, वे भी व्यक्तिगत हैं। कुत्ते के जो भाव हमारी ओर थे, वे भी व्यक्तिगत हैं।

(२) जातिवाचक भावः—सड़क पर रहनेवाले कुत्तों के जो भाव मोटर, गाड़ी, मनुष्य, इत्यादि के सम्बन्ध में हैं, वे किसी विशेष वस्तु या मनुष्य से लगाव

नहीं रखते। इसी प्रकार नगर में रहनेवाली गाय में जो भाव मनुष्य, छाता, मोटर और इक्के इत्यादि के सम्बन्ध में हैं, वे भी किसी विशेष मोटर या छाता या व्यक्ति से सम्बन्ध नहीं रखते हैं। एवम् कुत्ते के जो भाव अन्य कुत्तों, मनुष्यों बिल्लियों इत्यादि के प्रति हैं, वे भी किसी विशेष कुत्ते या बिल्ली या मनुष्य से सम्बन्ध नहीं रखते हैं। ऐसे भावों से विदित होता है कि गाय, कुत्ता और दूसरे छोटे जीव भी एक या भिन्न-भिन्न जाति की कुछ वस्तुओं को देख-भालकर यह जान लेते हैं कि यह वस्तु मनुष्य है, यह वस्तु गाय है या वह वस्तु गाड़ी है, इत्यादि। अर्थात् वे अपने भावों द्वारा अनेक वस्तुओं की जातियाँ बना लेते हैं। जातियों के बना लेने से प्रतीत होता है कि वे वस्तुओं के विषय में मोटे-मोटे भाव धारण करते हैं यानी वे जान लेते हैं कि इस जाति की सम्पूर्ण वस्तुओं में ये सामान्य गुण होते हैं। किसी जाति के व्यक्तियों अथवा वस्तुओं के सामान्य गुणों के ज्ञान को जातिवाचक भाव कहते हैं। पहले अध्याय में लिखा गया था कि छोटे जीवधारियों में जातिवाचक और व्यक्तिवाचक भाव होते हैं। अब मुझे आशा है कि पाठकगण जातिवाचक और व्यक्तिवाचक भावों का भेद जान गये होंगे।

जातिवाचक और व्यक्तिवाचक भाव छोटे-छोटे बच्चों में भी होते हैं। यथाः—छोटा बच्चा अपने माँ-बाप को पहचान

लेता है। वह अपनी गाय और भैंस को भी पहचान लेता है। वह अपने पिता के मेज़ को, बिछौने को और जूते को भी पहचान लेता है। बच्चे का यह ज्ञान विशेष वस्तुओं या व्यक्तियों से सम्बन्ध रखता है। अतः इस व्यक्तिगत ज्ञान में व्यक्तिवाचक भाव है। अर्थात् बच्चे को व्यक्ति-वाचक भाव होते हैं। बहुत से जानवर यदि एक साथ खड़े हों, तो बच्चा बतला देता है कि वह गाय है; वह घोड़ा है; वह बकरी है, इत्यादि। बच्चा मेज़, कुर्सी, घर, डोरी, कुआँ, मनुष्य, भेड़, कुत्ता, बिल्ली, नारियल, अमरूद, पानी, पत्थर, ईंट इत्यादि-इत्यादि अनेक वस्तुओं को पहचान लेता है। अर्थात् वह भिन्न-भिन्न वस्तुओं की जातियाँ बना लेता है। जातियों के बनाने से ज्ञात होता है कि उसमें व्यक्तिवाचक भावों के अतिरिक्त जातिवाचक भाव भी होते हैं। जातिवाचक और व्यक्तिवाचक भावों के होते हुए भी यदि किसी छोटे बच्चे से पूछा जाय कि घोड़ा किसे कहते हैं? या मनुष्य किसे कहते हैं? या आम किसे कहते हैं? तो वह नहीं बतला पाता। इसका क्या कारण है?

सूक्ष्म भावः—जातिवाचक और व्यक्तिवाचक भावों से स्पष्ट है कि छोटा बच्चा अपने प्रतिवेश को अलग वस्तुओं में तो बाँट लेता है (क्योंकि यदि वह ऐसा न कर सकता, तो उसे यह कैसे ज्ञात होता कि यह वस्तु घोड़ा है; यह वस्तु

गाड़ी है; यह वस्तु बन्दर है; यह मनुष्य है; यह मेरे माता-पिता हैं इत्यादि ।) किन्तु अभी वह उन भिन्न-भिन्न वस्तुओं की (जिनमें उसने अपने प्रतिवेश को बाँटा है)

बुद्ध्यात्मक व्याख्या (Conscious analysis)

बुद्ध्यात्मिक व्याख्या नहीं कर सकता अर्थात् वह उन भिन्न-भिन्न वस्तुओं के अवयवों और उन अवयवों के गुणों को नहीं जानता । यह बात निम्न-लिखित उदाहरण से समझ में आ जायगीः—एक छोटा बच्चा घोड़े, मनुष्य, नारंगी इत्यादि को तो पहचान लेता है । इनको वह तभी पहचान सकता है, जब कि उसमें अपने प्रतिवेश को भिन्न-भिन्न वस्तुओं में बाँटने की शक्ति हो । वह किसी विशेष मनुष्य, घोड़े या नारंगी को भी पहचान लेता है और बहुत से जानवरों के बीच यदि घोड़ा खड़ा हो, तो उसे भी पहचान लेता है । एवम् यदि बहुत से जानवरों के बीच मनुष्य खड़ा हो, तो वह उसे भी पहचान लेता है ।इसी प्रकार यदि बहुत से फलों के साथ नारंगी रक्खी हो, तो वह उसे भी पहचान लेता है । नारंगी पहचानने का कार्य वह तभी कर सकता है जब वह उन वस्तुओं को पहचाने, जिनके साथ नारंगी रक्खी है और साथ ही साथ नारंगी को भी पहचाने यानी जब कि उसमें यह शक्ति हो कि वह अपने प्रतिवेश की उन वस्तुओं को (जिनमें कि उसने उसका—प्रतिवेश को—विभाजित किया है) जाति या वर्ग में रख सके ।

अतः यदि छोटे बच्चे से पूछा जाय कि यह क्या वस्तु है? वह क्या वस्तु है? वे क्या वस्तुएँ हैं? तो वह शीघ्र बतला देता है कि वह घोड़ा है; वह बिल्ली है; वह कुत्ता है; मनुष्य हैं। वह यह भी बतला देता है कि वह मेरा पिता है; वह मेरी माँ है; वे मेरे भाई हैं; इत्यादि-इत्यादि। किन्तु यदि किसी बच्चे से पूछा जाय कि घोड़े और घोड़ी में क्या अन्तर है, तो वह नहीं बतला पाता। इसी प्रकार छोटा बच्चा मनुष्य जाति के भिन्न-भिन्न मनुष्यों का अन्तर नहीं जानता। वह यह नहीं जानता कि हब्शी और चीनी और भारती में क्या भेद है। एवम् वह यह नहीं जानता कि काश्मीर की नारंगी क्या वस्तु है। सिलहट की नारंगी में और अन्य नारंगियों में क्या भेद है। वह तो सब नारंगियों को एक सा समझता है। तात्पर्य यह है कि वह एक ही जाति या वर्ग की भिन्न-भिन्न वस्तुओं के अवयवों और गुणों को नहीं देखता। कोई भी नारंगी बच्चे को दिखा दी जाय, तो वह यह तो अवश्य जान लेता है कि उसे नारंगी दिखाई जा रही है; किन्तु वह नारंगी नारंगी के बीच का अन्तर नहीं जानता। इससे स्पष्ट है कि छोटा बच्चा अपने प्रतिवेश की वस्तुओं को पहचान लेता है और उनकी जातियाँ भी बना लेता है; परन्तु वह उन सबको समस्त रूप में ही देखा करता है। अर्थात् उनके गुणों, स्वत्वों और अवयवों को नहीं देखता है और उनकी बुद्ध्यात्मिक

व्याख्या नहीं करता । वस्तुओं की बुद्ध्यात्मक व्याख्या न करने के कारण छोटे बच्चे बैल को गाय ही कहा करते हैं; बकरे को बकरी ही कहते हैं; कुतिया को कुत्ता ही कहते हैं। यदि बच्चा बैल और गाय के पारस्परिक सम्बन्ध तथा उनके विभिन्न अवयवों को देखता और उन भिन्न-भिन्न अवयवों के गुण और धर्मों को जानता होता, तो वह कभी बैल को गाय न कहता । इससे विदित है कि यद्यपि छोटा बच्चा यह तो जान लेता है कि यह गाय है; किन्तु वह गायों के भेद, उनके अवयवों और गुणों को नहीं देखता । बहुत से बालक यह तो जान लेते हैं कि यह वस्तु पेड़ है; किन्तु वे यह नहीं जानते कि यह पेड़ किस चीज़ का है, इस पेड़ में अन्य पेड़ों से क्या विशेषताएँ हैं । यथा बच्चे आम के पेड़ के विषय में इतना तो अवश्य जानते हैं कि वह एक वृक्ष है; किन्तु वे यह नहीं बतला सकते कि वह किस प्रकार का पेड़ है । यदि वे यह बात जानना चाहें, तो अवश्य आम के पेड़ और अन्य पेड़ों के फूल, पत्ते, फल, छाल, शाखें, ऊँचाई, मोटाई, लाभ, हानि इत्यादि का ज्ञान होना चाहिए । उनको इन बातों का ज्ञान तभी हो सकता है, जब वे वृक्ष जाति के भिन्न-भिन्न वृक्षों का पारस्परिक सम्बन्ध जाने और भिन्न-भिन्न वृक्षों के अवयवों और उन अवयवों के गुणों और धर्मों को जाने अर्थात् उनकी बुद्ध्यात्मक व्याख्या कर सकें । एवं बच्चे यह तो जान लेते हैं कि वह

वस्तु मोटर है, किन्तु वे यह नहीं जानते कि मोटर और लौरी में क्या अन्तर है। वे यह भी नहीं जानते कि सड़कों पर पानी सींचनेवाली मोटर और अन्य मोटरों में क्या भेद है। ऐसे ही बच्चे रेल को तो जान लेते हैं, किन्तु वे यह नहीं जानते कि डाक गाड़ी क्या वस्तु है, माल गाड़ी में और मुसाफ़िर गाड़ी में क्या अन्तर है, हावड़ा-एक्सप्रेस, पंजाब-मेल, इत्यादि बातें बतलाना तो उनको और भी कठिन है। उनके लिए तो सब रेलें एक सी हैं। रेल रेलों का अन्तर, मोटर मोटरों का भेद बच्चे तभी जान सकते हैं, जब वे उनको भली भाँति देखने के अतिरिक्त उनकी बुद्ध्यात्मक व्याख्या करें अर्थात् भिन्न-भिन्न गाड़ियों के अवयवों; उन अवयवों की विशेषताओं, गुणों, लक्षणों और भिन्न-भिन्न गाड़ियों के पारस्परिक सम्बन्धों को देखें। एक या कई जाति की भिन्न-भिन्न व्यक्तियों या वस्तुओं को पूर्णरूप से देखने के अतिरिक्त जब हम उन व्यक्तियों और वस्तुओं के अवयवों, गुणों, विशेषताओं, स्वत्वों और पारस्परिक सम्बन्धों को देखते हैं, तो हमें जातिवाचक और व्यक्तिवाचक भावों के होने के अतिरिक्त जो ज्ञान होता है, उसे सूक्ष्म भाव कहते हैं। यह बार-बार कह देना पड़ता है कि सूक्ष्मभाव बच्चों को तभी होते हैं जब वे अपने प्रतिवेश की भिन्न-भिन्न वस्तुओं की बुद्ध्यात्मक व्याख्या करने लगते हैं और केवल उन्हें समस्त रूप में ही नहीं देखते।

सूक्ष्म भावों की महत्ताः—ऊपर दिये हुए उदाहरणों से विदित होता है कि जब तक बच्चे समस्त वस्तुओं या व्यक्तियों या पदार्थों का देखते हैं, तो उन्हें केवल जाति वाचक और व्यक्तिवाचक भाव ही होते हैं। पीछे बतला चुके हैं कि जातिवाचक और व्यक्तिवाचक भाव छोटे जीव-धारियों में भी होते हैं; क्योंकि वे भी जान लेते हैं कि अमुक वस्तु बिल्ली है, या कुत्ता है, या घोड़ा है, इत्यादि। अतः शिक्षक का धर्म है कि वह बच्चों में सूक्ष्म भाव उत्पन्न करे, जिससे उनके मन का उचित विकास हो, वे बुद्धि से काम लेने लगें और उनमें मनुष्यों के लक्षण और गुण आ जायँ।

अब प्रश्न उठता है कि सूक्ष्म भाव बच्चों में किस प्रकार उत्पन्न किये जायँ? या यों कहिए कि वे कौन सी युक्तियाँ हैं, जिनके द्वारा वे अपने प्रतिवेश की वस्तुओं की बुद्ध्यात्मक व्याख्या कर सकें और उन्हें केवल समस्त रूप में न देखा करें।

सूक्ष्म भाव बच्चे में किस प्रकार उत्पन्न किये जायँ?

इन प्रश्नों के उत्तर देने के पहले मैं कुछ उदाहरण, जो नीचे दिये गये हैं, आपके सामने रखता हूँ। उनको ध्यान-पूर्वक पढ़ने से उन प्रश्नों का उत्तर पाठक को सम्भवतः स्वयं मालूम हो जायगा :—

(१) अध्यापक और विद्यार्थीगण प्रतिदिन पाठशाला के बरामदे के खम्भों को छूते और देखते हैं; किन्तु उनमें से

बहुत से व्यक्ति यह नहीं बतला सकते कि पाठशाला के बरामदे में कितने खम्भे हैं। वे क्यों नहीं बतला सकते ?

(२) अपने घर की सीढ़ियों के ऊपर हम प्रतिदिन केवल एक बार ही नहीं किन्तु अनेक बार चढ़ते हैं, तथापि यदि कोई हमसे पूछ बैठे कि तुम्हारे घर में जाने के लिए कितनी सीढ़ियाँ हैं, तो बहुत से व्यक्ति इस बात को नहीं बतला सकते। वे क्यों नहीं बतला सकते ?

(३) बहुत से व्यक्ति ऐसे भी निकलेंगे, जिनसे यदि पूछा जाय कि चलते समय तुम्हारा कौन पाँव आगे पड़ता है, दाहिना या बायाँ, तो वे इसका ठीक उत्तर देने में असमर्थ होते हैं। क्यों ?

(४) बहुत से अध्यापक और विद्यार्थी इस बात को ठीक प्रकार से नहीं बतला पाते कि अमुक पुस्तक में कितने पृष्ठ हैं। पुस्तक को वे छूते हैं, देखते हैं, पढ़ते हैं, फिर भी इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकते। यह क्यों ?

(५) बहुत से व्यक्ति ऐसे भी हैं, जो अपने बैठक के कमरे की ठीक-ठीक लम्बाई-चौड़ाई नहीं बतला सकते। वे क्यों नहीं बतला सकते ?

(६) शीशम, इमली और गुलाब की पत्तियों को हम कई बार देख चुके हैं। बतलाइए तो सही उनमें कितनी छोटी-छोटी पत्तियाँ होती हैं ? किंचित् देर सोचिए और बतलाइए कि आप इस प्रश्न का शुद्ध उत्तर क्यों नहीं दे सकते ?

पहले प्रश्न के उत्तर में आप कहेंगे कि अध्यापक और विद्यार्थीगण यद्यपि पाठशाला के बरामदे के खम्भों को प्रतिदिन अवश्य छूते और देखते हैं, किन्तु वे उन्हें साधारण दृष्टि से देखते हैं और वे समस्त रूप में ही बरामदे को देखते हैं। उसके अवयवों और उन अवयवों के पारस्परिक सम्बन्ध को नहीं देखते।

दूसरे प्रश्न का भी वे कदाचित् ऐसा ही उत्तर देंगे। मेरी समझ में ३ रे, ४ थे, ५ वें और ६ ठे प्रश्न के उत्तर में भी वे यही कहेंगे कि उन्होंने उन वस्तुओं को सम्यक् रीति से नहीं देखा है और उनको समस्त रूप में ही देखा है। उन्होंने उनके अवयवों, गुणों और पारस्परिक सम्बन्धों तथा भेदों पर विचार नहीं किया है।

अवलोकन करने के निमित्त किसी लक्ष्य का होना आवश्यक है।
(Some aim or motive necessary for Observation)

अब यदि मैं पाठशाला के छात्रों और अध्यापकों से कहूँ कि अपनी पाठशाला के बरामदे का चित्र बनाओ, तो चित्र खींचने से पहले वे अवश्य बरामदे के खम्भों को गिनेंगे। उनकी उँचाई और मोटाई नापकर मालूम करेंगे। बरामदे का ठीक चित्र वे तभी खींच सकते हैं, जब वे बरामदे को समस्त रूप में देखने के साथ-साथ उसके भिन्न-भिन्न अवयवों और उन अवयवों के गुणों और पारस्परिक सम्बन्धों को

सम्यक् प्रकार से देखें अर्थात् बरामदे की बुद्ध्यात्मक व्याख्या करें। बरामदे की बुद्ध्यात्मक व्याख्या करने का लक्ष्य या उद्देश्य क्या है ? उसका उद्देश्य या लक्ष्य यह है कि बरामदे का चित्र ठीक बनाया जाय।

मान लो कि घर की सीढ़ी पर चढ़ते हुए हमारा पाँव किसी तरह फिसल गया और हम भूमि पर गिर पड़े, तब हम यह जानने की चेष्टा करते हैं कि हम किस सीढ़ी पर से फिसले। जब हम इस बात को ध्यान में रखकर सीढ़ी को देखेंगे, तो हम अवश्य उसके अवयवों को सम्यक् दृष्टि से देखेंगे। तात्पर्य यह है कि जब तक हमारे मन में सीढ़ी के प्रति कोई लक्ष्य या उद्देश्य या प्रयोजन उत्पन्न न हो, तब तक हम सीढ़ी को समस्त रूप में ही देखते हैं।

चौथे प्रश्न का उत्तर शिक्षक अति सुगमता से दे देगा। यदि उसको अपनी डायरी में सिलेबस (Syllabus) बनाना है, तो पहले वह पुस्तक के सम्पूर्ण पृष्ठों की संख्या को मालूम करेगा, तत्पश्चात् यह निश्चित करेगा कि कितने पृष्ठ तिमाही परीक्षा के निमित्त और कितने छः माही और वार्षिक परीक्षाओं के लिए नियत होने चाहिएँ। शिक्षक ने पुस्तक के पृष्ठों की संख्या क्यों जाननी चाही ? इसका उत्तर यही है कि वह डायरी बनाना चाहता था अर्थात् डायरी बनाना उसका उद्देश्य था। इसी उद्देश्य

के कारण उसने पुस्तक को समस्त रूप में ही नहीं देखा; किन्तु उसके अवयवों तथा अवयवों के पारस्परिक सम्बन्धों को सम्यक् रीति से देखा है। इससे स्पष्ट है कि किसी पदार्थ या वस्तु की बुद्ध्यात्मक व्याख्या बच्चे या बड़े मनुष्य भी तभी करते हैं, जब कोई प्रयोजन उद्देश्य या लक्ष्य उपस्थित होता है।

जो लोग अपने बैठक के कमरे की लम्बाई-चौड़ाई नहीं जानते, उनको यदि उस कमरे के लिए दरी लेनी हो, तो वे अवश्य कमरे की लम्बाई नापेंगे। वे जानते हैं कि अगर कमरे की लम्बाई-चौड़ाई नहीं नापेंगे, तो वे छोटी दरी मोल ले आवेंगे या बड़ी। कमरे की लम्बाई-चौड़ाई का नाप किस उद्देश्य से वे करते हैं? इसका उत्तर यही है कि दरी लेने के उद्देश्य से।

शीशम, इमली और गुलाब के पत्तों को हम कई बार देख चुके हैं, फिर भी हम यह नहीं जानते कि वे पत्ते कितनी छोटी-छोटी पत्तियों के मिलने से बने हैं। यदि कोई हमसे कहे कि गुलाब और इमली के पत्तों का चित्र खींचिए। अब हम तुरन्त गुलाब और इमली के पत्तों को सम्यक् प्रकार से देखेंगे और उनकी परस्पर तुलना करके ज्ञात करेंगे कि उनमें क्या-क्या सादृश्य है और क्या क्या विभिन्नता। हम उन पत्तों की नसों को, उनके किनारों को, उनकी नोक को, उनकी मोटाई, लम्बाई और चौड़ाई

इत्यादि को ध्यान-पूर्वक देखेंगे और तब उनके चित्र बनाएँगे। इमली और गुलाब के पत्तों की हमने बुद्ध्यात्मक व्याख्या इस उद्देश्य से की है कि हमें उनके चित्र खींचने हैं।

पाठकों को विदित हुआ होगा कि छोटे बच्चे वस्तु को समस्त रूप में ही देखा करते हैं, किन्तु बहुधा बड़े-बड़े मनुष्य भी वस्तु को समस्त रूप में ही देखा करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि अनेक वस्तुओं को देखते हुए भी वे उन्हें नहीं देखते; अनेक बातों को जानते हुए भी वे उन्हें नहीं जानते और अनेक वस्तुओं को छूते हुए भी वे नहीं बतला पाते कि वे उन्हें छूते हैं।

अवलोकन किसे कहते हैं?

पाठकों को यह भी विदित हो गया होगा कि हमें वस्तुओं, पदार्थों या व्यक्तियों का अच्छा और स्पष्ट ज्ञान तभी होता है, जब हम उन वस्तुओं, पदार्थों या व्यक्तियों को समस्त रूप में देखने के अतिरिक्त उन वस्तुओं, पदार्थों और व्यक्तियों की किसी प्रयोजन से बुद्ध्यात्मक व्याख्या कर उनके अवयवों, उन अवयवों के स्वत्वों, गुणों, धर्मों, विशेषताओं और पारस्परिक सम्बन्धों को भी देखें अर्थात् उन (वस्तुओं, पदार्थों और व्यक्तियों) का निरीक्षण या अवलोकन करें। मुझे आशा है कि पाठक-गण अब यह समझ गये होंगे कि अवलोकन किसे कहते हैं।

अवलोकन-शक्ति बच्चों में किस प्रकार जाग्रत् की जाय ?

कल्पना करो कि हम बच्चों को इस बात का निरीक्षण कराना चाहते हैं कि पौदे या पेड़ जड़ से खाना खींचते हैं।

इस बात को समझने के लिए एक या दो प्रयोग पर्याप्त न होंगे, किन्तु अनेक प्रयोगों से यह बात बच्चों की समझ में आयेगी; यथाः—

(१) कुछ पौदों की जड़ काटकर उन्हें फिर से गमले या भूमि में रोपकर खड़ा कर दो।

(२) गुलमेंहदी, सरसों, मटर, चना, यव, मक्का, कनेर, शीशम इत्यादि के पौदों को इस प्रकार उखाड़ो कि उनकी जड़ों को किसी प्रकार की हानि न पहुँचे। तत्पश्चात् उनको काँच की शीशियों में अनेक रंग के पानी में रख दो।

(३) किसी पौदे को ख़ूब खाद देना।

(४) किसी पौदे को कम खाद देना।

(५) किसी पौदे के धड़ को काट देना और देखना कि धड़ से पानी निकलता है।

(६) किसी गमले को जिसमें ख़ूब घने पौदे उगे हों एक काँच के घड़े से ढाँक देना और देखना कि काँच के घड़े की भीतरी धरातल पर पानी की बूँदें कहाँ से आईं। इत्यादि-इत्यादि प्रयोग।

(क) इन प्रयोगों का बच्चे सम्यक् प्रकार से अवलोकन नहीं करेंगे, जब तक उनके मन में कोई उद्देश्य, प्रयोजन या लक्ष्य उत्पन्न न किया जाय।

(ख) उन्हें एक प्रयोग की दूसरे प्रयोग से तुलना करनी चाहिए और भेद और सादृश्य (Similarity) की बातों को खोजना चाहिए।

(ग) भेद और सादृश्यों की खोज करने के पश्चात् उन्हें सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

मैंने देखा है कि बहुत से अध्यापक एक प्रयोग करने के पश्चात् ही यह अनुमान कर बैठते हैं कि बच्चों की समझ में बात आ गई है। यदि उन्हें समझाना होता है कि ठोस पदार्थ गर्मी पाने से विस्तृत होता है, तो वे केवल यह प्रयोग कर देते हैं कि लोहे की छड़ी को गरम कर देते हैं और उस छड़ी को गरम करने के पश्चात् नाप लेते हैं और उस नाप की तुलना उस नाप से करते हैं, जो छड़ी के गरम करने के पूर्व की गई थी। यदि वे इस को ध्यान में रक्खें कि निरीक्षण तभी अच्छा होता है जब बच्चे एक जाति या भिन्न जाति के अनेक पदार्थों को देखें और उनकी बुद्ध्यात्मक व्याख्या करें अर्थात् उनके अवयवों को देखें, उनके गुणों और विशेषताओं की खोज करें और उनकी तुलना करने के पश्चात् उनके पारस्परिक सम्बन्ध या लगावों को ज्ञात करें, तो मुझे आशा है कि

वे एक प्रयोग करने से संतुष्ट नहीं होंगे। वे तो अनेक ठोस पदार्थों को (चाहे वे एक जाति के हों या विभिन्न जाति के) गर्मी पहुँचाएँगे और उनके भेदों, सादृश्यों तथा गुणों का अवलोकन कराएँगे और तब बच्चों के मन में इस सिद्धान्त को बिठाएँगे कि ठोस पदार्थ गर्मी पाने से फैलते हैं।

बहुत से अध्यापक आज्ञा देने और प्रयोजन का उद्देश्य जाग्रत् करने में भेद नहीं समझते। अतः वे बच्चों को आज्ञा दिया करते हैं कि यह देखो और वह देखो; यथाः—

प्रयोजनजनक प्रश्न। (Directive Questions)

(१) जब वे चाहते हैं कि बच्चे बिल्ली की टाँगों का निरीक्षण करें, तो वे सीधे यह आज्ञा दे देते हैं कि बिल्ली की टाँगों की ओर ध्यान दो और देखो कि बिल्ली की कितनी टाँगें हैं। ऐसी आज्ञा देने के स्थान में यदि वे बच्चों से पूछें कि बिल्ली किस चीज़ से चलती है, तो बच्चे स्वयं उसकी टाँगों के प्रति ध्यान लगाएँगे और उनको देखेंगे। ऐसे प्रश्न स्वतः उनके मन में टाँगों के देखने के प्रेरक बनेंगे। ऐसे प्रश्नों को यदि प्रयोजनजनक प्रश्न कहें, तो ठीक होगा। तात्पर्य यह है कि आज्ञा देने के स्थान में बच्चों से प्रयोजनजनक प्रश्न पूछने चाहिएँ। पीछे बतला दिया गया है कि बच्चे या बूढ़े किसी वस्तु का निरीक्षण तभी करते हैं, जब उनके मन में कोई प्रयोजन उत्पन्न

किया जाय, अन्यथा वे वस्तु को साधारण दृष्टि से समस्त रूप में ही देखा करते हैं और उसकी बुद्ध्यात्मक व्याख्या नहीं करते ।

प्रयोजनजनक प्रश्नों के और उदाहरण:—

(२) यदि अध्यापक गेहूँ और चने के पौदों की जड़ों का अन्तर बच्चों को बतलाना चाहता है, तो वह बहुधा यह कह दिया करता है कि बच्चो, गेहूँ और चने की जड़ों की ओर ध्यान दो और उन्हें देखो । देखो गेहूँ के पौदे में से कितनी जड़ें निकलती हैं और चने के पौदे में से कितनी । ऐसी आज्ञाओं के देने के स्थान में यदि अध्यापक उनसे यह प्रश्न पूछे कि गेहूँ और चने के पौदे अपना खाना भूमि में से कैसे खींचते हैं ? इस प्रश्न के पूछने ही से वे स्वयं गेहूँ और चने की जड़ का अवश्य अवलोकन करेंगे । तत्पश्चात् यदि अध्यापक यह प्रश्न पूछे कि गेहूँ और चने की जड़ों में क्या अन्तर है ? इस प्रश्न के पूछने से वे स्वयं गेहूँ और चने की जड़ों की तुलना करेंगे और ज्ञात करेंगे कि उनकी बनावट में क्या भेद और सादृश्य है ।

(३) मच्छड़ का कीड़ा दुम से साँस लेता है । इस बात को जानने के लिये वे (शिक्षक) बच्चों से बहुधा यह कहते हैं कि मच्छड़ के कीड़े की दुम की ओर ध्यान दो और उसके सिरे पर छेद देखो । तत्पश्चात् वे बच्चों

से कह देते हैं कि मच्छड़ का कीड़ा इन्हीं छिद्रों द्वारा साँस लेता है। यदि वे बच्चों से पूछें कि मच्छड़ का कीड़ा थोड़ी-थोड़ी देर पश्चात् पानी की सतह पर क्यों आता है? पानी की सतह पर आकर वह किस दशा में रहता है? (उसका मुँह नीचे पानी में रहता है, किन्तु दुम का कुछ भाग पानी की सतह से किंचित् ऊपर उठा रहता है।) यदि मच्छड़ का कीड़ा मुँह से साँस लेता है तो वह अपना मुँह पानी की सतह से कहाँ रखता है? (बाहर) किन्तु वह किस अंग को पानी की सतह से बाहर निकाले हुए है? (दुम) इससे तुम मच्छड़ के विषय में क्या कह सकते हो? अब मुझे आशा है कि बच्चे शीघ्र ही यह कह देंगे कि मच्छड़ का कीड़ा दुम से साँस लेता है, मुँह से नहीं।

प्रयोजनजनक प्रश्नों के और भी अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं, किन्तु अब अधिक उदाहरणों के देने की आवश्यकता नहीं मालूम पड़ती क्योंकि मुझे आशा है कि पाठकगण अब इस बात को अच्छी प्रकार समझ गये होंगे कि प्रयोजनजनक प्रश्न किसे कहते हैं? उसमें और आज्ञा देने में क्या अन्तर है?

इस पुस्तक में जो कुछ अब तक लिखा गया है, उससे पाठकों को ज्ञात हुआ होगा कि प्रत्यक्षों के होने से बच्चा अपने प्रतिवेश की भिन्न-भिन्न वस्तुओं, पदार्थों और

उनको निबन्ध-शिक्षा प्रदान करने में, ऐसे पाठ, अवश्य देने चाहिएँ, जिनसे उनकी अवलोकन-शक्ति उचित रूप से विकसित हो और उनमें सूक्ष्म भाव उत्पन्न हों, ताकि वृद्धावस्था में वे उन बुड्ढों की नाईं न रह जायँ, जो अपने बैठक के कमरे की लम्बाई-चौड़ाई से भी अनभिज्ञ होते हैं।

युवक और बच्चा एक ही वस्तु के प्रति विभिन्न व्यवहार क्यों प्रकट करते हैं ? (Why do adults and children behave differently towards one and the same thing ?)

किंचित् समय के लिए मैं पाठकों का ध्यान प्रश्न नं० ३, ४, ५, ६ के प्रति आकर्षित करता हूँ, जो इस पुस्तक के प्रथम अध्याय में पृष्ठ नं० १ और २ पर दिये गये हैं। छोटे बच्चे और वृद्ध पुरुष घड़ी, एंजिन और निर्धन की झोंपड़ी के प्रति भिन्न-भिन्न व्यवहार इस कारण प्रकट करते हैं कि छोटे बच्चे यह बात नहीं समझते कि घड़ी से क्या लाभ होता है। यदि वे घड़ी के सम्बन्धों का ज्ञान रखते होते, तो वे कदापि उसको तोड़ने-फोड़ने की इच्छा प्रकट न करते। बड़े मनुष्य इस बात को अच्छी तरह समझते हैं कि घड़ी के पुरज़े अत्यन्त कोमल होते हैं और यदि घड़ी पर ज़रा सी भी चोट लग जाय, तो उसके पुरज़ों के टूटने या ख़राब होने का डर होता है। वे जानते हैं कि घड़ी के पुरज़ों के टूटने और ख़राब होने से घड़ी बिगड़ जाती है और अपना कार्य ठीक प्रकार नहीं

करती। बड़े मनुष्य भली भाँति समझते हैं कि घड़ी एक बड़े मूल्य की वस्तु है और समय देखने का सर्वोत्तम साधन है। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि छोटे बच्चों में घड़ी के सूक्ष्म भाव नहीं होते, किन्तु बड़े मनुष्यों में होते हैं। अतः छोटे बच्चे और बड़े मनुष्य घड़ी के प्रति भिन्न व्यवहार प्रकट करते हैं।

एंजिन का बड़े मनुष्यों को सूक्ष्म ज्ञान होता है, वे जानते हैं कि एंजिन उन्हें काटने को नहीं आ रहा है; किन्तु वह उस गाड़ी को खींच लाया है, जिसमें बैठकर वे यात्रा करेंगे और जिसकी प्रतीक्षा वे बहुत समय से कर रहे थे। बच्चों को एंजिन का सूक्ष्म ज्ञान नहीं होता। वे समझते हैं कि एंजिन बड़ा भारी होता है। वह अपने पेट में बहुत सी आग भरे रहता है और कदाचित् वह उन्हें अपने मुँह के अन्दर उठाकर या पकड़कर न डाल ले। उनके मन में एंजिन के प्रति इस प्रकार के अनेक भयजनक भाव होते हैं। अतः छोटे बच्चे एंजिन से डरते हैं और बड़े मनुष्य एंजिन को स्टेशन पर आते देखकर प्रसन्न होते हैं और समझते हैं कि थोड़ी ही देर में वे गाड़ी पर सवार हो जायँगे और इच्छित स्थान को पहुँच जायँगे।

निर्धन की झोंपड़ी का जलना बड़े मनुष्यों को इस कारण बुरा लगता है कि वे समझते हैं कि झोंपड़ी के जल जाने से निर्धन की बड़ी हानि होगी। उस (झोंपड़ी)

को बनाने में निर्धन को फिर से धन खर्च करना पड़ेगा। जब तक झोंपड़ी फिर से बनकर रहने के योग्य न होगी तब तक निर्धन के बाल-बच्चों को बड़ी आपत्ति उठानी पड़ेगी। उन्हें धूप में और वर्षा में बाहर रहना पड़ेगा इत्यादि-इत्यादि। किन्तु छोटे बच्चे तो यही समझते हैं कि झोंपड़ी का जलना वैसा ही है जैसा कि किसी घास के ढेर का जलना। वे झोंपड़ी के लाभ और सम्बन्ध को नहीं जानते। अर्थात् बड़े मनुष्यों में झोंपड़ी का सूक्ष्म ज्ञान (भाव) होता है और छोटे बच्चों में उसका केवल साधारण ज्ञान ही। अतः झोंपड़ी को जलते देखकर बच्चे प्रसन्न होते हैं, किन्तु बड़े मनुष्य दुःख प्रकट करते हैं।

बालकों की निरीक्षण-शक्ति के विकास के निमित्त पाठ-सूची।

नीचे उन पाठों की सूची दी जाती है, जिनको अध्यापक निबन्ध-शिक्षा प्रदान करने में निडर हो पढ़ा सकते हैं और जिनको पढ़ाने से बच्चों में सूक्ष्म भाव उत्पन्न होते हैं और उनकी अवलोकनशक्ति (Power of Observation) का विकास होता है।

नोटः—अभी अधिकांश पाठ मौखिक ही होने चाहिए। पढ़ाई-लिखाई का काम तब होना चाहिए जब कि बच्चों के मन में सूक्ष्म भाव कूट-कूट कर भर दिये जायँ। सूक्ष्म भावों के होने से वे वाक्यों, पदों और अक्षरों की बुद्ध्यात्मक व्याख्या कर लेंगे और उनको पढ़-लिख भी सकेंगे।

बच्चों की निरीक्षण-शक्ति के विकास में सहायक होनेवाले निबन्ध-पाठों की सूची:—

(१) पौदे या पेड़ के भाग।

(२) जड़ें और उनकी विभिन्न जातियाँ।

(३) तने, उनकी जातियाँ और काम।

(४) बीज, उनके प्रकार।

(५) पत्ते, उनके प्रकार और काम।

(६) फल, उनके प्रकार और काम।

(७) छोटे जीवों के ऊपर पाठ यथा चींटी, टिड्डी, मछली, मकड़ी, छिपकली, मच्छड़, केंचुआ, मेढक इत्यादि-इत्यादि।

(८) घड़ी, घड़ी के प्रकार, घड़ी के अवयव, घड़ी के काम।

(९) पेंसिल, उसके प्रकार और काम।

(१०) बाईसिकिल, उसके प्रकार और काम।

(११) पानी, भिन्न-भिन्न प्रकार का पानी, पानी की गन्दगियाँ, पानी को शुद्ध करने के ढंग।

(१२) लोहा, उसके प्रकार, उसके लाभ।

(१३) तौल, भिन्न-भिन्न प्रकार के तौल और उनके लाभ।

(१४) चमड़ा, उसके प्रकार, उसके प्रयोग, उसके लाभ।

(१५) दियासलाई, भिन्न-भिन्न प्रकार की दियासलाई, दियासलाई के काम।

(१६) पत्थर, भिन्न-भिन्न प्रकार के पत्थर, पत्थर से लाभ।

(१७) नगर की प्रसिद्ध इमारतों का निरीक्षण।

(१८) सिंचाई, सिंचाई भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है, सिंचाई के लाभ।

(१९) हल, भिन्न-भिन्न प्रकार के हल, उनके लाभ।

(२०) खाद, भिन्न-भिन्न प्रकार की खाद और उनको बनाने के ढंग, अधिक खाद देने से हानियाँ।

(२१) रस्सी, भिन्न-भिन्न प्रकार की रस्सियाँ और उनके बनाने के ढंग।

(२२) कुम्हार, उसका चाक और बर्तन बनाने के तरीक़े या रीतियाँ।

(२३) साबुन, भिन्न-भिन्न प्रकार के साबुन और साबुन बनाने की रीतियाँ।

(२४) दिशा, चार प्रकार की दिशाएँ और उनके जानने के ढंग।

(२५) खेती को हानि पहुँचानेवाले कीड़े और उनको नष्ट करने की रीतियाँ।

(२६) लिफ़ाफ़े, भिन्न-भिन्न प्रकार के लिफ़ाफ़े और उनके प्रयोग।

(२७) रुपये या पार्सल के भेजने की भिन्न-भिन्न रीतियाँ।

(२८) कोल्हू, भिन्न-भिन्न प्रकार के कोल्हू और उनके प्रयोग।

(२९) आटे की चक्की, उसके अवयव, आटे की चक्की कैसे चलती है ?

(३०) गाँठ, उसके प्रकार, उसके लगाने के ढंग, भिन्न गाँठों के लाभ।

(३१) आरी, भिन्न-भिन्न प्रकार की आरियाँ, उनके चलाने के ढंग।

(३२) कील, भिन्न-भिन्न आकार की कीलें, उनके उपयोग।

(३३) रंग, उसके प्रकार, एक रंग को दूसरे रंग में मिलाने से कौन सा रंग बन जाता है ?

(३४) ब्रुश, भिन्न-भिन्न प्रकार के ब्रुश और उनके उपयोग।

(३५) बीजों के बोने के ढंग, दुर्बल और पुष्ट बीजों के बोने के लाभ और हानियाँ। इत्यादि-इत्यादि अनेक पाठ अवलोकन-शक्ति के विकास के लिए बच्चों को दिये जा सकते हैं। इन पाठों में यदि कोई कार्य बच्चों को हाथ से भी करने पड़ें, तो कुछ चिंता नहीं। मुस्लियों का प्रयोग करने से बच्चों को और भी उत्तम ज्ञान होगा।

नोटः—एक या दो पाठों के पढ़ाने की रीति नमूने के ढंग से नीचे दी गई है :—

पाठ पहला।

लाही के कीड़े (Aphis)

नोट:—यह पाठ बच्चों को उस ऋतु में देना चाहिए जब सरसों के पौदे खेत में उग रहे हों। इस पाठ को पढ़ाने के लिए बच्चों को खेत में ले जाना चाहिए, क्योंकि वहाँ पर इस पाठ के पढ़ाने की उचित सामग्री भी मिलेगी और लाही के कीड़े का निरीक्षण, उसके रहने के प्राकृतिक स्थान पर ही होगा।

प्रश्नः—(१) बच्चो, ये किस चीज़ के पौदे हैं? (सरसों के) (२) सरसों के पौदों का दूसरा नाम क्या है? (उन्हें लाही के पौदे भी कहते हैं।) (३) ये लाही या सरसों के पौदे रोगी से क्यों दिखाई पड़ते हैं? (इस प्रश्न के पूछने से बच्चों का ध्यान स्वयं सरसों के पौदों की ओर आकर्षित होगा।) (वे कहेंगे कि उनके ऊपर अनेक छोटे-छोटे कीड़े चिपके हुए हैं।) (४) इन कीड़ों का क्या नाम है? (इनको लाही के कीड़े कहते हैं।) (५) ये कीड़े इन पौदों पर क्यों चिपके हैं? (वे उनको खाते हैं।) (६) वे इन पौदों को किससे खाते हैं? (मुँह से।) (७) लाही के कीड़ों का मुँह कैसे बना है? (उनका मुँह एक तीव्र नोकवाली चोंच के आकार का है।) (८) ऐसे नोकीले मुँह से लाही के कीड़े को क्या

लाभ है ? (९) लाही के कीड़े को देखकर उसके मुँह का चित्र खींचो। (१०) तुम लोग लाही के कीड़े को साधारण दृष्टि से सरसों के पौदे पर क्यों नहीं देख सकते ? (क्योंकि उसका रंग वैसा ही है, जैसा कि सरसों के पौदे का।) (११) लाही का कीड़ा सरसों के पौदे पर किस वस्तु द्वारा चढ़ता है ? (पैरों से) (१२) लाही के कीड़े की कितनी टाँगें हैं ? (छः)

नोटः—लाही के कीड़े की टाँगों और अन्य अंगों के देखने में बच्चे Magnifying glasses का प्रयोग कर सकते हैं। इत्यादि-इत्यादि प्रश्न बच्चों से पूछे जा सकते हैं। लाही के कीड़े पर कई पाठ दिये जा सकते हैं। बच्चों को यह बात भी निरीक्षण कराई जाय कि बड़े होने पर लाही के कीड़े के पंख निकल आते हैं और जब वे एक खेत को नष्ट कर चुकते हैं, तो उड़कर दूसरे खेत को चले जाते हैं। इस प्रकार लाही के कीड़े खेती को नष्ट कर डालते हैं। इस बात का निरीक्षण बच्चों से उस दिन कराना चाहिए जिस दिन लाही के कीड़े वास्तव में एक खेत को छोड़कर दूसरे खेतों को उड़कर आकाश से जा रहे हैं।

पाठ दूसरा

लाही के कीड़ों के मारने की युक्तियाँ

प्रश्नः—(१) लाही के कीड़ों को मारने का उचित समय कौन-सा है ? (जब कि वे विना पंख के होते हैं।) क्यों ? (२) बच्चो, तुम लाही के कीड़ों को कितनी प्रकार से मार सकते हो ? (बच्चे इस प्रश्न के अनेक उत्तर देंगे) इस प्रकार बच्चों के मन में उद्देश्य उत्पन्न किया जाय। उद्देश्य उत्पन्न करने के पश्चात् उन्हें एक या दो सरल युक्तियाँ बता दी जायँ।

प्रथम युक्तिः—जिन पौदों में लाही के कीड़े ख़ूब लगे हों, उन पौदों पर बच्चों से ख़ूब राख डलवाई जाय। घंटे या दो घंटे बाद फिर बच्चों को उन पौदों के निकट ले जाय जिन पर उन्होंने राख डाली थी। अब बच्चों से प्रश्न पूछोः—

लाही के कीड़ों की अब क्या दशा है ? (मर गये हैं।)

दूसरी युक्तिः—बच्चों से साबुन का घोल बनवाइए और उसे इन कीड़ों पर छिड़कवाइए। थोड़ी ही देर में कीड़े मर जायँगे। प्रश्नः—साबुन के घोल का लाही के कीड़ों के ऊपर क्या प्रभाव पड़ता है ? (वे मर जाते हैं) तो दूसरी युक्ति लाही के कीड़ों के मारने की क्या है ?

तीसरी युक्तिः—लाही के कीड़ों पर मिट्टी का तेल बच्चों से छिड़कवाइए। मिट्टी का तेल पड़ते ही वे मरने

लगते हैं और एक या दो मिनट में तो सब नष्ट हो जाते हैं। प्रश्नः—लाही के कीड़ों के मारने की तीसरी युक्ति क्या है? आज तुम्हें लाही के कीड़ों के मारने की कितनी युक्तियाँ बताई गई हैं? उनका वर्णन करो। सबसे सरल युक्ति कौन सी है? लाही के कीड़ों को मारने से हमें क्या लाभ होते हैं?

नोटः—यदि बच्चों को अनेक पाठ उन कीड़ों पर दिये जायँ, जो खेती को हानि पहुँचाते हैं, तो वे एक तो बच्चों को रोचक लगते हैं और दूसरे उनके जीवन में काम आ सकते हैं। शिक्षा हम इसी हेतु प्राप्त करते हैं कि उससे अपने जीवन में कुछ लाभ उठावें।

लिफ़ाफ़ों के विषय में एक आदर्श पाठ

सामग्रीः—अनेक प्रकार के लिफ़ाफ़े बच्चों को बाँट दिये जायँ, तो बहुत ही अच्छा हो। कल्पना करो कि शिक्षक ने एक लिफ़ाफ़ा बिना मोहर का, दूसरा मोहर-वाला और तीसरा रजिस्ट्री का लिफ़ाफ़ा प्रत्येक बच्चे को दिया है।

नोटः—यह कोई आवश्यक बात नहीं है कि प्रत्येक लिफ़ाफ़ा नया हो। पुराने लिफ़ाफ़े जो शिक्षक ने संग्रह किये हों नये लिफ़ाफ़ों से बहुत ही अच्छे हैं; क्योंकि उनके मोल लेने में पैसों का निरर्थक व्यय नहीं होता। शिक्षक

को सर्वदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बच्चों को पढ़ाने में जितना कम धन व्यय हो उतना ही अच्छा है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं निकालना चाहिए कि इतनी मितव्ययिता की जाय कि उसका परिणाम हानि-कारक हो। जिन वस्तुओं को अध्यापक स्वयं संग्रह कर सकते हैं, उन्हें मोल लेने से क्या लाभ ? यदि अध्यापक दूरदर्शी हो, तो बहुत कुछ हो सकता है। मान लो किसी अध्यापक को लिफ़ाफ़े एकत्रित करने हैं। जब कभी अध्यापक की कोई चिट्ठी आवे, तो वह उसे ऐसी सावधानी से खोले कि उसका लिफ़ाफ़ा पढ़ाने के काम में आ सके। धीरे-धीरे अध्यापक अपने नाम की चिट्ठियों के लिफ़ाफ़ों को संग्रह करता जाय, तो उसके पास लगभग सब प्रकार के लिफ़ाफ़े एकत्र हो सकते हैं। अगर उसके नाम रजिस्ट्री कभी न आई हो, तो प्रधान अध्यापक महाशय के दफ़्तर में तो अनेक प्रकार के लिफ़ाफ़े आते ही रहते हैं। उनकी आज्ञा से वे संग्रह किये जा सकते हैं।

प्रश्नः—(१) बच्चो, तुममें से प्रत्येक के पास कितने लिफ़ाफ़े हैं ? (तीन-तीन) (२) उन लिफ़ाफ़ों में तुम क्या अन्तर देखते हो ? (एक उनमें कोरा है; दूसरे के ऊपर दाहिने कोने पर छाप है, तीसरा लिफ़ाफ़ा इन दोनों से लम्बा और बड़ा है) (३) तीसरे लिफ़ाफ़े में और क्या

विशेषताएँ हैं ? (वह पुष्ट है और उसके भीतर कपड़ा लगा है।) (४) प्रत्येक लिफ़ाफ़े के ऊपर क्या लिखा है ? (इस प्रकार के प्रश्न पूछकर बच्चों से निकलवावे कि लम्बा और बड़ा लिफ़ाफ़ा रजिस्ट्री के काम का है।) (५) रजिस्ट्री क्या वस्तु है ? (इस प्रकार बच्चों से निकलवावे कि रजिस्ट्री लिफ़ाफ़े के भीतर जो वस्तु जाती है, उसके खो जाने का भय नहीं रहता और वह अवश्य उसके पास पहुँच जाती है जिसका नाम रजिस्ट्री लिफ़ाफ़े पर लिखा होता है । रजिस्ट्री लिफ़ाफ़े की हमें रसीद मिलती है; किन्तु साधारण लिफ़ाफ़े की नहीं ।) (६) रजिस्ट्री लिफ़ाफ़ा किसके पास दिया जाता है ? (७) साधारण लिफ़ाफ़ा कहाँ डाला जाता है ? (८) साधारण लिफ़ाफ़ा हिन्दुस्तान के अन्दर कितने दाम देने से जाता है ? (९) यदि तुम किसी भी लिफ़ाफ़े पर उचित दाम के टिकट न लगाओ तो क्या होगा ? (१०) (जिसके नाम वह भेजा जाता है, उसे दुगुने दाम देने पड़ते हैं।) क्यों ? इस प्रकार का वार्तालाप भिन्न-भिन्न प्रकार के लिफ़ाफ़ों के विषय में किया जा सकता है। बच्चों को भी लिफ़ाफ़ों के ऊपर प्रश्न पूछने का अवसर दे दिया जाय, तो अधिक अच्छा होगा ।

नोटः—नमूना के इन पाठों को ईश्वरीय न समझ लेना चाहिए । मेरा उद्देश्य तो केवल यह है कि पाठ ऐसे होने

चाहिए, जो बच्चों को लाभप्रद हों। मुझे पूर्ण आशा है कि मेरे साथी अन्य शिक्षकगण मुझसे भी कई गुने उत्तम पाठ बना-बनाकर बच्चों को सिखाएँगे।

पाठ तीसरा

बड़े मेंढक

इस पाठ को पढ़ाने के लिए बच्चों को पाठशाला के किसी निकटवर्त्ती तालाब के पास ले जाय।

प्रश्नः—(मेंढकों की ओर संकेत करते हुए) (१) ये क्या जीव हैं ? (मेंढक।) (२) वे पानी में क्या कर रहे हैं ? (तैर रहे हैं। मेंढक क्यों तैर लेते हैं ?) (३) मेंढक पानी में किस वस्तु द्वारा तैरते हैं ? (टाँगों द्वारा।) क्यों (उनके पैरों में झिल्ली है।) (४) प्रत्येक मेंढक की कितनी टाँगें हैं ? (चार।) (५) मेंढक की अगली और पिछली टाँगों में क्या अन्तर है ? (पिछली टाँगें अगली से बड़ी और मोटी हैं।) (६) पिछली टाँगों के बड़े और मोटे होने से मेंढक को क्या लाभ है ? (यहाँ पर टिड्डियों की पिछली टाँगों की तुलना मेंढक की पिछली टाँगों से करावे।) इस प्रकार बच्चों को बतलाए कि पिछली टाँगें मेंढक को उछलने-कूदने में सहायता देती हैं। अब बच्चों से मेंढक की टाँगों के चित्र खिंचवाए।

(७) (मेंढक के पास जाय या मेंढक की ओर एक लकड़ी धीरे-धीरे ले जाय) वह क्या करता है? (८) वह क्यों भागता है? (वह लकड़ी को देखकर भागता है।) (९) वह लकड़ी को किस चीज़ से देखता है? (आँखों से।) (१०) मेंढक की कितनी आँखें हैं? (दो।) (११) उसकी आँखों की बनावट कैसी है? (गोल, बड़ी, उभरी हुई।) तुम यदि इधर-उधर देखना चाहते हो, तो क्या करते हो? (अपनी गर्दन घुमाते हैं।) मेंढक की गर्दन है? (नहीं) (१२) ऐसी आँखों से मेंढक को क्या लाभ है? (वह ऐसी आँखों द्वारा चारों दिशा को देख सकता है।) (१३) (मेंढक के पास जाकर ताली बजाओ) वह क्या करता है? (भागता है।) (१४) क्यों? (वह ताली को सुनता है।) (१५) मेंढक ताली को किस अंग द्वारा सुनता है? (इस प्रकार उन दो गोल छिद्रों का अवलोकन बच्चों से कराओ जो कि उसकी आँखों के बीच में दोनों ओर स्थित हैं।) (१६) बच्चो, तुम मेंढक को हाथ से क्यों नहीं पकड़ना चाहते? (क्योंकि उसका शरीर एक विशेष प्रकार की घृणाजनक तथा चिकनी वस्तु से ढका हुआ है।) (१७) इस घृणाजनक तथा चिकनी वस्तु से मेंढक को क्या लाभ है? (१८) मेंढक क्या खाता है (इस प्रकार के प्रश्न पूछकर मेंढक के मुँह की ओर बच्चों का ध्यान लगाओ) (१९) मेंढक जब किसी जानवर

को पकड़ता है, तो क्या करता है ? (वह अपनी लम्बी जिह्वा को छोटे जानवर के ऊपर फेंकता है और उससे उस (जानवर) को मुँह के अन्दर ले जाता है।) इत्यादि-इत्यादि प्रश्न बच्चों से पूछे जा सकते हैं।

नोटः—जब अध्यापक यह भली भाँति जान जायँ कि बच्चे लिख-पढ़ सकते हैं, तो वे बच्चों को मेंढक या अन्य वस्तुओं के विषय में छोटे-छोटे वाक्यों के लिखने का शनैः-शनैः अभ्यास करावें, यथाः—

लिखित काम का आरंभ (Introduction of the written work)

(१) मेंढक के विषय में एक शब्दावली श्यामपट्ट पर लिख दें। तत्पश्चात् बच्चों से कहें कि उन शब्दों का प्रयोग प्रथम मौखिक वाक्यों में करो। जब यह कार्य समाप्त हो जाय, तो बच्चों को वे समझा दें कि इस शब्दावली को तुम लोग जब चाहो लिखते समय भी देख सकते हो और फिर उनसे यह कह दें कि जो वाक्य तुमने अभी तक मेंढक के विषय में कहे हैं, उन्हें अपनी कापियों में लिख दो।

या

(२) अध्यापक मेंढक के बारे में कुछ प्रश्न श्यामपट्ट पर लिख दें और बच्चों से उनके उत्तर अपनी-अपनी कापियों में लिखवाएँ।

या

(३) अध्यापकगण स्वयम् कुछ वाक्य मेंढक के विषय

में श्यामपट्ट पर इस प्रकार लिख दें कि उनमें कहीं-कहीं पर शून्य स्थान छोड़ दें। प्रथम वे उन शून्य स्थानों को बच्चों से मौखिक क्रिया से पूरा करावें। तत्पश्चात् बच्चों से कह दें कि वे उन वाक्यों को जो श्यामपट्ट पर लिखे हैं मन ही मन में पढ़ें और फिर उनमें जो शून्य स्थान हैं उनकी पूर्ति कर पूर्ण वाक्यों को अपनी कापियों में लिखें।

या

(४) कभी-कभी कुछ शब्द श्यामपट्ट पर अध्यापक लिख दें और बच्चों से कहें कि उनका प्रयोग करते हुए प्रश्नवाचक वाक्य बनाओ।

या

(५) किसी विषय का नाम या किसी वस्तु का नाम शिक्षक श्यामपट्ट पर लिख दे और बच्चों से उस विषय या वस्तु के बारे में कहने के लिए कहे। जब बच्चे किसी विषय अथवा वस्तु के बारे में कोई वाक्य कह चुकें, तो शिक्षक बच्चों को आज्ञा दे कि वह उन वाक्यों को (जो अभी कहे हैं) अपनी कापी में लिखें।

या

(६) कभी-कभी अध्यापक श्यामपट्ट पर या किसी काग़ज़ के टुकड़े पर बहुत सी आज्ञाएँ जिनको वह पढ़ा चुका है, लिख दे और प्रत्येक बच्चे से कहे कि जो कुछ श्यामपट्ट पर या काग़ज़ के टुकड़े पर लिखा है, उसे चुपचाप

ध्यान से पढ़ो और जहाँ पर वे न समझ सकें, वहाँ पर हमसे पूछो। तत्पश्चात् बच्चों से कह दिया जाय कि प्रत्येक आज्ञा को मन ही मन में पढ़ते जाओ और उसके अनुसार काम करते जाओ। जो कुछ काम तुम करो उसे अपनी कापियों में लिखते जाओ।

नोटः—कल्पना करो कि अध्यापक ने श्यामपट्ट पर या एक कागज़ के टुकड़े पर (जिसका नमूना प्रत्येक बच्चे को दे दिया गया है) निम्न-लिखित आज्ञाएँ लिख रक्खी हैंः—

(१) लाल पुस्तक को हरी पुस्तक के ऊपर रक्खो।

(२) अपनी आँखों को दस बार खोलो और बन्द करो।

(३) अपने हाथ दस बार फैलाओ।

(४) अपने स्थान पर ८ बार खड़े हो और बैठो।

(५) अपनी लेखनी को जेब में रखो।

(६) पेंसल को दो श्वेत पुस्तकों के मध्य में रक्खो।

इत्यादि-इत्यादि।

अब प्रत्येक बच्चा ऊपर लिखी आज्ञाओं को चुपचाप पढ़ता जाता है और उनके अनुसार काम करता जाता है। जो कुछ वह काम करता जाता है, उसे लिखता जाता है। अध्यापक बच्चों की देखभाल करता जाता है और जो कुछ बच्चे लिखते जाते हैं, उसे शुद्ध करता जाता है।

अवशिष्ट काम को अध्यापक अपने अवकाश के घंटे में शुद्ध कर सकता है। इस प्रकार के पाठ देने से बच्चों को अनेक प्रकार के प्रत्यक्ष और उपलम्भन होते हैं। उनकी मुस्लियों का प्रयोग भी होता है। बच्चों के अन्तःकरण में यह भाव उत्पन्न होता है कि वे स्वतन्त्रतापूर्वक स्वयं भी काम कर सकते हैं।

नोटः—ऐसी अनेक युक्तियाँ निबन्ध सिखाने की हैं कि जिनके प्रयोग से अध्यापक को कम बोलना पड़े और बच्चे स्वतः भली भाँति काम करें। अध्यापक तो बच्चों के लिए केवल एक मार्गदर्शक है। उसका धर्म है कि बच्चों के हृदय में यह बात जमा दे कि पढ़ना-लिखना तो उनका ही काम है। अध्यापक तो उनका एक सुहृद् है, जो उन्हें सर्वदा सहायता देने को तत्पर है। जो अध्यापक इस सिद्धान्त को नहीं समझते, वे वह काम भी स्वयम् ही किया करते हैं, जो बच्चों को करना चाहिए। शिक्षक को यह ध्यान में रखना चाहिए कि काम ही एक बड़ा शिक्षक है।

अध्यापक का कर्त्तव्य (Teacher's duty.)

(७) अध्यापक नीचे दी हुई युक्ति को भी व्यवहार में ला सकते हैं:—

इस प्रकार का निदर्शन (Illustration) अध्यापक श्यामपट्ट पर खींच ले और जिन शब्दों का बच्चों से प्रयोग करवाना चाहता है, उनको निदर्शन के भीतर उसी ढंग

चित्र नं० १०
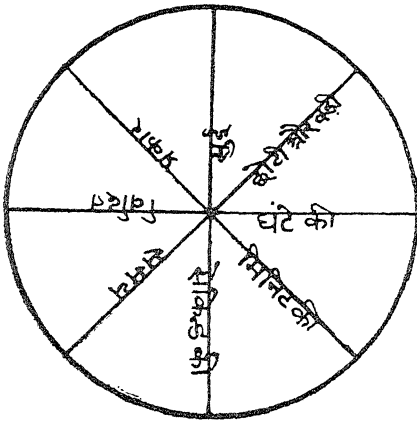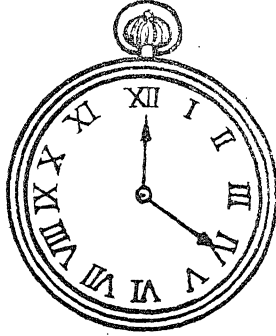
से लिख दे, जिस ढंग से कि घड़ी-विषयक शब्द ऊपर लिखे हैं। अब अध्यापक बच्चों को समझा दे कि जितने शब्द घेरे के अन्दर हैं, वे सब अमुक वस्तु के बारे में हैं।

में जिस शब्द या शब्द-समूह के ऊपर अपनी उँगली रक्खूँ, उससे तुम ऐसे वाक्य बनाओ, जिनका सम्बन्ध उस वस्तु से हो, जिसका चित्र घेरे के ऊपर दिया है। ऐसे निदर्शन अध्यापक को बहुत बोलने से बचाते हैं; किन्तु वे बच्चों को अधिक बोलने का अवसर देते हैं। जब मौखिक क्रिया समाप्त हो जाय, तब बच्चे निदर्शन के अन्दर लिखे हुए शब्दों को या शब्द-समूहों का प्रयोग करते हुए अपनी कापियों में वाक्य लिख दें। इस प्रकार अनेक उपयोगी युक्तियाँ खोज-खोजकर अध्यापक व्यवहार में ला सकते हैं।

चतुर्थ अध्याय

कल्पना (Imagination)

प्रतिमाः—मेरा छाता यहाँ नहीं है, किन्तु यदि मैं अपने छाते की कल्पना करना चाहूँ, तो प्रथम पूरे छाते का चित्र मेरे मन के सामने उपस्थित होता है। फिर मेरे मन में उसकी बनावट, उसका रंग, उसकी कमानियों की संख्या और आकार, उसकी डंडी, उसका कपड़ा, उसका बोझ, उसके कपड़े की बुनावट इत्यादि-इत्यादि बातें आती हैं। मुझे स्मरण होता है कि उसकी कमानियाँ लोहे की बनी हैं; उसकी डंडी लकड़ी की बनी है; उसके अन्दर ताँबे के तार का काम भी है; यही नहीं मुझे छाते के लाभ भी स्मरण हो आते हैं—यथा, वह मुझे पानी और धूप से बचाता है; यदि छाता अपने पास है और कोई कुत्ता काटने दौड़े, तो उसे भगाने में हम अपने छाते की सहायता ले सकते हैं इत्यादि-इत्यादि। इस प्रकार कुछ समय पश्चात् मुझे अपने छाते का पूर्ण ध्यान हो जाता है; जिसके कारण मैं अपने छाते का एक उत्तम मानसिक चित्र अपने हृदय में बना लेता हूँ। किन्तु मुझे यह भली भाँति मालूम है कि यह मानसिक चित्र मेरे वास्तविक छाते से नितान्त भिन्न है।

मान लो गुलाब का पुष्प मेरे सामने नहीं है। अब मैं

इच्छा करता हूँ कि मुझे गुलाब के पुष्प का ध्यान हो। इस इच्छा के होते ही मुझे प्रथम सम्पूर्ण गुलाब के फूल का स्मरण होता है। तत्पश्चात् उसका रंग, उसकी बनावट (वह बहुत सी पंखड़ियों का बना है; उन पंखड़ियों के मध्य में तिल्लियाँ होती हैं; उन तिल्लियों के ऊपर केसर लगी है; उसकी हरी पंखड़ियाँ रंगीन पंखड़ियों के नीचे हैं; सम्पूर्ण हरी और रंगीन पंखड़ियाँ एक डंठल के ऊपर स्थित हैं। इत्यादि।) उसकी सुगन्ध, उसकी सुन्दरता; और उसके ऊपर मधुमक्खियों तथा तितलियों का भिनभिनाना; इत्यादि भाव और उपलम्भन मेरे मन के सामने आ जाते हैं। इन भावों और उपलम्भनों के मन में आने से छाते का चित्रण मय छाते के भाव और उपलम्भन के मेरे हृदय यानी मन से शनैः-शनैः लुप्त हो गये हैं और परिणाम यह हुआ है कि छाते का सम्पूर्ण मानसिक चित्र (Mental image) मेरे मन से लुप्त होगया है और उसके स्थान में गुलाब के पुष्प का मानसिक चित्र (Mental picture) मन में जाग्रत् हो गया है।

इसका क्या कारण है कि मेरे मन में छाते और गुलाब के फूल के चित्रण मय भावनाओं के, जो उनसे सम्बन्ध रखते हैं, उपस्थित तथा जाग्रत् हो जाते हैं? उनके जाग्रत् तथा उपस्थित होने का कारण यही है कि मैंने भूत में छाता देखा है; छुआ है; उठाया है; खोला है; बन्द किया

है। मैंने केवल एक ही छाते का प्रयोग नहीं किया है, किन्तु अनेक छातों का प्रयोग किया है । मुझे छाते या छातों के अनेक प्रत्यक्ष और उपलम्भन हो चुके हैं ।

एवं मैंने भूतकाल में गुलाब का पुष्प देखा है; उसको सूँघा है; उसके भिन्न-भिन्न अवयवों का निरीक्षण किया है; मुझे भिन्न-भिन्न प्रकार के गुलाब और अन्य पुष्पों की सूक्ष्म भावनायें पूर्व में हो चुकी हैं। स्मृति के कारण वे सब मन में फिर से जाग्रत् हो जाती हैं। जिस मनुष्य या बालक ने छाते का और गुलाब के फूल का निरीक्षण अर्थात् अवलोकन नहीं किया है, यानी जिसने छाते और गुलाब के अवयवों, गुणों, धर्मों और पारस्परिक सम्बन्धों को सम्यक् प्रकार से नहीं देखा और ज्ञात किया है, उसके मन में छाते और गुलाब के स्पष्ट और शुद्ध चित्रण तथा भाव केवल इच्छा करने से ही जाग्रत् नहीं हो सकते हैं।

गधा मेरे सामने नहीं है; परन्तु मैं चाहता हूँ कि मुझे गधे का ध्यान हो जाय । इस इच्छा के होते ही मेरे मन में प्रथम समस्त रूप में गधे का ध्यान जाग उठता है। तत्पश्चात् मेरे मन में गधे के अवयवों, गुणों, विशेषताओं का स्मरण होता है। मुझे बोध होने लगता है कि गधे के कान लम्बे हैं; वह लगभग ४–५ फ़ीट ऊँचा होता है; उसकी टाँगों में खुर होते हैं, इत्यादि-इत्यादि; वह भार ढोने के काम आता है; कभी-कभी हम उस पर सवारी भी

करते हैं; उसकी लीद हम खेतों में डालते हैं; इत्यादि-इत्यादि भाव भी मेरे मन में आते हैं और इस प्रकार मुझे गधे का स्पष्ट ध्यान हो जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि मुझे गधे का चित्रण मय उसके भावों के हो जाता है। या यों कहिए कि मेरे मन में गधे की स्पष्ट मानसिक प्रतिमा तैयार हो जाती है।

प्रतिमा की स्पष्टता (Distinctiveness) तथा शुद्धता (Correctness) किन-किन बातों पर निर्भर है ?

ऐसे ही मेरे मन में उन वस्तुओं की अनेक प्रतिमाएँ जाग्रत् हो जाती हैं, जिनको मैंने भूतकाल में देखा है; सुना है; छुआ है; उठाया है; तोड़ा है; फेंका है; सूँघा है; चक्खा है; काटा है; अथवा जिनके अनेक प्रत्यक्ष उपलम्भन या सूक्ष्म भाव मुझे पूर्व में हो चुके हैं। यदि मैंने पूर्व में गधे के कानों का अवलोकन नहीं किया है, तो प्रतिमा जो मेरे सामने उपस्थित होगी, उसमें गधे के कान नहीं हो सकते; यदि मैंने पूर्व में गुलाब की पंखड़ियों को सूँघा नहीं है, तो मेरे मन में गुलाब की जो प्रतिमा जाग्रत् होगी, उसमें मुझे गुलाब की सुगन्ध का ध्यान नहीं आ सकता; एवं यदि मैंने पूर्व में किसी वस्तु या पदार्थ को उठाया नहीं है; या चक्खा नहीं है, तो जब उस वस्तु या पदार्थ की प्रतिमा मेरे मन में आवेगी, तो मुझे उस समय उस वस्तु

या पदार्थ के बोझ या स्वाद का बोध नहीं होगा अर्थात् किसी वस्तु, पदार्थ या व्यक्ति की प्रतिमा मेरे मन में उतनी ही स्पष्ट और शुद्ध उपस्थित होती है, जितने उस वस्तु, पदार्थ, या व्यक्ति के स्पष्ट तथा शुद्ध प्रत्यक्ष और उपलम्भन मुझे पहले हो चुके हैं। उस वस्तु, पदार्थ या व्यक्ति का मैंने जितना शुद्ध अवलोकन किया होगा, उतने ही शुद्ध भाव प्रतिमा होने के समय मेरे मन में जाग्रत् होंगे। अतः यह सिद्ध है कि किसी वस्तु, पदार्थ या व्यक्ति की उचित प्रतिमा मेरे मन में तभी जाग्रत् हो सकती है, जब पूर्व में उस वस्तु, पदार्थ, या व्यक्ति के स्पष्ट और शुद्ध प्रत्यक्ष और उपलम्भन मुझे हुए हों या मैंने उसका भूतकाल में सम्यक् निरीक्षण किया हो। कहने का सारांश यह है कि उचित प्रत्यक्ष, शुद्ध उपलम्भन, और सम्यक् निरीक्षण पर ही उचित और स्पष्ट प्रतिमा का होना अवलम्बित है।

प्रतिमा और उपलम्भन का भेद (Difference)

मान लो मेरे सम्मुख छाता रक्खा हुआ है। मैं उसे खोल नहीं रहा हूँ; छू नहीं रहा हूँ; उठा नहीं रहा हूँ; बन्द नहीं कर रहा हूँ, यानी मैं उसका कुछ नहीं कर रहा हूँ, केवल उसको दूर से देख रहा हूँ। इस दशा में भी तो मुझे यह बोध हो रहा है कि छाता एक लाभदायक वस्तु है। वह हमें धूप और वर्षा से बचाता है। उसके अन्दर सींकें हैं, जो

लोहे की बनी हैं। ताँबे के तार से वे सींकें जुड़ी हैं। छाते की चरखी में बहुत से छिद्र हैं। उन छिद्रों में वे सींकें जुड़ी हैं। छाते की छड़ी लोहे की बनी है। किसी-किसी छाते की छड़ी लकड़ी की भी बनी होती है। मैं छाते के उन भागों को तो अवश्य देख रहा हूँ, जो मेरी आँखों के सामने हैं, किन्तु छाते के भीतरी भाग या अवयव तो मेरी आँखों के सामने उपस्थित नहीं हैं; किन्तु मैं उन्हें भी देख रहा हूँ। यही नहीं मुझे छाते के गुण या लाभ भी विदित हो रहे हैं।

मान लो मेरे सामने एक नारंगी रक्खी है। मैं नारंगी को केवल देख रहा हूँ। उसको छू नहीं रहा हूँ। दूर से खड़ा-खड़ा उसे पंगु की नाईं देख भर रहा हूँ; किन्तु मुझे नारंगी के स्वाद का ज्ञान हो रहा है। मैं अनुभव कर रहा हूँ कि यह नारंगी (पकी है और) मीठी है। मुझे बोध हो रहा है कि नारंगी के अन्दर रसदार फाँकें हैं। उन फाँकों के अन्दर बीज भी चिपके हुए हैं। मुझे नारंगी के फाँकों का रंग भी ध्यान में आ रहा है। मैं यह भी जान रहा हूँ कि नारंगी को निचोड़कर लोग शर्बत में मिलाते हैं। नारंगी खाने से मनुष्य के मस्तिष्क में तरी पहुँचती है। मुझे यह भी ध्यान में आ रहा है कि सड़ी-गली नारंगी खाने से महामारी उत्पन्न होती है। इत्यादि-इत्यादि बातें मेरे ध्यान में आ रही हैं। किंचित्

समय के लिए मानिए कि नारंगी मेरे सामने नहीं थी और न मेरे सामने कोई छाता था; किन्तु मैं चाहता था कि नारंगी और छाते का मुझे ध्यान हो। क्या नारंगी और छाते की अनुपस्थिति में ऊपर लिखी बातों का मुझे ध्यान नहीं हो सकता? आप कहेंगे, "अवश्य हो सकता है।"

यदि हम वस्तुओं को देखते, छूते, चखते, सुनते या सूँघते हैं, तो हमारी ज्ञानेन्द्रियों पर देखने, छूने, चखने, सुनने और सूँघने से विशेष प्रकार के प्रभाव पड़ते हैं। उन प्रभावों को ज्ञानेन्द्रियाँ ग्रहण करती हैं। वे प्रभाव ज्ञान-स्नायु द्वारा मन तक पहुँचते हैं। मन को बोध होता है कि अमुक वस्तु छुई जा रही है; अमुक वस्तु देखी जा रही है; अमुक वस्तु सूँघी जा रही है; अमुक शब्द सुना जा रहा है, जो किसी विशेष वस्तु से आ रहा है या उत्पन्न किया जा रहा है। इस प्रकार हमें जो उपलम्भन होते हैं, उनसे हमें वाह्य वस्तुओं की प्रतीति होती है। प्रतीति होने से हमें उन वस्तुओं का ज्ञान होता है। ऐसे ज्ञान को हम उपलम्भनजनित ज्ञान (Caused by Perception) कहते हैं। किसी वस्तु या पदार्थ के उपलम्भन हमें तभी होते हैं, जब बाह्य प्रभाव हमारी ज्ञानेन्द्रियों पर पड़ता है और उस वाह्य प्रभाव के कारण हमारे ज्ञान-स्नायु तथा आज्ञास्नायु उत्तेजित हो जाते हैं, नाड़ी-संस्थान में हलचल मच जाती है। किसी वस्तु

की प्रतिमा हमें तभी होती है, जब कोई वाह्य प्रभाव हमारे स्नायुओं को उत्तेजित नहीं करते; क्योंकि प्रतिमा की दशा में तो स्नायुओं को उत्तेजित करने में कई आभ्यन्तरिक प्रभाव होते हैं अर्थात् प्रतिमा की दशा में नाड़ी-संस्थान में हलचल मचाने के कोई आन्तरिक उत्तेजक (Internal stimuli) हैं। वे उत्तेजक किसी वाह्य वस्तु या पदार्थ से नहीं आते हैं वे तो हमारे अन्दर ही अन्दर स्वतः उत्पन्न होते हैं और नाड़ी-संस्थान को उत्तेजित कर देते हैं। किसी वस्तु की प्रतिमा होते समय यह सम्भव है कि वही स्नायु फिर से उत्तेजित हो सकते हैं, जो कि उस वस्तु के उपलम्भन होने के समय उत्तेजित हुए थे, किन्तु उपलम्भन में सर्वदा वाह्य प्रभाव या वस्तु नाड़ी-संस्थान को उत्तेजित करते हैं और प्रतिमा की दशा में नाड़ी-संस्थान को उत्तेजित करनेवाले कोई आन्तरिक प्रभाव या विचार ही (उत्तेजक) होते हैं, जो स्वतः हमारे मन में जाग्रत् होते हैं। इन आन्तरिक उत्तेजकों के कारण बच्चे (जिनकी अवस्था ८ या ६ वर्ष की होती है) अनेक देखी हुई वस्तुओं की मानसिक प्रतिमाएँ बनाया करते हैं और आनन्द उठाया करते हैं। जिस मानसिक शक्ति द्वारा वे या हम बड़े मनुष्य इस काम को (यानी वस्तुओं की मानसिक प्रतिमाएँ बनाते हैं) करते हैं उसको कल्पना-शक्ति

कल्पना-शक्ति किसे कहते हैं ?

कहते हैं। आगे चलकर बताया जायगा कि कल्पना-शक्ति से क्या-क्या लाभ होते हैं।

कल्पना-शक्ति के प्रकार (Kinds of Imagination)

(क) बहुत सी ऐसी वस्तुएँ हैं, जिनका हमने नाम तक नहीं सुना है। उनको देखना, भालना, छूना, उठाना तो दूर रहा, किन्तु हम उनकी भी प्रतिमाएँ अपने मन में बना सकते हैं। मान लो हमने ज़ेबरा जानवर नहीं देखा है; किन्तु हमने गधा और बिल्ली देखी है। कोई मनुष्य हमसे कहता है कि ज़ेबरा गधे की ऊँचाई का एक जानवर होता है। उसके शरीर पर बिल्ली की धारियों की तरह चौड़ी-चौड़ी धारियाँ होती हैं। उस आदमी के वर्णन से हम गधे और बिल्ली की आकृति का ध्यान मन में लाते हैं और गधे तथा बिल्ली के भावों को एकत्रित कर लेते हैं कि ज़ेबरा एक ऐसा गधा होता है, जिसके शरीर पर ऐसी चौड़ी-चौड़ी धारियाँ होती हैं, जैसी कि बिल्ली के शरीर पर होती हैं।

मान लो हमने शुतुर्मुर्ग़ नहीं देखा है। कोई मनुष्य हमसे कहता है कि शुतुर्मुर्ग़ एक चिड़िया होती है, जो मुर्ग़ी की आकृति का होता है। मुर्ग़ी छोटी होती है; किन्तु वह घोड़े के बराबर ऊँचा होता है। वह उड़ नहीं सकता; किन्तु यदि उसका पीछा किया जाय, तो वह बहुत शीघ्रता से दौड़ता है। उसकी टाँगें भी घोड़े की

टाँगों के बराबर ऊँची और मोटी होती हैं। उसके पैरों में मुर्ग़ी के से पंजे नहीं होते, वरन् घोड़े के से खुर होते हैं। इस प्रकार के वर्णन से हम अपने मन में घोड़े और मुर्ग़ी की आकृतियों के भावों को एकत्र करते हैं और एक नवीन चित्र अपने मन में गढ़कर शुतुर्मुर्ग़ का ध्यान बना लेते हैं, अर्थात् शुतुर्मुर्ग़ की प्रतिमा बना लेते हैं।

अब बच्चे को लीजिए। वह पाठशाला में अध्यापक से कितने ही वृत्तांत सुनता है, कहानियाँ सुनता है। उनको सुन-सुनकर उसके मन में अनेक भाव उत्पन्न होते हैं, जिनका काट-छाँटकर वह मिला देता है और अनेक नवीन-नवीन प्रतिमाएँ बनाता जाता है (और उनके बनाने से आनंद उठाता जाता है; क्योंकि बच्चे का मन प्रतिमाओं के बनाने में सर्वदा मग्न रहता है। मन की जिस कार्य की ओर प्रवृत्ति होती है, उस कार्य के करने से उसे आनन्द तथा प्रसन्नता होती है। यह बात प्रथम अध्याय में सुचारु रूप से वर्णन की गई है।)

(ख) जब हम बच्चे से कहते हैं कि तुमने अमुक वस्तु या घटना देखी है, उसका वर्णन सुनाओ तो उस वस्तु, घटना या कहानी का वर्णन करते समय उसके मन में क्या क्रिया होती रहती है ? हमारी प्रार्थना व प्रश्न को सुनते ही बच्चे के मन में सर्व-प्रथम उस कहानी, वस्तु या घटना का ध्यान समस्त रूप में जाग उठता है।

उस ध्यान में बहुत से भाव मिश्रित होते हैं। किन्तु ज्यों-ज्यों बच्चा उस वस्तु, घटना या कहानी का वर्णन करता जाता है, त्यों-त्यों वे मिश्रित भाव छँट-छँटकर एक-एक करके अलग-अलग होते जाते हैं और बच्चा उनको कहता जाता है। बहुत से भाव तो उस समय बच्चे के ध्यान में होते ही नहीं हैं, जब वह उस वस्तु, घटना या कहानी का वर्णन करना प्रारम्भ करता है। वे भाव जो प्रारम्भ में बच्चे के मन में अनुपस्थित होते हैं, पारस्परिक सहचार (Association) के कारण वर्णन प्रारम्भ करने के पश्चात् स्वयं बच्चे के मन में आते रहते हैं। जैसे-जैसे वे आते रहते हैं, तैसे-तैसे बच्चा उनको कहता जाता है। मान लो अध्यापक बच्चे से नारंगी (जिसको उसने देख रक्खा है) का वर्णन पूछता है। इस प्रश्न को सुनकर बच्चे के मन में नारंगी का समस्त रूप में ध्यान आ जाता है। इस समस्त ध्यान में अनेक भाव मिश्रित होते हैं। ज्यों-ज्यों बच्चा नारंगी का वर्णन करता जाता है, त्यों-त्यों अनेक भाव सहचार के कारण स्वतः उसके मन में आते रहते हैं। जैसे-जैसे वे उसके मन में आते रहते हैं, तैसे-तैसे बच्चा उनका वर्णन करता जाता है। नारंगी का वर्णन करते समय बच्चे का मन नारंगी में मग्न रहता है। अतः उसके मन में स्मृति के कारण नारंगी के अवयव (छिलका, फाँक, बीज, इत्यादि), रूप, रंग, स्वाद, सुगंध, लाभ इत्यादि

के भाव तथा प्रतिमाएँ यथा क्रम आती रहती हैं। जैसे-जैसे वे भाव प्रतिमाएँ बच्चे के मन में आती रहती हैं, वैसे-वैसे बच्चा उनका वर्णन करता जाता है। बच्चे के मन में नारंगी के अवयव, रूप, रंग, स्वाद, सुगन्ध, लाभ, हानि की प्रतिमाएँ और भाव तब तक नहीं आ सकते, जब तक उसने नारंगी का सम्यक् प्रकार से अवलोकन न किया हो। अर्थात् जितना अच्छा हमारा निरीक्षण होगा, उतना ही अच्छा तथा स्पष्ट हमारा वर्णन भी होगा। मान लो कि बच्चा जब नारंगी का वर्णन कर रहा हो, यह कहता है कि "नारंगी पककर पीली हो जाती है और भूमि पर गिर पड़ती है।" यह वाक्य बच्चा तब तक नहीं कह सकता है, जब तक कि बच्चे को जातिवाचक भाव और सूक्ष्म भाव न हों; क्योंकि 'नारंगी' शब्द कहने से जातिवाचक भाव सूचित होता है; 'पीले होने' का सम्बन्ध 'पकने' से है और 'पकने' का सम्बन्ध 'भूमि पर गिरने' से है। ऐसे गुणों और सम्बन्धों के भावों को सूक्ष्म भाव कहते हैं। ये भावों के (पारस्परिक) सम्बन्ध बच्चे ने नारंगी को निरीक्षण करते समय बना लिये थे। इन्हीं सम्बन्धों के कारण बच्चा नारंगी का वर्णन सरलता तथा शीघ्रता से कर देता है। जिस वस्तु, घटना या कहानी के विषय में हमारे भावों में जितने अच्छे तथा अधिक ऐसे सम्बन्ध होंगे, उतना ही अच्छा और अधिक उस कहानी, घटना या वस्तु

का हमारा वर्णन होगा। जब भावों में ऐसे सम्बन्ध (जिनको हम कार्यकारण (Thought-Links) सम्बन्ध कह सकते हैं; क्योंकि पीला होना एक कार्य है और पकना पीले होने का कारण है; एवं 'गिरना' एक कार्य है और 'पकना' उसका यानी गिरने का कारण है।) नहीं होते, तो उनका वर्णन करना हमें कठिन प्रतीत होता है। यथा:—यदि मैं पाठकों से कहूँ कि वे "कुत्ता, लेखनी, अमरूद, गेंद, तापमापक यन्त्र, तौलिया, सड़क, नसेनी, लोटा, बिल्ली, सुई, खाट, कान," शब्दों को एक बार पढ़ें और फिर उस पुस्तक को बन्द कर मुझे सुना दें, तो मैं समझता हूँ कि उन्हें इन शब्दों को कहकर सुनाने में कठिनता ज्ञात होगी। यह क्यों ? इस कारण कि इन शब्दों के भावों में कोई (कार्य-कारण) सम्बन्ध नहीं है। किन्तु यदि मैं पाठकों से कहूँ कि वे "पुस्तक, पृष्ठ, पंक्तियाँ, वाक्य, पद, अक्षर," शब्दों को पुस्तक बन्द करके मुझे सुना दें, तो मुझे आशा है कि वे इन शब्दों को सरलता और शीघ्रता से कह सकते हैं। इसका क्या कारण है ? इसका कारण यह है कि इन शब्दों के भावों में पारस्परिक (कार्य-कारण) सम्बन्ध है। पुस्तक पृष्ठों से बनी है; पृष्ठों में कई पंक्तियाँ हैं; पंक्तियों में अनेक वाक्य हैं; वाक्यों में अनेक पद हैं; पदों में अनेक अक्षर हैं। अतः इन शब्दों को स्मरण रखना तथा कहकर सुना देना सरल

है। जिस घटना, वस्तु या कहानी के भावों में कार्य-कारण सम्बन्ध नहीं होता, उसका वर्णन या व्याख्यान देना कठिन होता है।

मान लो किसी बच्चे ने निम्न-लिखित कहानी सुनी है। अध्यापक उस बच्चे से प्रश्न करता है कि प्यासे कौवे की कहानी क्या है।

कहानी:—गर्मी का मौसम था और कड़ी धूप पड़ रही थी। एक कौवा प्यास के मारे इधर-उधर पानी की तलाश में उड़ रहा था। कौवे ने अचानक एक पानी का घड़ा देखा। कौवा घड़े को देखकर ख़ुश हुआ। लेकिन जब उसने घड़े के अन्दर देखा तो उसने देखा कि पानी घड़े के पेंदे में था। कौवे को बड़ी फ़िक्र हुई कि पानी किस तरह से मिले। उसने थोड़ी देर सोचा और उसके मन में यह तरकीब आई कि कंकड़ ला-लाकर घड़े में डाले जायँ, तो पानी ऊपर उठ आवेगा। इत्यादि।

पाठकों को विदित हो गया होगा कि इस कहानी में जो भाव है, उनमें कार्य-कारण सम्बन्ध हैं। यथा:—गर्मी की ऋतु का कड़ी धूप से; कड़ी धूप का कौवे की प्यास से; प्यास का कौवे के इधर-उधर उड़ने से; कौवे के प्रसन्न होने का घड़ा देखने से; कौवे की चिन्ता का पानी की कमी से; पानी की कमी का कंकड़ लाने से; इत्यादि-इत्यादि। ऐसे कार्य-कारण सम्बन्धों के कारण कहानी

को बच्चा सरलता तथा शीघ्रता से कह सुनाता है।

फुटबौल का वर्णन

फुटबौल का कवर चमड़े का बना होता है; क्योंकि उसके अन्दर एक मुलायम रबर की थैली होती है। जब उस थैली में हवा भर दी जाती है, तो वह फूल जाती है। फुटबौल के अन्दर हवा होने से वह अच्छी तरह उछलता है और उस पर ठोकर मारने से पैर में चोट नहीं आती। इत्यादि-इत्यादि। मान लो कोई बच्चा फुटबौल का इस प्रकार वर्णन करता है।

फुटबौल के वर्णन में जो भाव हैं, उनमें भी पारस्परिक कार्य-कारण सम्बन्ध है:—यथा—रबर की थैली का और चमड़े के कवर का; (रबर की थैली कोमल होती है, अतः उसके बाहर चमड़े का कवर होता है।) थैली में हवा भरने का और उसके फूल जाने का (थैली का फूलना उसमें हवा भरने के कारण होता है); हवा होने का उछलने से; हवा होने का पैर में ठोकर मारने पर भी चोट न आने का; (यदि फुटबौल के अन्दर हवा न होती, तो पैर में अवश्य चोट आती।) इन्हीं कार्य-कारण सम्बन्धों के कारण बच्चा सरलता से फुटबौल का वर्णन कर देता है।

अब मान लो कोई अध्यापक बच्चों को निम्न-लिखित वाक्य पढ़कर सुनाता है और वह उन (वाक्यों)

को उन्हें स्मरण करने के निमित्त देता है:—(१) मेरी दावात घर पर है; (२) सड़क के बाईं तरफ़ एक पेड़ है; (३) कलकत्ता एक बड़ा नगर है; (४) मोहन आलस्य से भरा है; (५) भैंस खेत में चर रही है; (६) चमार जूता बना रहा है; (७) इस पुस्तक का रंग लाल है; इत्यादि-इत्यादि। इन वाक्यों का परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः उनके भावों में भी एक दूसरे से कुछ लगाव नहीं है। अतएव बच्चों को उनका स्मरण रखना तथा वर्णन करना कठिन प्रतीत होता है। जिन वाक्यों के बच्चे कार्य-कारण सम्बन्ध खोज लेते हैं या जान लेते हैं, उनको स्मरण रखना तथा वर्णन करना उन्हें सरल विदित होता है। इससे स्पष्ट है कि जब अध्यापक बच्चों को कोई कथा, घटना या वाक्य-समूह स्मरण करने को दें, तो उन्हें पहले यह निश्चय कर लेना चाहिए कि बच्चे उन्हें समझ गये हैं या नहीं। जब तक बच्चे किसी बात या विषय को न समझें अर्थात् उस बात या विषय के समझने में उन्होंने कार्य-कारण भावों का प्रयोग न किया हो, तब तक उन्हें वह बात या विषय याद करने को नहीं देना चाहिए।

कदाचित् मैं अपने मन्तव्य से दूर चला गया हूँ। अतः मैं पाठकों का ध्यान कल्पना-शक्ति के प्रकारों की ओर पुनः आकर्षित करता हूँ। ज़ेबरा तथा शुतुर्मुर्ग़ का वर्णन

सुनकर या पढ़कर उनके मानसिक चित्र बनाने में हम जिस शक्ति से काम लेते हैं, उसी से किसी सुनी हुई कहानी या देखी हुई वस्तु के मानसिक चित्र बनाने में काम नहीं लेते। उस मानसिक शक्ति को जिसके द्वारा हम किसी सुनी हुई कहानी, देखी हुई घटना या वस्तु के मानसिक चित्र बनाते हैं, उसे प्रकाशन-कल्पना-शक्ति (Reproductive Imagination) कहते हैं और जिस मानसिक शक्ति द्वारा हम किसी अदेखी वस्तु, पदार्थ, असुनी कहानी या वृत्तान्त का मानसिक चित्र बना लेते हैं उसको निर्माण कल्पना-शक्ति (Constructive Imagination) कहते हैं; क्योंकि निर्माण-कल्पना-शक्ति से हम अपनी पिछली जानी हुई बातों को तथा अपने पूर्व विचारों को आवश्यकतानुसार काट-छाँटकर या घटा-बढ़ाकर इस प्रकार मिश्रित और एकत्रित करते हैं कि उनसे नये-नये मानसिक चित्र बन जायँ; यथाः—शुतुर्मुर्ग और ज़ेबरा हमने देखे नहीं हैं, किन्तु उनका व्याख्यान या वृत्तान्त सुनकर या पढ़कर हम निर्माण-कल्पना-शक्ति द्वारा अपने पिछले भावों को काट-छाँटकर या घटा-बढ़ाकर उनके मानसिक चित्र बना लेते हैं। यदि अध्यापक चाहता है कि जिस नवीन कहानी या वस्तु का वह व्याख्यान या वृत्तान्त सुना रहा है, उसके मानसिक चित्र बच्चे बना लें, तो उसके लिए यह परम आवश्यक है कि वह उन विचारों और

है कि मनुष्य अपना आगा-पीछा सोचा करता है। वह जानवरों की नाईं सर्वदा उपलम्भन की दशा में पड़ा रहना अच्छा नहीं समझता। वह यह नहीं चाहता कि गाय-भैंस तथा अन्य जानवरों की तरह उसे तभी कोई काम सूझे जब उस काम के करने का समय आ ही पहुँचे। मैंने स्वयं देखा है कि गाय, भैंस, या कुत्ता यदि बीच सड़क पर चल रहे हों, तो वे तब तक चलते ही रहते हैं, जब तक कोई ऐसी वस्तु न आ जाय कि जिससे वे डरकर बीच सड़क से इधर-उधर न हो जायँ। किन्तु मनुष्य को देखिए, वह इस विचार से कि कहीं किसी मोटर तले दब न जाय या साइकिल से उसका पैर कट न जाय, पहले ही से सड़क पर सावधान होके एक किनारे चलता है।

पाठकों को विदित हो गया होगा कि कल्पना-शक्ति हमारे कितने बड़े लाभ की है। वे यह भी जान गये होंगे कि कल्पना-शक्ति के तीन बड़े-बड़े प्रकार हैं। अब प्रश्न उठता है कि निबन्ध-शिक्षा में वे कौन से पाठ हैं, जो बच्चों की कल्पनाशक्ति के उत्तेजन में हितकर होंगे? अतः बच्चों की कल्पना-शक्ति का विकास करनेवाले तथा उनकी प्रकृति से सम्बन्ध रखनेवाले पाठों की एक सूची नमूने के ढंग पर नीचे दी जाती है;—

नोट—पाठ के दो अंग प्रधान होते हैं; मौखिक और

लिखित। ज्यों-ज्यों बच्चा बड़ा होता जाता है, उसका मन विकसित होता जाता है। मन के विकास के कारण उसे केवल मौखिक पढ़ाई रोचक नहीं लगती। ६, १० या १२ वर्ष की अवस्थावाला बच्चा, मैंने देखा है, पाठशाला में बहुधा चित्र आदि खींचा करता है। कागज़ या फ़र्श पर खड़िया, पेंसिल, लेखनी इत्यादि से कुछ न कुछ खींचा या लिखा ही करता है। इसकी इस स्वाभाविक चेष्टा से यही सिद्ध होता है कि उसे अब नितान्त मौखिक पाठ रोचक नहीं लगते। उसने अपनी हस्त-मुस्लियों के ऊपर कुछ आधिपत्य प्राप्त कर लिया है। अतः उनके लिए यानी हस्त-मुस्लियों के लिए यदि कोई ऐसा काम न दिया जाय जिससे उन्हें संतोष हो, तो बच्चे पाठ-पढ़ाते समय अध्यापक की दाढ़ी-मूछ इत्यादि के चित्र बना-बनाकर अपनी हस्त-मुस्लियों को सन्तुष्ट किया करते हैं। इससे स्पष्ट है कि लिखाई का काम या कोई ऐसा काम पाठ में अवश्य होना चाहिए, जिससे उनकी हस्त-मुस्लियों को संतोष मिले। मुस्लियों के प्रयोग करने की इच्छा तो बच्चों में तभी प्रबल थी, जब कि वे ६, ७ या ८ वर्ष के थे। किन्तु उस समय और इस समय की इच्छा में बड़ा अन्तर है। उस समय उनकी इच्छा मोटे-मोटे यानी स्थूल काम करने की थी। अब उनकी इच्छा बारीक यानी सूक्ष्म काम करने की है। वस्तुओं को छूना, उठाना, फेंकना,

तोड़ना, इत्यादि सब स्थूल काम हैं। किन्तु उनकी आकृति का चित्र खींचना ; उनके विषय में कुछ लिखना ; इत्यादि सूक्ष्म काम हैं। पिछले कामों के करने में बच्चा अपनी मोटी-मोटी मुस्लियों का प्रयोग करता है, किन्तु चित्र आदि खींचने में उसकी बारीक मुस्लियाँ काम करती हैं। अतः सिद्ध है कि लिखाई का कार्य अब प्रारम्भ हो जाना चाहिए। किन्तु देखा गया है कि घंटे भर नितान्त लिखाई का काम ६, १० या १२ वर्षवाले बच्चे को रोचक नहीं लगता है; क्योंकि अभी उसकी हस्त-मुस्लियाँ इतनी प्रबल नहीं हैं कि वे घंटे भर की लिखाई को कर सकें। अनुभव बतलाता है कि भाषा-पाठ के (और विशेषकर मातृभाषा पाठ के) मौखिक और लिखित अंगों को समान प्रधानता देने से वे प्रसन्न रहते हैं। अतएव यदि निबन्ध-शिक्षा के निमित्त यदि ४० मिनिट का घंटा हो तो (उन बच्चों के लिए जो ६ और १२ वर्ष के अन्दर हों) २० मिनिट मौखिक कार्यवाही और २० मिनिट लिखित कार्यवाही होनी चाहिए।

कल्पना-शक्ति के विकास के निमित्त निबन्धपाठों की सूचीः—

(कल्पना-शक्ति तीन प्रकार की होती हैं, प्रकाशन-शक्ति, निर्माण-शक्ति और उत्पादन-शक्ति। प्रकाशन-शक्ति से उत्तम निर्माण-शक्ति और निर्माण-शक्ति से

उत्तम उत्पादन-शक्ति है। किन्तु तीनों के विना काम नहीं चल सकता। क्योंकि उत्पादन-शक्ति सबमें श्रेष्ठ है। इस कारण उसे अनेक विचार, भाव, और प्रौढ़ बुद्धियुत बालक कभी प्रयोग किया करते हैं। किन्तु प्रकाशन-शक्ति का काम सब शक्तियों में सरल है। अतः पहले ऐसे पाठ होने चाहिए, जो प्रकाशन-शक्ति से सम्बन्ध रखते हों। तत्पश्चात् वे पाठ होने चाहिए, जो निर्माण-शक्ति के अनुकूल हों। सबसे पीछे वे पाठ होने चाहिए, जो उत्पादन-शक्ति से सम्बद्ध हों।)

(१) देखी या सुनी हुई बातों, घटनाओं, वस्तुओं तथा पदार्थों के विषय में वर्णन करने को कहना और तत्पश्चात् उनके बारे में कुछ लिखना। यथाः—(ये पाठ पहले पाठों से कुछ क्लिष्ट होने चाहिए)।

(क) घोड़े, बिल्ली, बकरी, मुर्गी, बत्तक, इत्यादि का वर्णन कह सुनाना और लिखवाना।

(ख) पेंसिल, घड़ी, छाता, पतंग, लट्टू इत्यादि का वर्णन कह सुनाना और लिखवाना।

(ग) किसी मेले, रामलीला, दशहरा, होली, या दिवाली त्योहारों का वर्णन करना और उनके विषय में कुछ लिखवाना।

(घ) प्रत्येक बालक से वह कहानी पूछना जो उसने सुनी हो और फिर उसे लिखवाना।

(ङ) मोटर, रेल, पोस्टऑफ़िस, पुलिस का सिपाही, डाकिया, कुम्हार, स्काउटों का जलसा, पाठशाला का पारितोषिक दिवस, इत्यादि का वर्णन पूछना और लिखवाना।

(च) हिन्दी रीडरों में जो कहानियाँ बालकों ने पढ़ी हों, उनका वर्णन पूछना और लिखवाना, अथवा उनमें जो चित्र आये हों, उनका वर्णन पूछना और लिखवाना।

(छ) भूगोल के विषय में अन्य देशों के बालकों के बारे में जो कहानियाँ बालकों ने सुनी या पढ़ी हों, उनका वर्णन सुनना और लिखवाना; यथा:—स्कीमों की कहानी, पिगमियों की कहानी, खिरगीज़ की कहानी, हब्शी लड़के की कहानी, चीन के बच्चे का जीवन, इत्यादि-इत्यादि। नगरों और गाँवों का वर्णन कह सुनाना और लिखवाना।

(ज) इतिहास के घंटे में जो कहानियाँ बालकों ने सुनी हों, उनका वर्णन पूछना और लिखवाना; यथा रामायण की कहानी, महाभारत की कहानी, अकबर, शाहजहाँ, ताजमहल, क्लाइव, इत्यादि की कहानियाँ।

(झ) जो कहानियाँ बालकों ने सुनी न हों, उनको सुनाना और लिखवाना।

(ञ) जो चित्र बालकों ने न देखे हों, उनके विषय में वार्त्तालाप करना और फिर उनका वर्णन लिखवाना।

(क) सम्बन्धियों को पत्र लिखवाना ।

(अभी सरल और साधारण पत्रों तथा प्रार्थना-पत्रों को लिखवाना चाहिए।)

(ख) प्रार्थना-पत्रों को लिखवाना ।

(ग) कहानियों के संकेत भर दे देना और उनको (कहानियाँ) लिखवाना ।

प्रथम भाग में दिये हुए पाठों में से कुछ के नमूने मय पढ़ाने की रीतियों के नीचे दर्शाए गये हैं:—

(क) बिल्ली

पाठों के नमूने

नोट:—प्रथम बालकों को जो कुछ वे बिल्ली के विषय में जानते हों कह लेने दो । यदि उन्होंने बिल्ली का सम्यक् निरीक्षण किया होगा, तो वे बिल्ली का वर्णन उचित ढंग से करेंगे । यदि उनका निरीक्षण उचित नहीं होगा, तो वे बिल्ली का व्याख्यान ठीक-ठीक रीति से नहीं करेंगे । ऐसी दशा में अध्यापक उनके सामने बिल्ली का एक चित्र लटका दे और उस पर निम्न-लिखित प्रश्न पूछे:—

(१) इस चित्र में तुम क्या देखते हो ?

(२) बिल्ली का शरीर तुम कितने भागों में बाँट सकते हो ?

(३) बिल्ली का मुँह कैसा होता है ?

(४) बिल्ली की आँखों के विषय में तुम क्या जानते

हो? वे दिन में छोटी और रात में बड़ी क्यों दिखाई पड़ती हैं?

(५) बिल्ली की जिह्वा छूने से कैसी लगती है?

(६) बिल्ली क्या खाती है?

(७) बिल्ली की कितनी टाँगें हैं?

(८) चलते समय बिल्ली की टाँगें आहट क्यों नहीं करतीं?

(९) बिल्ली का क्या रंग है? बिल्ली किन-किन रंगों की होती हैं?

(१०) बिल्ली को अपने दुम से क्या लाभ है?

(११) बिल्ली से हमें क्या-क्या लाभ हैं?

(१२) कुत्ते और बिल्ली में क्या-क्या अन्तर हैं?

नोटः—ध्यान रखना चाहिए कि बालक उत्तर देते समय शुद्ध और पूर्ण वाक्यों का प्रयोग करें।

ऊपर लिखे प्रश्न पूछने के पश्चात् बालकों को बिल्ली के वर्णन के संकेत लिखवा देने चाहिएँ। फिर बालकों को आज्ञा दे दी जाय कि वे संकेतों के अनुसार बिल्ली का वर्णन लिखना आरम्भ कर दें। बिल्ली के वर्णन के संकेत नीचे दिए गये हैं:—

(१) बिल्ली एक जानवर है।

(२) उसका शरीर ३ भागों में बँटा होता है।

(३) बिल्ली का मुँह—आँख, कान, नाक, दाँत, जिह्वा।

(४) बिल्ली का धड़—टाँग, पंजे, नख, पैरों की गद्दियाँ।

(५) बिल्ली की दुम—मक्खी इत्यादि भगाने के काम में आती है।

(६) बिल्ली के लाभ—हमारे घरों में छोटे-छोटे हानिकारक जीवों को मारकर खा जाती है; चूहे घर से भाग जाते हैं इत्यादि-इत्यादि।

इन संकेतों को अध्यापक श्यामपट्ट पर लिख दे और बालकों से कह दे कि उनको वे अपनी कापियों में उतार लें।

नोट—यदि अध्यापक चाहे तो वह कुछ प्रश्न बिल्ली के बारे में श्यामपट्ट पर लिख दे। अब वह बच्चों से कहे कि तुम इन प्रश्नों को चुपचाप पढ़ते जाओ और अपनी आवश्यकतानुसार दीवार पर लटका हुआ बिल्ली का चित्र अवलोकन करते जाओ और इन सब प्रश्नों के उत्तर देने के निमित्त उद्यत रहो। इस काम के लिये मैं तुम्हें १० मिनिट देता हूँ। जब १० मिनिट समाप्त हो जाय तब अध्यापक यथाक्रम प्रत्येक प्रश्न की ओर बारी-बारी से संकेत करता जाय और जिस प्रश्न की ओर वह संकेत करे बालक उसका मौखिक उत्तर दें। इस क्रिया के उपरान्त बालकों से कह दिया जाय कि अब वे उन प्रश्नों के उत्तर अपनी कापियों में लिखें। अन्त में अध्यापक बालकों के लिखे को शुद्ध कर दे।

(ख) छाते पर एक आदर्श पाठ

प्रथम बालकों से अध्यापक कहे कि छाते के विषय में तुम जो कुछ जानते हो कहो। यदि बालकगण छाते का वर्णन न कर सकें, तो अध्यापक निम्न-लिखित ढंग को व्यवहार में लावेः—

(१) अध्यापक कुछ संकेत श्यामपट्ट पर लिख दे और बालकों से कहे कि वे उनके अनुसार छाते का वर्णन करें।

(२) संकेतों के सहारे भी यदि काम न चले, तो किसी छाते का चित्र बालकों को दिखाया जाय और उस पर वार्त्तालाप किया जाय। वार्त्तालाप करने के पश्चात् अध्यापक फिर बालकों का ध्यान उन संकेतों की ओर खींचे, जो श्यामपट्ट पर लिखे हैं और उनसे कह दे कि इन संकेतों के अनुसार छाते का वर्णन लिखो।

छाते के वर्णन के संकेतः—

(क) छाता, (ख) छाते की छड़ी, (ग) छाते का बेंट, (घ) छाते का कपड़ा, (ङ) छाते की कमानियाँ, (च) छाते की चरखी और घोड़ा, (छ) छाते के लाभ।

(ग) रामलीला का व्याख्यान

प्रथम अध्यापक बालकों से पूछे कि तुम में से किस-किसने रामलीला देखी है। जो बालक हाथ उठावें, उनमें से

किसी को छाँटकर पूछे कि रामलीला के विषय में तुम जो कुछ जानते हो, उसका वर्णन करो। यदि अध्यापक को विदित हो कि बालकगण रामलीला का वर्णन नहीं कर सकते हैं, तो वह उनसे निम्न-लिखित प्रश्न पूछेः—

(१) रामलीला किन दिनों में होती है ?

(२) वह क्यों मनाई जाती है ?

(३) राजा दशरथ कौन थे ? उनके मन में क्या चिन्ता रहती थी ?

(४) उनकी कितनी रानियाँ थीं ?

(५) किस रानी से कौन पुत्र पैदा हुआ था ?

(६) रामचन्द्रजी वन को क्यों गये ?

(७) राम-रावण युद्ध क्यों हुआ ?

(८) उस युद्ध का क्या परिणाम हुआ ?

(९) लव-कुश कौन थे ?

(१०) रामायण से हमें क्या-क्या उपदेश मिलते हैं ?

ऊपर लिखे प्रश्नों के पूछने के पश्चात् रामायण की कहानी के संकेत श्यामपट्ट पर अध्यापक लिख दे और बालकों से कहे कि उन संकेतों के अनुसार रामलीला का वर्णन लिखो।

श्यामपट्ट पर लिखने के लिये संकेतः—

(क) रामलीला-उत्सव मनाये जाने का समय।

(ख) रामलीला क्यों मनाई जाती है ?

(ग) राजा दशरथ; उनकी चिन्ता; उस चिन्ता के निवारण का प्रयत्न।

(घ) उनके चार पुत्रों का जन्म।

(ङ) रामचन्द्रजी का विवाह।

(च) राजा दशरथ के वचन।

(छ) राम का वन-गमन; भरत का प्रेम।

(ज) सीता-हरण; सीताजी का पातिव्रत धर्म।

(झ) राम-रावण युद्ध; हनुमान् और सुग्रीव की वीरता।

(ञ) उस युद्ध का परिणाम; विभीषण का राजतिलक।

कहानी-रचना (Story telling and writing)

(घ) नोटः—मनोविज्ञान के आधार पर कहानी-रचना सिखाने की तीन अवस्थाएँ हैं, यथा :—

(१) सुनी हुई कहानियों को कहना और लिखना (प्रकाशन-शक्ति)।

(२) किसी अश्रुत कहानी का व्याख्यान ध्यानपूर्वक सुनना और उसका चित्र मन में बनाना और तत्पश्चात् उसको लिखना (निर्माण-शक्ति)।

(३) अपने आप नई-नई कहानियों को बनाना (उत्पादन-शक्ति)। पहली अवस्था ५ वीं और छठी कक्षाओं (हाई स्कूल) के लिए ठीक है। दूसरी अवस्था कुछ कठिन प्रतीत होती है। अतः दूसरी अवस्था ७ वीं और ८ वीं कक्षाओं के निमित्त ठीक तथा हितकर है।

तीसरी अवस्था ९ वीं और १० वीं कक्षाओं के लिए और आगे की बड़ी-बड़ी श्रेणियों के लिए उचित है।

कहानी-रचना की प्रथम अवस्था (First stage)

इस अवस्था में वे कहानियाँ होनी चाहिएँ, जो बालकों ने सुन रक्खी हों अथवा पढ़ रक्खी हों। प्रथम अध्यापक बच्चों से पूछे कि उन्होंने कौन-कौन कहानियाँ सुनी हैं। जब बच्चे उनको बतला चुकें, तो अध्यापक उनसे कहे कि वे अपनी-अपनी कहानियाँ सुनावें। तत्पश्चात् अध्यापक बच्चों को आज्ञा दे कि वे उन कहानियों को, जो उन्होंने सुनाई हैं, अपनी कापियों में लिख दें। यदि बच्चे कहानी सुनाने और लिखने में असमर्थ रहें, तो अध्यापक स्वयम् कुछ साधारण कहानियाँ छाँट ले और उन्हें बच्चों को सुनावे। फिर वह उन कहानियों के ऊपर प्रश्न पूछे। तदुपरान्त वह कहानियों के संकेत श्यामपट्ट पर लिख दे और बच्चों से कहे कि वे कहानियों को उन संकेतों के अनुसार स्वयम् लिखें। अन्त में जब बच्चे संकेतों के अनुसार कहानियाँ लिख चुकें, तो वह प्रत्येक कहानी को ठीक कर दे। एक या दो कहानियों के नमूने नीचे दिये गये हैं यथाः—

सोने की अँगूठी चुरानेवाले नौकर की कहानी

एक मनुष्य के दस नौकर थे। उन नौकरों में से किसी ने उसकी अँगूठी चुरा ली। वह अँगूठी सोने की

थी। उस मनुष्य ने अपने सब नौकरों को अपने पास बुलाया और पूछा, तुम में से किसने मेरी सोने की अँगूठी चुराई है। सब नौकरों ने यही उत्तर दिया कि उन्होंने नहीं चुराई है। उस मनुष्य ने चोर पकड़ने के लिए एक युक्ति सोची। उसने १० एकनाप की छड़ियाँ मँगवाईं और प्रत्येक नौकर को एक-एक छड़ी दी और कहा कि जिसने मेरी अँगूठी चुराई होगी, उसकी छड़ी कल एक इंच बढ़ जायगी। यह कहकर उसने सब नौकरों को अपने-अपने काम पर भेज दिया। दूसरे दिन सुबह उसने सब नौकरों को बुलवाया और कहा "तुम लोग अपनी-अपनी छड़ी दिखाओ।" जिस व्यक्ति ने अँगूठी चुराई थी, उसने इस भय से कि उसकी छड़ी कहीं एक इंच बढ़ न जाय, अपनी छड़ी से एक इंच का टुकड़ा काट दिया। अतः जब उसकी छड़ी देखी गई, तो वह एक इंच छोटी पाई गई। इस युक्ति से चोर पकड़ा गया। स्वामी ने आज्ञा दी कि उस चोर नौकर के कोड़े लगाये जायँ और उससे अँगूठी ले ली जाय। अतः उस चोर नौकर के कई कोड़े लगे और उससे अँगूठी भी ले ली गई। इस घटना के पश्चात् स्वामी ने उसको नौकरी से भी निकाल दिया।

एक चिड़िया की कहानी

एक समय एक चिड़िया अपनी चोंच में गेहूँ की बाली लिए हुए उड़ रही थी। दैवात् उसकी चोंच से वह बाली गिर पड़ी और एक पेड़ के खोखले में जा पड़ी। चिड़िया एक लोहार के पास गई और उससे बोली—"लोहार, लोहार, मेरी गेहूँ की बाली पेड़ के खोखले में जा पड़ी है, बाहर नहीं निकलती, अतएव तुम चलकर पेड़ के खोखले को काटो और बाली को बाहर निकालो।" लोहार ने उत्तर दिया—"चिड़िया, मैं पेड़ के खोखले को क्यों काटूँ और बाली को क्यों बाहर निकालूँ ?"

लोहार से चिड़िया अति अप्रसन्न हुई। वह राजा के पास गई और राजा से बोली—"राजा, राजा, मेरी बाली एक पेड़ के खोखले में जा पड़ी है। लोहार खोखले को नहीं काटता और बाली खोखले से बाहर नहीं निकलती। तुम लोहार को आज्ञा दो कि वह जाकर पेड़ के खोखले को काटे और बाली खोखले से बाहर निकाले।" राजा बोला—"चिड़िया, मैं लोहार को क्यों ऐसी आज्ञा दूँ कि वह जाकर पेड़ के खोखले को काटे और बाली को खोखले से बाहर निकाले ?"

चिड़िया राजा से अत्यन्त अप्रसन्न हुई और रानी के पास गई और बोली—"रानी, रानी, मेरी बाली एक पेड़ के खोखले में जा पड़ी है। राजा लोहार को आज्ञा नहीं

देता कि वह जाकर पेड़ के खोखले को काटे और बाली को खोखले से बाहर निकाले। तुम राजा से कहो कि वह लोहार को आज्ञा दे कि वह जाकर खोखले को काटे और बाली खोखले से बाहर निकाले।" रानी बोली--"चिड़िया, मैं क्यों राजा से जाकर यह कहूँ कि वह लोहार को आज्ञा दे कि वह जाकर पेड़ के खोखले को काटे और बाली को खोखले से बाहर निकाले ?"

चिड़िया रानी से अत्यन्त अप्रसन्न हुई और चूहे के पास जाकर बोली--"चूहे, चूहे, तुम जाकर रानी के पलंग को काटो; क्योंकि रानी राजा से नहीं कहती कि वह लोहार को आज्ञा दे कि वह जाकर पेड़ के खोखले को काटे और खोखले से बाली बाहर निकाले।" चूहे ने कहा—"प्रिय बहन चिड़िया, मैं क्यों रानी का पलंग काटूँ ?"

चिड़िया चूहे से अत्यन्त अप्रसन्न हुई और बिल्ली के पास गई और बोली—"बिल्ली-बिल्ली, तुम चूहे को मारो; क्योंकि वह रानी के पलंग को नहीं काटता; क्योंकि रानी राजा से नहीं कहती कि वह लोहार को आज्ञा दे कि वह जाकर खोखले को काटे और उसमें से बाली बाहर निकाले।"

बिल्ली ने कहा—"प्यारी बहन चिड़िया, मैं भूखी हूँ। तुम मेरे लिए दूध लाओ। मैं दूध पीऊँगी और फिर मुझे बल होगा। तब मैं चूहे को मारूँगी।" चिड़िया बिल्ली के लिये दूध लाई। बिल्ली ने दूध पिया और वह सशक्त हो गई।

बिल्ली चूहे को मारने दौड़ी। चूहा रानी के पलंग काटने को दौड़ा। रानी राजा से कहने गई और राजा ने लोहार को खोखला काटने की आज्ञा दी। लोहार भी खोखला काटने दौड़ा। उस (लोहार) ने पेड़ का खोखला काटा और उसमें से बाली निकालकर चिड़िया को दी। चिड़िया बाली लेकर अपने घोंसले को गई इत्यादि-इत्यादि।

नोट:—यहाँ पर जो दो कहानियाँ दी गई हैं, उनमें बड़ा अन्तर यह है कि एक में तो शब्द-दुहराव बहुत है किन्तु एक में नहीं। अनुभव से सिद्ध है कि बालक उन कहानियों में अधिक ध्यान देते हैं, जिनमें कि एक शब्द या शब्द-समूह या वाक्य का दुहराव हो। अतः अध्यापक को प्रारम्भ में ऐसी कहानियाँ छाँटनी चाहिए, जिनमें शब्दों तथा वाक्यों की कई बार आवृत्तियाँ हों। इस प्रकार की कहानियों को छाँटने के पश्चात् अध्यापक को चाहिए कि वह एकान्त में उनको कहने का उत्तम अभ्यास करे। जब अध्यापक को यह विश्वास हो जाय कि उसे कहानी कहना भलीभाँति आ गया है और कहानी की छोटी सी छोटी बात उसे आ गई है, तो वह उसे बालकों से कह सुनावे।

कहानी वर्णन करने में निम्न-लिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए।

(क) अध्यापक को ऐसे स्थान पर खड़ा होना चाहिए, जहाँ से सब बालक उसके व्याख्यान को सुन सकें। यदि ऐसा नहीं होगा, तो कुछ बालक तो कहानी सुन पाएँगे और कुछ नहीं।

कहानी वर्णन करते समय ध्यान में रखने योग्य बातें।

(Points to be kept in view in the Narration of Stories.)

(ख) कहानी कहते समय इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि कहानी कहनेवाले अध्यापक का मुँह प्रत्येक बालक की ओर रहे। मुखाकृति, हाथ इत्यादि अंगों के संकेतों से भी कहानी के अनेक भाव स्पष्ट होते हैं।

(ग) कहानी को सरल तथा सुबोध भाषा में कहना चाहिए। यथाशक्ति सन्दिग्ध और मिश्रित वाक्यों का बहिष्कार करना चाहिए।

(घ) यदि कहानी का वर्णन नवीन शब्दों के प्रयोग के बिना न हो सकता हो, तो अध्यापक नवीन शब्दों का अवश्य प्रयोग करे। यदि कहानी के वर्णन में अध्यापक ऐसे वाक्यों का प्रयोग करता है, जिनका एक दूसरे से सम्बन्ध है, तो बालक अवश्य नये शब्दों का अर्थ स्वयम् निकाल लेंगे। हम लोगों (अध्यापकों) को भी बहुत से शब्दों का अर्थ नहीं आता है; किन्तु जब हम उन्हीं शब्दों को, जिनसे हम अनभिज्ञ होते हैं, कहीं किसी वाक्य में पढ़ते या सुनते हैं, तो उनका अर्थ हम

स्वयम् निकाल लिया करते हैं । ऐसा क्यों होता है ?

इसका कारण यह है कि नवीन शब्दों को वाक्य या वाक्यों में पढ़ते हैं, तो हम यह समझने का प्रयत्न करते हैं कि वाक्य या वाक्यों में क्या भाव दर्शाया गया है और उस वाक्य या उन वाक्यों का पारस्परिक सम्बन्ध क्या है । तत्पश्चात् हम यह अनुमान कर लिया करते हैं कि अमुक नवीन शब्दों का अर्थ यह होना चाहिए । इसी तरह जब छोटे बालक किसी नये शब्द का प्रयोग वाक्य में सुनते या देखते हैं, तो वे भी भावों के क्रम तथा पारस्परिक सम्बन्धों के कारण वाक्य की रचना से नवीन शब्द का अर्थ बहुधा निकाल लिया करते हैं ।

(च) यथार्थ में तो अध्यापक को अधिकतर इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बच्चे उन भावों को जो कहानी में आये हैं, समझ गये हैं या नहीं । यदि वे भावों को समझ लें तो नवीन शब्दों का अर्थ तो आप ही आप स्पष्ट हो जायगा, जब बच्चे उसका प्रयोग भिन्न-भिन्न वाक्य और प्रकरण में देखेंगे अथवा सुनेंगे ।

(छ) कहानी के वर्णन में विवरण न तो अत्यन्त लम्बा होना चाहिए और न बहुत छोटा ही । सर्वदा यह सिद्धान्त होना चाहिए कि विवरण उतना ही बड़ा हो कि कहानी के भाव बच्चों को समझ में आ जायँ । अधिक विवरण से कहानी में अरोचकता आ जाती है और कम

विवरण से बच्चों में ठीक भाव जागृत नहीं होने पाते।

(ज) विवरण की न्यूनाधिकता बहुत कुछ इस बात पर निर्भर होनी चाहिए कि बच्चे, जिनसे कहानी कही जा रही है, किस प्रकार के हैं। जिस बात को बच्चे नहीं जानते, उसको स्पष्ट करने के लिए अधिक विवरण की आवश्यकता पड़ेगी और जिस बात को वे समझते हैं, उसका अधिक विवरण देना निरर्थक है।

(झ) कहानी कहते समय स्वर न तो अधिक ऊँचा होना चाहिए और न इतना नीचा ही कि बच्चे यही पूछा करें कि पंडितजी, आपने क्या कहा? स्वर का उतार-चढ़ाव भावों के अनुसार होना चाहिए। जहाँ पर कहानी में वीरता का भाव है, वहाँ स्वर कुछ ऊँचा होना चाहिए और बहुत से शब्दों के ऊपर ज़ोर भी देना चाहिए। यदि ऐसा न किया जायगा, तो वीरता का शुद्ध भाव बच्चे नहीं समझ सकेंगे। एवम् दयालुता का भाव यदि बच्चों में हृदयांकित किया जा रहा हो, तो स्वर नीचा तथा मधुर होना चाहिए। कहानी को एक ही स्वर से वर्णन करने का यह परिणाम होता है कि बच्चे उसमें रुचि नहीं लगाते और थकित से जान पड़ते हैं। उचित स्वर-भेद तथा शब्द-अवधारण से भी बच्चे पाठ में ध्यान देते हैं।

(ञ) कहानी न तो इतनी लम्बी हो कि बच्चे उसे

सुनते-सुनते उकता जायँ और न इतनी छोटी हो कि उनकी कल्पना-शक्ति जागृत ही न होने पाये और समाप्त हो जाय। यदि कहानी बहुत लम्बी हो, तो चतुराई से उसके ऐसे भाग कर लो कि भाव-शृंखला (Chain of ideas) भी न टूटे और बच्चों की कल्पना-शक्ति भी भली प्रकार जागृत हो उठे।

(ट) जब कोई छोटी कहानी या लम्बी कहानी का कोई भाग समाप्त हो जाय, तो बच्चों से उस कहानी या भाग के ऊपर प्रश्न पूछे और ज्ञात करे कि वे कहानी को समझ गये हैं या नहीं। यदि न समझे हों, तो ऊपर लिखे सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए कहानी को दुबारा कहे। कहानी कहते समय बीच में कभी प्रश्न न पूछे। ऐसा करने से भावों की शृंखला टूट जाती है और बच्चों को बहुत बुरा लगता है।

(ठ) अध्यापक को कहानी कहते समय स्वांगी याने नाटकी भी होना चाहिए। बिना नाटकी हुए कहानी के बहुत से भाव अधूरे रह जाते हैं और स्पष्ट नहीं हो पाते। यथा:—यदि क्रोध का भाव बच्चों को देना है तो आँख, नाक, मुख, इत्यादि की आकृति इस प्रकार होनी चाहिए कि उनसे क्रोध का भाव झलकता हो। एवम् रुदन का भाव देने में मुखाकृति से रुदन झलकना चाहिए। घृणा का भाव देने में मुखाकृति ऐसी होनी चाहिए कि उसकी ओर

ध्यान देने से घृणा का भाव प्रकट होता हो। हाथ-पैरों के संकेतों से और उनको इधर-उधर पछाड़ने तथा पटकने से भावों में जो स्पष्टता आती है वह केवल मुख द्वारा भाषण करने से कदापि नहीं आ सकती। किन्तु इससे शिक्षक को यह न समझ लेना चाहिए कि उसे हर समय अनावश्यक हाथ-पैर फेंकते ही रहना चाहिए और अपनी मुखाकृति में परिवर्त्तन लाते ही रहना चाहिए। उसका नाटकी होना या न होना भावों के ऊपर आश्रित है।

(ड) कहानी कहते समय सम्पूर्ण बालकों को सर्वदा दृष्टि में रखना चाहिए।

(ढ) कहानी का वर्णन जब समाप्त हो जाय, तब उस पर बालकों से प्रश्न पूछने चाहिएँ। तत्पश्चात् प्रथम दो या तीन बुद्धिमान् बालकों को सम्पूर्ण कहानी का वर्णन करने की आज्ञा देनी चाहिए और फिर मन्दमति बालकों को कहानी वर्णन करने का अवसर देना चाहिए।

(ण) अन्त में बच्चे कहानी को अपनी कापी में लिखें। तदुपरान्त अध्यापक उनकी लिखी हुई कहानी का संशोधन करे।

कभी-कभी अध्यापक बच्चों से उन कहानियों के बारे में प्रश्न पूछे जो कि उन्होंने भूगोल, इतिहास, तथा हिन्दी रीडरों में पढ़ी हों। यथा पिगमियों की कहानी, रानी पद्मिनी की कहानी इत्यादि इत्यादि।

पिगमियों की कहानी नमूने के ढंग पर नीचे दी गई है

भौगोलिक कहानियाँ।

नोट—यह निश्चित है कि पिगमियों की कहानी बच्चों ने भूगोल के घंटे में पढ़ ली है। अत: अध्यापक प्रथम निम्न-लिखित प्रश्न बच्चों से पूछे और उनके (बच्चों के) उत्तरों को इस प्रकार परिमार्जित तथा वर्द्धित करे कि यदि बच्चे पिगमियों की कहानी भूल भी गये हों, तो उसका ज्ञान या स्मरण उन्हें फिर से हो जाय :—

प्रथम चरण

प्रश्न:—पिगमी लोग कहाँ रहते हैं ? (अफ्रिका महाद्वीप के मध्यभाग के जंगलों में रहते हैं।) (२) उनको पिगमी क्यों कहते हैं ? (क्योंकि वे लोग नाटे होते हैं।) (३) वे अधिक से अधिक कितने फिट ऊँचे होते हैं ? (४ फ़िट।) उनका रंग कैसा होता है ? (काला) (५) वे जंगलों में रहते हैं इस कारण उन्हें कैसे मनुष्य कहोगे ? (जंगली) (६) जंगलों में वे खाते क्या हैं ? (जंगली फल-फूल, बड़े जानवर, छोटे-छोटे जीव-जन्तु, इत्यादि।) (७) उनके घर कैसे बने होते हैं ? (८) वे क्या पहनते हैं ? (केवल लंगोटी।) (९) वे जानवरों को कैसे मारते हैं ? (बाणों से)। (१०) उनके स्वभाव के बारे में तुम क्या जानते हो ? इत्यादि।

(या)

नोट—बालकों के सामने कभी-कभी पिगमियों के वे चित्र लटकाये जा सकते हैं, जो उन्होंने भूगोल के घंटे में देखे हों। अध्यापक उन चित्रों के ऊपर वार्त्तालाप कर सकते हैं।

(द्वितीय चरण)

फिर अध्यापक एक या दो बुद्धिमान् बालकों से पिगमियों की सम्पूर्ण बातों का वर्णन करावे। तत्पश्चात् वह मन्दमति बालकों को कहानी कहने का अवसर दे। सर्वदा बुद्धिमान् बालकों की अपेक्षा मन्दमति बालकों के ऊपर अधिक ध्यान रखना चाहिए और कहानी वर्णन करने का उन्हें अधिक समय भी देना चाहिए।

(तृतीय चरण)

अब अध्यापक श्यामपट्ट पर कुछ आवश्यक संकेत लिख दे; यथा—

(१) पिगमियों के रहने का स्थान।
(२) पिगमियों का डील-डौल, रंग-रूप।
(३) उनका खाना-पीना।
(४) उनके घर।
(५) उनके वस्त्र।
(६) उनका रहन-सहन।
(७) उनका स्वभाव।

(चतुर्थ चरण)

तदुपरान्त अध्यापक बालकों को आज्ञा दे कि वे श्याम-पट्ट पर दिये हुए संकेतों के अनुसार पिगमियों का वर्णन लिखें ।

नोट—जिस समय बालकगण पिगमियों का वर्णन अपनी कापियों में लिख रहे हों, उस समय अध्यापक धीरे-धीरे कमरे में इधर-उधर घूमता रहे और जो कुछ बालकों ने लिखा हो उसका संशोधन करता रहे । अवशिष्ट काम का अध्यापक अपने अवकाश के घंटे में देख सकता है । बालकों की सामान्य अशुद्धियों की वह एक सूची बना ले और दूसरे दिन निबन्ध-शिक्षा के घंटे के आरम्भ में उन अशुद्धियों का एक-एक करके बालकों को समझा दे, ताकि वे भविष्य में फिर उन्हीं अशुद्धियों को दुबारा न करें ।

रानी पद्मिनी की कहानी नमूने के ढंगपर ।

(प्रथम चरण)

नोट—पद्मनी का चित्र बालकों के सामने टाँग दिया जाय ।

ऐतिहासिक कहानियाँ
(Historical stories)

प्रश्न (पद्मिनी के चित्र की ओर संकेत करते हुए)—

(१) यह किस का चित्र है ? (पद्मिनी रानी का)

(२) रानी पद्मिनी किसकी पत्नी थी ?

(३) इस चित्र में रानी पद्मिनी क्या कर रही है ?

(४) वह दर्पण के निकट क्यों खड़ी है ?

(५) अलाउद्दीन क्या कर रहा है ?

(६) भीमसेन राजा क्या कर रहे हैं ?

(७) पद्मिनी रानी का दर्पण में प्रतिबिम्ब देखने के पश्चात् अलाउद्दीन ने राजा भीमसेन से क्या कहा ? इत्यादि इत्यादि (प्रकाशन शक्ति का प्रयोग किया जा रहा है ।)

(द्वितीय चरण)

एक या दो चतुर बालक कक्षा के सामने खड़े होकर सम्पूर्ण कहानी का वर्णन करें । फिर कई मन्दमति बालक पूरी कहानो वर्णन करें ।

(तृतीय चरण)

कुछ संकेत श्यामपट्ट पर लिख दिये जायँ ।

(चतुर्थ चरण)

बालकों को कहानी लिखने की आज्ञा दे दी जाय ।

नोट—कापियों का संशोधन तथा सामान्य अशुद्धियों का समझाना ।

इसी रीति से हिन्दी रीडर की कहानियाँ लिखवाई जा सकती हैं ।

कहानी-रचना की दूसरी अवस्था ।

नोट—कहानी-रचना की दूसरी अवस्था विशेषतः ७ वीं और ८ वीं कक्षाओं में होनी चाहिए ।

ध्यान में रखने योग्य बातें ।

इस अवस्था में बालकों को नवीन तथा

अश्रुत कहानियों और घटनाओं को सुनकर उनका ध्यान या चित्रण बनाना पड़ता है। एवम् उनको अदृष्ट चित्रों के भाव समझने पड़ते हैं। अतः यह अवस्था प्रथम अवस्था से कुछ कठिन है। इस अवस्था में बालकों को निर्माण-कल्पना-शक्ति से अधिक काम लेना पड़ता है। अतएव दूसरी अवस्था में नवीन कहानी को अध्यापक पढ़कर या कहकर सुना दे और बालकों से प्रश्न पूछने के स्थान में उनसे सम्पूर्ण कहानी कहलवाए। तत्पश्चात् शिक्षक उनसे ही स्वयम् संकेत लिखवाए और अब संकेतों को श्यामपट्ट पर लिखना बन्द कर दे। तदुपरान्त वह बालकों को आज्ञा दे कि वे कहानी को अपनी कापियों में लिख डालें। यदि बालक इस कार्य को न कर सकें तो अध्यापक कहानी को दो या तीन बार पढ़े या सुनावे। इस अवस्था में भाषा की शुद्धता, सुन्दरता तथा स्पष्टता के प्रति भी अध्यापक को ध्यान देना चाहिए। उसे यह भी देखना चाहिए कि बालकगण भावों को क्रम-पूर्वक लिखें और यों ही मनमाने अन्धाधुन्ध न लिख डालें।

दूसरी अवस्था के निमित्त एक या दो कहानियों के नमूने मय उनके पढ़ाने के ढंग के नीचे दर्शाये गये हैं:—

नोटः—अब कहानियाँ पहली अवस्था की अपेक्षा कुछ क्लिष्ट होनी चाहिएँ।

दुर्दांत सिंह की कहानी (हितोपदेश से उद्धृत)

भारतवर्ष के दक्षिण में मन्दराचल नाम का एक पर्वत था। उस पर्वत पर दुर्दांत नाम का एक सिंह रहता था। वह सदा पशुओं का वध करता रहता था। कोई भी पशु उसके भय के मारे जंगल में स्वतन्त्रता पूर्वक घूम नहीं सकता था। अन्त में सब पशु एकत्रित हुए और उन्होंने आपस में यह निश्चय किया कि प्रत्येक पशु स्वयम् अपनी बारी पर सिंह के पास उसके भोजन के निमित्त जाया करेगा। इस विषय की सूचना उन्होंने सिंह के पास लिख-कर शृगाल के हाथ भेज दी। जब प्रार्थना-पत्र सिंह के पास पहुँचा तो उसने उसे पढ़ा। उस प्रार्थनापत्र में लिखा था, "हे मृगेन्द्र, हम सम्पूर्ण पशु आपके दासानुदास हैं और आपसे हाथ जोड़ तथा अत्यन्त नम्रतापूर्वक प्रार्थना करते हैं कि आज से आप अपनी गुफा से बाहर भोजन के निमित्त न निकला करें। हम सब पशु स्वतः अपनी-अपनी बारी पर आपके पास आपके भोजनार्थ उप-स्थित हुआ करेंगे। इससे हम आपके सेवक भी जंगल में इधर-उधर भोजन की खोज में निडर हो भ्रमण किया करेंगे और आपको भी भोजन पाने में कोई कष्ट नहीं होगा।"

सिंह ने जानवरों की यह विनती स्वीकृत कर ली। अब प्रत्येक पशु बारी-बारी से सिंह के पास जाता और

सिंह उसे मारकर खा जाता। एक दिन बूढ़े खरगोश की बारी आई। वह सोचने लगा, "मेरी मृत्यु तो अवश्य होनी है। अतः यदि मैं देर करके सिंह के पास जाऊँ तो कोई चिन्ता नहीं। और न होगा तो सिंह भूख से अधिक पीड़ित तो होगा ही।"

यह सोचकर वह धीरे-धीरे चलने लगा और बड़ी देर में सिंह के पास पहुँचा। जब वह सिंह के पास पहुँचा, तो भूख के कारण क्रुद्ध होकर सिंह उससे बोला, "तू देर से क्यों आया है?" खरगोश बोला, "पृथ्वीनाथ, मैं अपराधी नहीं हूँ। मैं तो आज प्रातःकाल मुँह अंधेरे उठकर सीधा आपके पास आ रहा था। रास्ते में आते हुए दूसरे सिंह ने मुझे पकड़ लिया। वह मुझे मारकर भक्षण करना चाहता था, किन्तु मैंने उससे प्रार्थना की कि मैं थोड़ी ही देर में अवश्य लौट कर आऊँगा। दुर्दांत का यह सुनना था कि वह जल भुन गया और बोला, "शीघ्र चल और उस दुष्ट को मुझे दिखा।" यह सुनकर खरगोश आगे-आगे चला और सिंह उसके पीछे-पीछे। खरगोश दुर्दांत को एक गहरे कूप के निकट ले गया और बोला, "महाराज, वह दुष्ट इस कूप में निवास करता है। आप यदि कूप के अन्दर देखने का कष्ट उठावें तो वह आपको दिखाई पड़ जायगा।" यह सुनकर सिंह ने कुँए के अन्दर देखा। कुँए में पानी बहुत नीचाई पर था। जब सिंह ने

कुँए के अन्दर दृष्टि डाली, तो उसने अपना प्रतिबिम्ब (Reflection) पानी में देखा। अपने प्रतिबिम्ब को देख कर दुर्दांत ने समझा कि अवश्य उस कूप में कोई अन्य सिंह है। वह क्रोध से चकनाचूर हो गया। इस आशा से कि वह उसे मार डालेगा, वह तुरन्त कुएँ में कूद पड़ा और पानी में डूबकर मर गया।

राजा दिलीप की कहानी (रघुवंश से)

कई हज़ार वर्ष हुए जब वैवस्वत नाम का एक राजा भारतवर्ष में राज करता था। जिनका नाम वैवस्वत था। उनके वंश में दिलीप नाम का एक राजा हो गया है। वह बड़ा प्रतापी, प्रतिभाशाली, धर्मात्मा और सर्व सद्गुण-सम्पन्न था। उसने अपनी बुद्धि तथा पराक्रम से सम्पूर्ण सृष्टि का आधिपत्य प्राप्त किया था। दिलीप इतना तेजस्वी, प्रतापी और वली था कि दुष्ट मनुष्य सदा उससे डरते थे और बुरे कामों को कर नहीं पाते थे। सज्जन लोग उसे प्राणों से भी अधिक प्यार करते थे; क्योंकि वे भली भाँति समझते थे कि राजा दिलीप गुणों की खान और दया का निधान है। सर्व प्रकार के ऐश्वर्य तथा भोगों के होने पर भी राजा दिलीप सदैव एक चिन्ता से पीड़ित रहता था। भाग्यवश उसके कोई पुत्र न था। यह चिन्ता-ज्वाला उसके शरीर में दिन-रात लगी रहती थी। अन्त में राजा दिलीप

ने अपना राज-पाट मन्त्रियों के हाथ सौंप दिया और अपनी पतिव्रता रानी सुदक्षिणा को संग ले अपने गुरु वशिष्ठजी के पास गया। जब राजा-रानी गुरु वशिष्ठजी के पास पहुँचे, तो उन्होंने उन्हें अपना दुःख कह सुनाया। गुरु वशिष्ठ ने कहा, "हे राजन्, तुम एक बार इन्द्रलोक में इन्द्र की सहायता करने गये थे और जब तुम वहाँ से लौट कर अपने घर आरहे थे, तो मार्ग में आपको कामधेनु मिली थी। आप किसी कार्य-वशात् शीघ्रता से घर आरहे थे, इस कारण आपने कामधेनु की ओर कुछ ध्यान नहीं दिया और न उसको नमस्कार किया। कामधेनु आपसे क्रुद्ध हुई और उसने आपको शाप दिया कि जब तक तुम मेरी सन्तति की सेवा तथा प्रतिष्ठा न करोगे, तब तक तुम्हारे कोई पुत्र न होगा। मार्ग में बड़ा कोलाहल होरहा था। इससे आपने उसके शाप को नहीं सुना। कामधेनु के इस शाप के कारण तुम्हारी कोई सन्तान नहीं है। कामधेनु तो इस समय पाताल लोक में एक यज्ञ में सहायता प्रदान करने गई है। अतः तुम मेरे पास जो गाय है, उसकी सेवा-सुश्रूषा करो, क्योंकि वह कामधेनु की पुत्री है। यदि वह तुमसे प्रसन्न हो जायगी, तो तुम्हारी अभिलाषा को वह अवश्य पूर्ण करेगी। राजा दिलीप और रानी सुदक्षिणा अत्यन्त भक्ति-पूर्वक उस गाय की सेवा में तत्पर होगये। वे उसकी इतनी सेवा करते

थे कि जब वह खड़ी रहती थी, तो वे भी खड़े रहते थे, जब वह चरती थी तो वे (राजा-रानी) सुन्दर-सुन्दर हरी घास उखाड़ कर और काटकर उसे खाने को देते थे; जब गाय भूमि पर बैठती थी, तभी वे भी विश्राम करते थे ऐसी अटल भक्ति से उस गाय की सेवा करते-करते राजा रानी को २१ दिवस बीत गये। २२ वें दिन गाय ने उनकी भक्ति-परीक्षा करनी चाही। अतः वह हिमालय पर्वत की एक गुफा की ओर चल दी। राजा दिलीप भी उसके पीछे-पीछे गये। वह कामधेनु गुफा में जा बैठी। ज्यों ही गाय ने गुफा के अन्दर प्रवेश किया, त्योंही वहाँ से चिल्लाने का शब्द आया। राजा तुरन्त ही गुफा के अन्दर गया, तो देखते क्या हैं कि गाय के निकट ही एक सिंह खड़ा है और वह उसे मारने ही वाला है। यह दशा देख राजा क्रोध से भर गया और काँपने लगा। उसने सिंह को मारने के निमित्त बाण निकाला; किन्तु राजा का हाथ बाणों के परों से चिपककर रह गया। इतने में उस सिंह ने मनुष्य की वाणी में कहा, "हे राजा, तुम मुझे मार नहीं सकते, क्योंकि मेरे सामने तो तुम बाण भी न निकाल सके। मैं इस गाय को छोड़ूँगा नहीं: क्योंकि मैं बहुत भूखा हूँ। तुम अब लौटकर मुनिजी के आश्रम को जाओ।" यह सुनकर राजा सिंह से बोला, "मैं कदापि गाय को छोड़ कर आश्रम को नहीं लौट सकता। यदि तुमको भूख लगी हो तो

तुम इस गाय को छोड़ दो और मुझे मारकर खा जाओ।" सिंह ने राजा को बहुत कुछ समझाया-बुझाया और कहा कि हे राजन्, इस गाय के मरने से उतनी हानि नहीं है, जितनी तुम्हारे मरने से। यदि तुम मर जावोगे तो तुम्हारी सम्पूर्ण प्रजा दुःख पावेगी। यदि यह गाय मर जायगी, तो तुम इसके स्थान में अनेकों ऐसी गाय गुरु वशिष्ठ को दे सकते हो। किन्तु इतने समझाने बुझाने पर भी राजा बोला कि मैं अपने प्राण दे दूँगा, वरन् इसका वध अपनी आखों के सामने होते कदापि नहीं देखूँगा। यह सुनकर सिंह समझ गया कि राजा दिलीप किसी प्रकार न मानेगा। तब सिंह ने कहा "हे राजा, यदि ऐसा ही तुम्हारा दृढ़ निश्चय है, तो आवो और मेरे सम्मुख भूमि पर बैठ जाओ तब मैं तुमको चीर-फाड़कर खा जाऊँगा।" यह सुनकर राजा अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक सिंह के सामने धरती पर बैठ गया। वह कुछ देर तक बैठा ही रहा किन्तु सिंह ने उसे मारा नहीं। राजा के ऊपर पुष्प-वृष्टि होने लगी। यह देखकर राजा को आश्चर्य हुआ और उसने इधर-उधर देखा तो सिंह उस गुफा से गायब होगया था केवल वह गाय वहाँ पूर्ववत् खड़ी थी। अब गाय को विश्वास होगया कि राजा की भक्ति उसके प्रति निस्सन्देह सच्ची है। यह जानकर गाय प्रसन्न हुई और राजा को वरदान दिया कि तुम्हारी धर्मपत्नी सुदक्षिणा के पेट से

एक विलक्षण पुत्र होगा। कुछ दिवस पश्चात् निःसन्देह राजा को पुत्र हुआ इत्यादि।

प्रथम अध्यापक ऊपर लिखी कहानियों में से किसी एक को कहकर बच्चों को सुनावे। कहानी सुनाते समय वे सिद्धांत ध्यान में रक्खें, जो पीछे वर्णन किए गए हैं।

फिर अध्यापक बालकों से सम्पूर्ण कहानी कहलावें।

तत्पश्चात् बालकों से कह दिया जाय कि वे स्वयम् कहानी के संकेत लिख लें।

जब बालक संकेत लिख चुकें, तब वे उनके आधार पर पूर्ण कहानी अपनी कापियों में लिखें।

कहानी-रचना की तृतीय अवस्था

ध्यान में रखने योग्य बातें

कहानी-रचना की तृतीय अवस्था का कुछ भाग ९वीं और १०वीं कक्षा में होना चाहिए और कुछ १०वीं कक्षा से आगेवाली श्रेणियों में होना चाहिए। कहानी-रचना की तृतीय अवस्था उत्पादन कल्पना-शक्ति पर आश्रित है। इस शक्ति का उचित प्रयोग शिक्षकों को अवश्य कराना चाहिए; क्योंकि विज्ञान की वृद्धि, नवीन यंत्रों का निर्माण, काव्यादि की रचना, संगीत तथा चित्रकारी आदि कला-कौशल की निपुणता इसी उत्पादन शक्ति पर अवलम्बित है।

इस शक्ति के उचित साधन के लिये अध्यापक बालकों

को कुछ संकेत दे-दे और बालक स्वयं उनकी सहायता से नवीन कहानियाँ बनाएँ और लिखें। यथाः—

१. संकेत

(१) एक कुत्ते का मुँह में हड्डी लेकर दौड़ना।

(२) उसका एक पुल के पास आना।

(३) नदी में कुत्ते का अपनी परछाईं देखना।

(४) कुत्ते का यह समझना कि दूसरा कुत्ता हड्डी लिए है।

(५) उसका दूसरे कुत्ते पर भूकना।

(६) हड्डी का नदी में गिर जाना।

(७) कुत्ते का पछताना।

२. संकेत

(१) दो बुद्धिमती बकरियाँ।

(२) उनका एक नाले को पार करना।

(३) नाले के ऊपर एक तंग पुल का होना।

(४) दोनों बकरियों की पुल पर भेंट।

(५) पुल के तंग होने के कारण उनका लौटना असम्भव।

(६) उनमें से एक का पुल पर लेट जाना और दूसरी का उसके ऊपर से होकर निकल जाना।

(७) उसी पुल पर दो मूर्ख बकरियों का मिलना।

(८) उनमें घमंड के मारे परस्पर लड़ाई।

(९) दोनों का नदी में गिरना और डूबकर मर जाना ।

(१०) कहानी से शिक्षा । इत्यादि-इत्यादि संकेत ।

जब लड़के केवल संकेतों के द्वारा अपनी ओर से कहानी-रचना जान जायँ, तब अध्यापक उन्हें कोई शीर्षक दे-दे और उनसे उस (शीर्षक) के आधार पर मन-गढ़ंत कहानियाँ लिखवाए । यथाः—

(१) जब सुनले दो तो कहे एक ।

(२) समय चूकि पुनि का पछताने।

(३) सावन के अन्धे को हरा ही हरा सूझता है ।

(४) बन्दर क्या जाने अदरक का स्वाद ।

(५) लालच बुरी बलाय । इत्यादि-इत्यादि ।

ऐसी युक्तियों द्वारा कहानी-रचना सिखाने से बालकों को अपनी कल्पनाशक्ति पर ज़ोर देना पड़ता है । इस कारण उसका उचित विकास होने लगता है ।

चित्रों का पढ़ना । (Picture Reading)

छोटे बच्चे चित्रों से बड़ा प्रेम करते हैं। वे बार-बार अपने माँ-बाप तथा अध्यापकों से यही कहा करते हैं कि हमें कोई चित्र दिखाइए। यदि अध्यापक उन्हें बिना रंग की तस्वीर दिखाता है, तो कभी-कभी वे यह कह बैठते हैं कि हमें कोई रंगीन चित्र दिखाइए। इससे स्पष्ट है कि रंगीन चित्र उन्हें अधिक प्रिय लगते हैं। जब कोई नवीन पुस्तक बच्चों के पढ़ने के लिए ली जाती है,

तो सबसे प्रथम वे यह प्रश्न पूछते हैं कि इस पुस्तक में तस्वीरें भी हैं? यदि उस पुस्तक में कोई रंगीन तस्वीर हुई, तो बच्चे मारे प्रसन्नता के उछलने-कूदने लग जाते हैं। छोटे बच्चों के पढ़ाने में तस्वीरों का भली भाँति प्रयोग करना चाहिए।

तस्वीरों के प्रयोग से लाभ।

(१) तस्वीरों के प्रयोग से पहला लाभ तो यह है कि बच्चों को चाक्षुष प्रत्यक्ष तथा उपलम्भन होते हैं। बतलाया जा चुका है कि जिस वस्तु के जितने अधिक प्रत्यक्ष और उपलम्भन बच्चों को होंगे, उस वस्तु का उन्हें उतना ही अधिक स्पष्ट और उत्तम ज्ञान होगा।

(२) दूसरा लाभः—जब तक बच्चों को ऐसे पदार्थों या वस्तुओं पर पाठ दिये जाते हैं, जो सरलता से प्राप्त हो सकती हैं या जिनके पास बच्चे स्वयम् जा सकते हैं अथवा जब तक बच्चों को कक्षा के कमरे की वस्तुओं के बारे में पढ़ाया जाता है, तब तक तो कदाचित् चित्रों के प्रयोग को दूर भी कर सकते हैं; किन्तु कल्पना करो कि अध्यापक को किसी ऐसी वस्तु या व्यक्ति पर पाठ देना है, जो न तो कमरे में उपस्थित है और न उसके निकट बच्चे स्वयम् ही जा सकते हैं और न वह मोल ही मिल सकता है, तो ऐसी दशा में अध्यापक को चित्रों की शरण अवश्य लेनी पड़ती है। तात्पर्य कहने का यह है कि दूर देशों की

तथा कमरे के बाहरवाली वस्तुओं पर अध्यापक चित्रों द्वारा भली प्रकार व सुगमता से वार्तालाप कर सकता है। यथाः—(क) कोयले की खान के ऊपर अध्यापक चित्रों द्वारा भली प्रकार बच्चों से वार्तालाप करवा सकता है। (ख) पिरामिडों के विषय में अध्यापक चित्रों द्वारा वार्तालाप करवा सकता है। (ग) एवम् ताजमहल के विषय या चित्रों की सहायता से वार्तालाप हो सकता है। ऐसे ही जापानी बच्चे के ऊपर वार्तालाप हो सकता है, यदि उसके चित्र हमारे पास हों। इत्यादि-इत्यादि।

(३) तीसरा लाभः—चित्रों के प्रयोग से तीसरा लाभ यह है कि बहुत से शब्दों तथा कामों का शुद्ध ज्ञान अध्यापक बच्चों को तस्वीर की सहायता से सम्यक् रीति से करा सकता है। उदाहरणार्थ इन बातों को लीजिए:—

(क) अध्यापक को बच्चों को तोते का ज्ञान कराना है। वह अनेक प्रकार के तोतों के चित्र बच्चों को दिखा सकता है और उनके ऊपर वार्तालाप कर बच्चों के मन से यह भाव दूर कर सकता है कि तोते केवल हरे ही रंग के होते हैं और एक से डील-डौल के ही होते हैं। विभिन्न प्रकार के तोतों के चित्रों से यह ज्ञान बच्चों में हृदयस्थ किया जा सकता है कि अफ्रिका का तोता, हिमालय पर्वत का तोता, स्पेन का तोता, पश्चिमी द्वीप समूह का तोता, एक दूसरे से रंग, रूप और आकार में बहुत कम समानता रखते हैं।

(ख) यदि अध्यापक चाहे तो वह बच्चों के मन से कई एक अशुद्ध भाव दूर कर सकता है। जूता शब्द यदि संयुक्त प्रान्त के बच्चे को पढ़ाया जा रहा हो तो वह समझ बैठेगा कि जूता केवल उसी प्रकार का होता है जैसा कि उसके आस-पास के लोग पहनते हैं। इसी तरह पंजाब का बच्चा समझ सकता है कि जूते का आकार केवल वैसा ही होता है, जैसा कि पंजाबी जूते का होता है। नैपाल का बच्चा जूते का वही आकार समझ सकता है, जिस आकार का उसके देश में पहना जाता है, किन्तु जूते का शुद्ध ज्ञान अध्यापक बच्चों को तभी करा सकता है, जब वह चित्रों का प्रयोग करेगा।

(४) चौथा लाभ चित्रों के प्रयोग से यह होता है कि बच्चों की निरीक्षण-शक्ति का विकास होता है, यथा— यदि अध्यापक हाथी के चित्र के विषय में वार्तालाप कर रहा हो, तो वह बच्चों से हाथी के अंगों तथा प्रत्यंगों का निरीक्षण करवा सकता है। बच्चे बहुत सी वस्तुएँ देख तो लेते हैं, परन्तु तब भी वे उनको समस्त रूप में ही देखा करते हैं, जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है। कल्पना करो कि बच्चे ताजमहल देख आये हैं। अध्यापक ताजमहल का चित्र दिखा कर उसका निरीक्षण उचित प्रश्नों द्वारा करवा सकता है।

(५) पाँचवाँ सबसे बड़ा लाभ चित्रों के प्रयोग से यह

होता है कि वे बच्चों की कल्पना-शक्ति को सम्यक् प्रकार से भड़काते हैं। कुछ चित्र उदाहरणार्थ नीचे दिये गये हैं:—

चित्र नं० १ को लीजिए। अध्यापक जब यह चित्र बच्चों

चित्र नं० ११
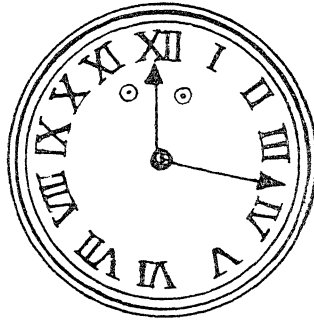
को दिखाता है तो वास्तव में वे क्या देखते हैं? वे केवल कुछ मोटी और कुछ पतली लकीरों को देखते हैं, किन्तु वे कल्पना करते हैं कि वह घड़ी है। उसमें दो सुइयाँ हैं जो कि धातु की बनी हैं और घूम रही हैं। घड़ी के मुख पर एक गोल काँच है जिससे घड़ी मैली नहीं हो पाती। वे घड़ी की खट-खट सुन रहे हैं। वे कल्पना कर रहे हैं कि दो बिन्दु जो छोटी सुई के दोनों ओर हैं वे घड़ी में चाबी देने के लिए हैं। इत्यादि-इत्यादि। केवल कुछ मोटी और कुछ पतली लकीरों के देखने से बच्चों की कल्पना-शक्ति कितनी अधिक जागृति हो जाती है!

(२) दूसरे चित्र को लीजिए:—

चित्र नं० १२
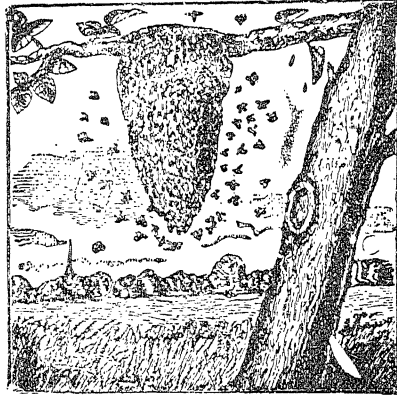
दूसरे चित्र में बच्चा वास्तव में क्या देखता है ? (एक गोल-सी वस्तु पेड़ की शाख में लटक रही है। उस वस्तु पर उड़-उड़कर कई छोटे-छोटे जीव आ रहे हैं।) किन्तु ऊपर का चित्र बच्चों की कल्पना-शक्ति को इतना उकसाता है कि वे यह ध्यान करने लग जाते हैं कि चित्र में मधुमक्खियों का एक छत्ता है। वे मधुमक्खियाँ भिन-भिन करती हुईं अपने छत्ते पर बैठ रही हैं। वे उस छत्ते में मधु इकट्ठा कर रही हैं। छत्ते के अन्दर छोटी-छोटी कोठरियाँ हैं। उन कोठरियों में मधुमक्खियों के अंडे भी हैं। बच्चे यह भी ध्यान कर रहे हैं कि मधु मीठा है। वे यह भी जान रहे हैं कि ये मधुमक्खियाँ किसी मनुष्य ने पाल रक्खी

हैं। इत्यादि-इत्यादि। सोचिए, एक साधारण चित्र ने बच्चों की कल्पना-शक्ति को कितना अधिक भड़काया है।

(३) तीसरे चित्र को लीजिए:—

चित्र नं० १३

यदि अध्यापक इस चित्र को बच्चों को दिखावे तो वे उन बातों का ध्यान अपने मन में लाते हैं, जो बात यथार्थ में चित्र में नहीं दी गई हैं; यथा:—फुटबौल का रबड़ और चमड़े का बना होना; फुटबौल के अन्दर हवा का होना; विपक्ष पार्टी की जीत का होना; दोनों पार्टियों का अपनी शक्तिभर प्रयत्न; फुटबौल का शब्द; इत्यादि-इत्यादि बातों का ध्यान। यह सब कल्पना-शक्ति का कौतुक है। यदि वह न भड़कती होती तो बच्चे इन बातों को कैसे ध्यान में ला सकते?

पीछे दिये हुए उदाहरणों से यह स्पष्ट हो गया होगा कि चित्र बच्चों की कल्पना-शक्ति भड़काने में बड़ी सहायता करते हैं। अब यह प्रश्न उठता है कि किस प्रकार के चित्र का किस कक्षा में किस रीति से निबन्ध-शिक्षा प्रदान करने में प्रयोग करना चाहिए ?

बच्चे चित्रों में न दी हुई बातों का ध्यान भी कर लेते हैं। क्यों ? क्योंकि उन्होंने चित्र में दी हुई वस्तुओं को छुआ है ; उठाया है ; तोड़ा-फोड़ा है ; सारांश यह कि उन्हें चित्रों में दी हुई वस्तुओं के अनेक प्रत्यक्ष तथा उपलम्भन हुए हैं और उन्होंने चित्र-लिखित वस्तुओं का सम्यक् अवलोकन किया है। जिसके कारण उनके मन में उन वस्तुओं के अनेक भाव उपस्थित हैं। स्मृति के कारण वे प्रत्यक्ष तथा उपलम्भन और भाव चित्र को देखने ही से जाग उठते हैं। इस हेतु बच्चों को पहले ऐसे निबन्ध-पाठ सिखाने तथा देने चाहिएँ कि उनको अपनी इन्द्रियों को व्यवहार में लाने का अच्छा अवसर मिले। यही कारण है कि पहले-पहल पाठशाला में प्रविष्ट हुए बच्चों के निमित्त निकटवर्त्ती स्थूल पदार्थों के ऊपर वार्त्तालाप होना चाहिए। चित्र देखने से वे भाव, जो उसमें नहीं दिखाये गये हैं, तभी जाग्रत् हो सकते हैं जब कि बच्चों ने चित्र में दी हुई वस्तुओं का सम्यक् अवलोकन किया हो। इन दो सिद्धान्तों के आधार पर

यह निश्चय किया जा सकता है कि ८-९ वर्षवाले बालकों के लिए चित्रों का प्रयोग अधिक हितकर है; क्योंकि छः वर्ष से कम का बच्चा तो पाठशाला में भर्ती ही नहीं हो सकता। मान लो कि एक बच्चा ६ वर्ष की अवस्था में ही पाठशाला में भर्ती हो जाता है और प्रति वर्ष वार्षिक परीक्षा में उत्तीर्ण होता चला जाता है तो ८ या ९ वर्ष की अवस्था में वह हाई स्कूल की पाँचवीं और छठी कक्षा में होगा और वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल की ३-४ कक्षा में होगा। अतः चित्रों का उचित प्रयोग ८ या ९ वर्ष की अवस्थावाले बच्चों के निमित्त ठीक और लाभप्रद है। शिक्षा का प्रकृति से घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः ८ या ९ वर्षवाले बच्चों के लिए निबन्ध पढ़ाने में चित्रों के प्रयोग की और भी अधिक पुष्टि होती है; क्योंकि उस अवस्था में कल्पना-शक्ति भी अपने पूर्ण ज़ोर पर रहती है। ६-७ वर्ष के बच्चों में तो बहुत सी वस्तुओं के स्पष्ट प्रत्यक्ष और उपलम्भन भी नहीं होते। अतः उनके निमित्त तो विशेषतः ऐसे पाठों की आवश्यकता है जिनके पढ़ने से उन्हें स्पष्ट प्रत्यक्ष तथा उपलम्भन हों, क्योंकि उनकी अवलोकन-शक्ति में भी बहुत कुछ न्यूनता रहती है। कल्पना-शक्ति प्रत्यक्ष और उपलम्भनों के अतिरिक्त जैसा कि पीछे दिये हुए उदाहरणों से विदित है अवलोकन पर अधिक आश्रित है। इन सब कारणों से चित्रों का पढ़ना ८-९ वर्ष के

बच्चों के लिये विशेष हितकर ज्ञात होता है। अर्थात् ५ वीं व ६ ठी कक्षाओं में चित्रों का पढ़ना सुचारु रूप से होना चाहिए। किन्तु आगे की श्रेणियों में चित्रों पर शिक्षा का नितान्त अवलम्बित होना अनावश्यक तथा अनिष्टकर है; क्योंकि स्थूल पदार्थों तथा चित्रों की आवश्यकता तथा प्रयोग उसी सीमा तक होना चाहिए जब तक बच्चों को सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त न हो जाय। सूक्ष्म ज्ञान होने के उपरान्त ही चित्रों का प्रयोग धीरे-धीरे छोड़ते रहना चाहिए और बड़ी कक्षाओं में तो स्थूल पदार्थों का निपट बहिष्कार यथाशक्ति कर देना चाहिए। बड़ी कक्षाओं के बालकों में इतना ज्ञान हो जाना चाहिए कि वे स्थूल पदार्थों वा स्थूल निदर्शन पर आश्रित न रहें, किन्तु उन्हें सूक्ष्म भावों से इतने परिपूर्ण हो जाने चाहिए कि वे स्थूल पदार्थों वा निदर्शन के विना अपने पाठ समझ सकें। यदि उनमें ज्ञान की इतनी वृद्धि नहीं की जायगी तो पिछली बातें उनकी स्मृति में विना स्थूल पदार्थ या निदर्शन के आ ही न सकेंगी। यही कारण है कि बहुत से विद्यार्थी नई बात या नया शब्द समझने के लिए चित्रों पर ही अवलम्बित रहते हैं। उनसे यदि कोई कहानी कही या सुनाई जाती है, तो वे विना किसी चित्र वा प्रत्यक्ष निदर्शन के कहानी का न तो चित्रण ही कर सकते हैं और उसके भावों को समझ सकते हैं। अतः बच्चों को शिक्षा

प्रदान करने में यह सिद्धान्त सर्वदा ध्यान में रखना चाहिए कि स्थूल से सूक्ष्म की ओर चलना चाहिए। किन्तु ज्यों ही स्थूल की आवश्यकता न जान पड़े, त्यों ही उसे छोड़ देना चाहिए। स्थूल तो केवल सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त करने का एक साधन है।

किस प्रकार के चित्रों का किस कक्षा में किस रीति से प्रयोग करना चाहिए ?

हाई स्कूल की तीसरी और चौथी कक्षाओं में या वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल की १-२ कक्षाओं में तो अध्यापक का यही मुख्य उद्देश्य था कि बच्चों को बाह्य वस्तुओं के प्रत्यक्ष वा उपलम्भन हों। जब बच्चा हाई स्कूल की पाँचवीं कक्षा में पहुँचता है तो उसे बाह्य वस्तुओं के काफ़ी प्रत्यक्ष और उपलम्भन हो जाते हैं। प्रत्यक्ष और उपलम्भनों के अतिरिक्त निरीक्षण-शक्ति के साधन द्वारा उसे बहुत कुछ सूक्ष्म भाव भी हो गये हैं। अतः अब उसे ऐसे चित्र दिखाये जा सकते हैं, जिनमें भारतवर्ष के साधारण दृश्य दर्शाये गये हों, यथा—

(१) किसी गाँव के कुएँ का दृश्य; (२) किसी हिन्दुस्तानी गाँव का दृश्य; (३) रेलवे स्टेशन का दृश्य; (४) डाकख़ाने का दृश्य; (५) किसी मंडी का दृश्य (यथा सब्ज़ी मंडी, घास की मंडी, अनाज की मंडी, इत्यादि)।

(६) हिन्दुस्तानी सिपाही, डाकिया, मोची या दूध वाले का दृश्य; (७) किसी तीर्थस्थान का दृश्य; (८) किसी किसान, धोबी, कुम्हार, लोहार, बढ़ई, नाई, या कोल्हू पेलनेवाले का दृश्य; (९) किसी पर्व, मेले, विवाह या उत्सव का दृश्य; (१०) पाठशाला का दृश्य; (११) किसी नदी, तालाब, या नाले का दृश्य; (१२) किसी हिन्दुस्तानी चरागाह का दृश्य; (१३) किसी हिन्दुस्तानी दस्तकारी के कार्यालय का दृश्य; (१४) किसी वाटिका, सड़क, खेती, गली या गाड़ी का दृश्य, इत्यादि-इत्यादि।

नोटः—(ध्यान रखना चाहिए कि चित्र बड़े हों और यदि रंगीन हों तो और भी उत्तम है; क्योंकि रंगीन चित्र बच्चों को अधिक प्रिय लगते हैं।)

हिन्दी-रीडर के चित्रों का प्रयोग

यदि ऊपर लिखे चित्रों के दृश्य बच्चों की हिन्दी-रीडरों में भी हों तो अत्यन्त उत्तम है। अध्यापकों को ऊपर दर्शाये हुए चित्रों के पढ़ाने में अधिक सरलता विदित होगी, यदि हिन्दी-रीडरों में और निबन्ध-शिक्षा देने में एक ही दृश्यवाले चित्रों का प्रयोग किया जाय। बहुत से अध्यापक रीडर का निबन्ध-शिक्षा से कोई सम्बन्ध नहीं समझते। यहाँ पर यह कह देना असामयिक न होगा कि रीडर का निबन्ध-शिक्षा से घनिष्ठ सम्बन्ध है। क्यों? छोटे बच्चों में प्रकाशन कल्पना-

शक्ति अन्य कल्पना-शक्ति के प्रकारों से अधिक होती है; क्योंकि किसी की देखी या सुनी बात, घटना, दृश्य या कहानी का व्याख्यान करना अथवा वर्णन करना किसी अदृष्ट, अश्रुत या अकथित बात, घटना, दृश्य या कहानी के व्याख्यान या वर्णन करने और लिखने से अधिक सरल होता है। इस कारण ५ वीं श्रेणी में रीडर का निबन्ध-शिक्षा से घनिष्ठ सम्बन्ध होना चाहिए। रीडर में यदि वही चित्र हो, जो कि निबन्ध-शिक्षा के घंटे में पढ़ाया जाता है, तो निबन्ध-शिक्षा देते समय उस अध्यापक का काम पुष्ट तथा प्रबल करता है, जो कि रीडर पढ़ाता है। इसके अतिरिक्त रीडर के आधार पर निबन्ध-शिक्षा देने से बच्चों को उसी पाठ का दुहराव हो जाता है, जो उन्होंने रीडर में पढ़ लिया है। किसी बात या विषय को बार-बार दुहराने से वह स्मरण हो जाता है। अतः रीडर को निबन्ध-शिक्षा से सम्बद्ध करने से बच्चों को भी लाभ होता है।

हाई स्कल की पाँचवीं और मिडिल वर्नाक्यूलर स्कूल की तीसरी के निमित्त, जो चित्रों की सूची २०५ और २०६ पृष्ठों पर दी गई है, उसमें से एक या दो पाठों के नमूने मय पढ़ाने की रीति के नीचे दिये गये हैं:—

पहले अध्यापक एक कुएँ के चित्र को बालकों के सामने लटकाता है। तत्पश्चात् उस चित्र के विषय में अनेक प्रश्न पूछता है; यथा:—

चित्र नं० १४
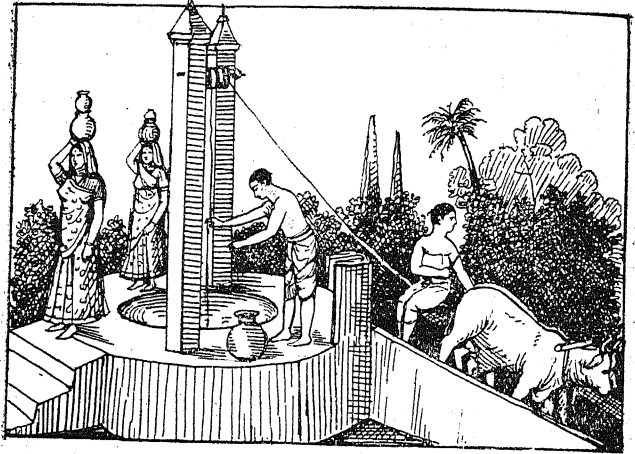
प्रश्नः—(१) इस चित्र के विषय में तुम जो कुछ जानते हो कहो। यदि बच्चे ठीक-ठीक उत्तर न दे सकते हों, तो अध्यापक उनसे ऐसे प्रश्न पूछे कि उनको चित्र के विवरणों का अवलोकन करना पड़े, यथाः—

(२) इस चित्र में तुम कितने पुरुष और कितनी स्त्रियाँ देखते हो ?

(३) वे क्या कर रहे हैं ?

(४) जो मनुष्य कुएँ पर खड़ा है, वह क्या कर रहा है ? (पानी उँडेल रहा है।)

(५) वह कहाँ से पानी खींच रहा है ? (कुएँ से)

(६) कुएँ का चबूतरा किस चीज़ का बना है ? (ईंट का) क्यों ?

(७) बैल क्या कर रहे हैं ?

(८) बैलों से रस्सी क्यों खिंचवाई जा रही है ?
इत्यादि-इत्यादि ।

प्रश्न पूछने के उपरान्त अध्यापक एक या दो चतुर बालकों को छाँट ले और उनसे सम्पूर्ण चित्र का वर्णन करावे, तत्पश्चात् मन्दमति बालकों को चित्र का सम्पूर्ण वर्णन करने का काफ़ी अवसर दिया जाय ।

तदुपरान्त बालकों से कहा जाय कि जो कुछ वे चित्र में देखते हैं, अपनी कापियों में लिखें । फिर अध्यापक उनकी कापियों का संशोधन करे और बालकों से कहे कि वे अपनी अशुद्धियों को शुद्ध रूप में बाईं ओर लिखें ।

चित्र नं० १९

हलवाई की दुकान का दृश्य ।

प्रथम चरण:—

प्रश्न:—(१) तुम चित्र में क्या देखते हो ?

(२) हलवाई के हाथ में क्या है ? (३) वह तराज़ू से क्या कर रहा है ? (४) वह मिठाई को क्यों तौल रहा है ? (५) थालों में क्या रक्खा है ? (६) थाल किस पर रक्खे हैं ? (७) हलवाई कहाँ बैठा है ? (८) हलवाई ने अपनी दूकान में घंटा क्यों लटका रक्खा है ? (९) मिठाई के थाल अलमारी में क्यों रक्खे हैं ?

द्वितीय चरण:—सम्पूर्ण चित्र का वर्णन करवाना।

तृतीय चरण:—चित्र का वर्णन लिखवाना।

चित्रों का प्रयोग हाई स्कूल की छठी और वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल की चौथी कक्षा में:—

(अ) इस बात की पूर्ण आशा की जाती है कि हाई स्कूल की छठी या मिडिल वर्नाक्यूलर की चौथी कक्षा में जब कोई बालक पहुँचता है, तो वह अन्य देशीय बालकों की भी बहुत सी कहानियाँ जान जाता है। हाई स्कूल की पाँचवीं और मिडिलस्कूल की तीसरी कक्षा के करिक्यूलम के आधार पर यह कह सकते हैं कि उस बालक ने जो अब हाई स्कूल की छठी या मिडिल वर्नाक्यूलर स्कूल की चौथी कक्षा में है अपने अड़ोस-पड़ोस और अन्य देशों के अनेक चित्र अपनी हिंदी-रीडरों में, इतिहास तथा भूगोल की पुस्तकों में देखे हैं और उनके विषय में, बहुत कुछ ज्ञान

प्राप्त भी कर लिया है । साथ ही साथ उसकी कल्पना शक्ति में भी बहुत कुछ उन्नति हो गई है; क्योंकि उसने ५ वीं कक्षा (हाई स्कूल) या तीसरी कक्षा (मिडिल वर्नाक्यूलर स्कूल) में अनेक चित्रों के ऊपर वार्तालाप किया है। इन सब कारणों से हाई स्कूल की छठी और मिडिल वर्नाक्यूलर स्कूल की चौथी कक्षा में अध्यापक अन्य दूर देशों के दृश्यों और गलियों या बाज़ारों या बच्चों के चित्रों पर सुगमता से बातचीत करवा सकता है और तत्पश्चात् उन चित्रों का वर्णन लिखवा सकता है।

अब चित्रों में पहले से कुछ क्लिष्ट भाव होने चाहिए; यथा चित्रों में किसी कहानी, घटना या कारोबार इत्यादि का पूर्ण वर्णन होना चाहिए। इस बात के लिए यह आवश्यक नहीं है कि एक ही चित्र में कहानी, घटना या कारोबार का पूर्ण वृत्तान्त आ जाय । सम्भव है कि किसी कहानी, घटना या कारोबार का पूर्ण वृत्तान्त दो या तीन चित्रों में भी पूरा न दर्शाया जा सके । दृष्टान्त के लिये एक तोते और बिल्ली की कहानी के चित्र नीचे दिये गये हैं:—

(कहानीः—एक तोता एक नाँद के ऊपर बैठा-बैठा पानी पी रहा था । नाँद पानी से सिरे तक भरी थी । और एक पेड़ के नीचे रक्खी हुई थी । पेड़ के पीछे एक बिल्ली दुबकी बैठी थी। वह यह सोच में थी कि तोता किस

तरह पकड़ा जाय। जब तोता पानी पी रहा था तो बिल्ली उस पर झपटी। भाग्यवशात् तोता तो उड़कर पेड़ पर जा बैठा; किन्तु बिल्ली नाँद में गिर पड़ी और मर गई। थोड़ी देर में एक आदमी आया और मरी हुई बिल्ली की पूँछ पकड़कर उसे नाँद में से बाहर निकाल दिया।)

चित्र नं० १६
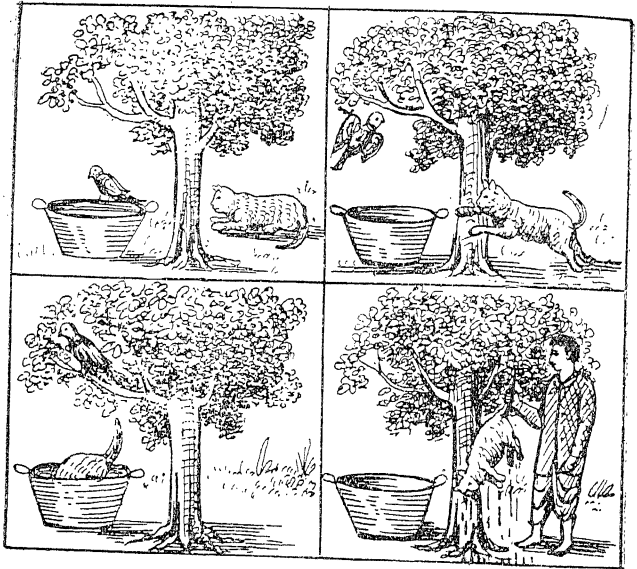
ऊपर लिखी कहानी के सब भाव एक ही चित्र में नहीं दर्शाये जा सकते, अतः भिन्न-भिन्न चित्रों में उसके भाव दर्शाने पड़ेंगे।

यथाः—

ऊपर के चित्रों को पढ़ाने का ढंग।

(नोटः—इन चित्रों को अध्यापक स्वयम् श्यामपट्ट पर खींच सकता है; किन्तु उनको श्यामपट्ट पर खींचने की अपेक्षा काग़ज़ पर खींचना उत्तम है। यदि चित्र काग़ज़ पर खींच दिये जायँगे, तो अध्यापक उनका प्रयोग आगामी वर्ष भी कर सकता है और यदि उसे किसी पढ़ाये हुए पाठ को दुहराना है, तो वह उन चित्रों का उपयोग कर सकता है।)

(प्रथम चरणः—) अध्यापक काग़ज़ से सब चित्रों को ढक दे और उनको एक-एक करके खोले और बालकों को दिखाता जाय। (सब चित्रों को खुला क्यों नहीं रखना चाहिए और एक के पश्चात् दूसरा चित्र क्यों दिखाना चाहिए ?

उत्तरः—(छोटे बच्चों में संकल्प-शक्ति की कमी होती है। मनोहर वा प्रिय पदार्थ या वस्तुएँ उनके हृदय पर इतना प्रभाव डालती हैं कि वे उनकी ओर ध्यान देने लगते हैं। किसी रोते हुए बालक को यदि खिलौना दे दिया जाय, तो तुरन्त उसका ध्यान खिलौने की ओर आकर्षित हो जायगा और वह रोना बन्द कर देगा। अतः यदि बालकों को सब चित्र एक ही साथ खोलकर दिखा दिये जाएँगे, तो उनका ध्यान बँट जायगा और पाठ उन्हें रोचक न लगेगा। यदि एक चित्र के पश्चात् दूसरा चित्र

दिखाया जायगा, तो वे अन्वेषणशील बने ही रहेंगे और इस बात के जानने के इच्छुक बने रहेंगे कि आगे की तस्वीर में क्या दिखाया जायगा ?)

अब अध्यापक प्रथम चित्र के ऊपर निम्न-लिखित प्रश्न पूछेः—

प्रथम चित्रः—क प्रश्नः—(१) इस चित्र में तुम जो कुछ देखते हो उसको कहो ? (२) (यदि बालक प्रथम प्रश्न का उत्तर न दे सकें, तो उनसे ये प्रश्न पूछो) पेड़ के नीचे तुम क्या-क्या देखते हो ? (तोता, नाँद, बिल्ली) (३) तोता कहाँ बैठा है ? (नाँद के ऊपर) (४) क्यों ? (पानी पीने के लिए) (५) बिल्ली क्या कर रही है ? (६) वह पेड़ के पीछे क्यों दुबक कर बैठा है ? (क्योंकि वह तोते को पकड़ना चाहती है ।)

ख इस (प्रथम) चित्र के विषय में जो कुछ तुमने अब तक कहा है, सब मिलाकर एक साथ कहो ।

ग इस चित्र का प्रतिरूप (Copy) अपनी कापियों में बना लो ।

(नोटः—प्रतिरूप बनवाने में पहला उद्देश्य यह है कि छोटे बच्चे एक ही प्रकार के काम पर अधिक समय तक ध्यान नहीं लगा सकते । एक ही काम यदि उन्हें भिन्न रूप में दे दिया जाय, तो वे उसमें फिर से ध्यान लगाते हैं । दूसरे यह कि मानसिक कार्य के पश्चात् यदि

शारीरिक कार्य दे दिया जाय, तो थकान कम ज्ञात होती है और मुस्लियों का प्रयोग भी हो जाता है। अतः हमारा यह उद्देश्य नहीं है कि बच्चे नितान्त दोषहीन चित्र-प्रतिरूप बनावें। यदि वे (चित्र-प्रतिरूप) टेढ़े-मेढ़े या अधूरे हैं, तो कोई हानि नहीं। चित्र-प्रतिरूप बनाने के लिए एक या दो मिनिट का समय दे देना ठीक है।)

द्वितीय चित्रः—प्रश्नः—(१) दूसरे चित्र में तुम क्या देखते हो?

(नोटः—यह ध्यान में रखना चाहिए कि बालक फिर उन्हीं बातों को न दोहरावें, जो उन्होंने प्रथम चित्र में देखी हैं। यदि वे उन्हीं बातों को दोहराना प्रारम्भ करें, तो अध्यापक उन्हें स्पष्ट रीति से समझा सकता है कि प्रत्येक चित्र में जो नई बात तुम देखते हो वह कहो। पुरानी बातों को बार-बार दोहराने से क्या लाभ?) (२) अब तोता क्या कर रहा है? (३) तोता क्यों उड़ रहा है?

तृतीय चित्रः—प्रश्नः (१) इस चित्र में तुम क्या देखते हो? (२) बिल्ली कहाँ है? (३) तोता कहाँ है?

चतुर्थ चित्रः—प्रश्नः—(१) इस चित्र में तुम क्या देखते हो? (२) आदमी क्या कर रहा है? (३) बिल्ली हिलती-डुलती क्यों नहीं है? मनुष्य मरी बिल्ली को नाँद से क्यों निकाल रहा है?

(द्वितीय चरण) अब अध्यापक सब चित्रों को

खुला रक्खे और बालकों से कहे कि जो कहानी इस चित्रों में दर्शाई गई है, वह सम्पूर्ण रूप में कहो।

(तृतीय चरण) तुम लोग इस कहानी को घर से लिखकर लाना। मैं उसको निबन्ध-शिक्षा की आगामी बारी पर देखूँगा।

नोटः—अध्यापक इस रीति से अनेक चित्र-प्रयोग कर सकता है। यथा जापानी-जीवन के भिन्न-भिन्न चित्र; अकबर बादशाह के जीवन के चित्र; किसी कारोबार के चित्र; इत्यादि-इत्यादि।

(आ) चित्र-पहेलिकाओं (Picture Puzzles) का प्रयोग भी हो सकता है; यथाः—कार्ड बोर्ड के छोटे-छोटे टुकड़ों पर एक ओर किसी कहानी के चित्र बने हों और दूसरी ओर कहानी लिखी हो। अध्यापक उन टुकड़ों को बालकों को दे और कहे कि इनको ठीक क्रम से रखने से विशेष चित्र बन जाते हैं और साथ ही साथ इन टुकड़ों के पृष्ठ पर भी एक कहानी बन जाती है। शिक्षक बालकों को समझा दे कि जो बालक इनको ठीक क्रम से रख ले वह उस कहानी का, जो इनके पृष्ठ पर लिखी है, पढ़ ले और कहने के लिए उद्यत रहे। तत्पश्चात् अध्यापक वह कहानी बालकों से कहलाये और फिर उसे बालकों से लिखवाये। कहानी लिखते समय किसी भी बालक को कार्ड बोर्ड के टुकड़ों के पृष्ठ पर बनी हुई कहानी देखने की

आज्ञा नहीं देनी चाहिए। यह बात निम्न-लिखित दृष्टान्त से पाठकों की समझ में आ जायगी:—

कहानी:—दो बहन साथ-साथ घूमने जा रही थीं। उनके साथ एक मोती कुत्ता भी था। जब वे घर से कुछ दूर निकल गईं, तो उन्होंने एक बैल देखा। बड़ी बहन के हाथ में एक खुला हुआ छाता था। खुले हुए छाते को देखकर बैल चौंक पड़ा और उन्हें मारने को दौड़ा। छोटी बहन डर के मारे बड़ी बहन के पीछे खड़ी हो गई। बड़ी बहन निडर थी। उसने बैल की ओर अपना कुत्ता ललकारा। कुत्ता बड़ा भक्त तथा आज्ञापालक था। वह तुरन्त बैल की ओर दौड़ा और भूक कर उसे भगा दिया। इस प्रकार दोनों बहनें बैल के आक्रमण से बच गईं। मान लो ऊपर लिखी कहानी कार्ड बोर्ड के टुकड़ों के एक ओर लिखी है और उनके दूसरी ओर नीचे दिये हुए चित्र बने हैं:—

नोट:—यह आवश्यक नहीं कि कार्ड बोर्डों पर पूरे-पूरे चित्र ही बने हों। वे अधूरे भी हो सकते हैं। एवम् उनकी दूसरी ओर भी पूरे-पूरे वाक्य या पद भी हो सकते हैं और नहीं भी।

कार्ड बोर्ड के छोटे-छोटे टुकड़े:— (उनकी एक ओर तो चित्र बने हैं।) और दूसरी ओर कहानी के वाक्य या शब्द या शब्द-समूह लिखे हैं।

चित्र नं० १७
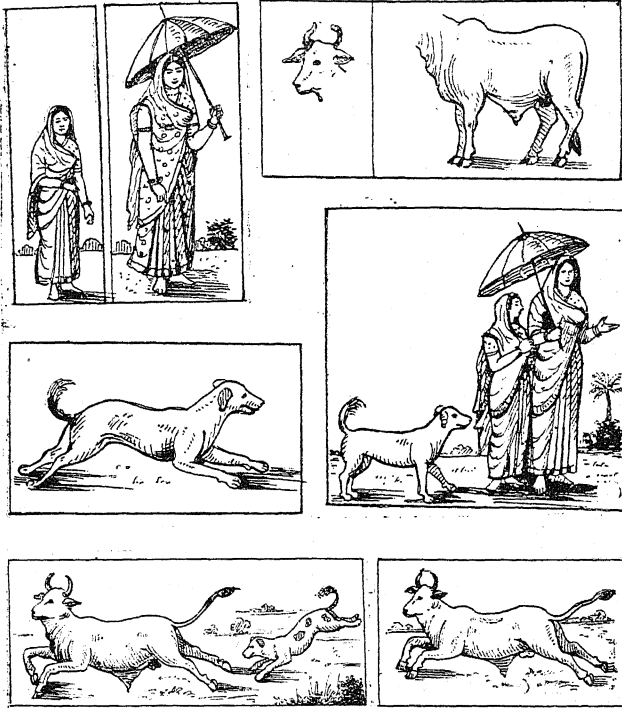
बालक ऊपर दर्शाये हुए कार्ड बोर्डों के टुकड़ों को इस प्रकार मिलाये कि जो कहानी ऊपर लिखी है, वह बन जाय। इस प्रकार के काम बालकों को रोचक लगते हैं। वे उन्हें खेल-से समझते हैं और उनमें भली भाँति ध्यान लगाते हैं।

पत्र-लेखन (Letter-writing)

पत्र-लेखन का कार्य वास्तव में बालक अधिकांश कल्पना-शक्ति द्वारा करते हैं। जब बालक किसी सम्बन्धी को किसी व्यापारी को, या किसी अन्य व्यक्ति को पत्र लिखते हैं, तो वे उस सम्बन्धी, व्यापारी या व्यक्ति को ध्यान में लाते हैं और समझते हैं कि वे (बालक) उसके सामने खड़े हैं। तत्पश्चात् वे जो कुछ उस (सम्बन्धी, व्यापारी या व्यक्ति) से कहना चाहते हैं, वही पत्र में लिख देते हैं। ७ वर्ष से और ६ वर्ष तक के बच्चों में कल्पना-शक्ति की यथेष्ट प्रबलता जागृति हो जाती है। अतः पत्र-लेखन का कार्य हाई स्कूल की ४थी और मिडिल वर्नाक्यूलर स्कूल की दूसरी कक्षा से प्रारम्भ हो जाना चाहिए।

हाई स्कूल की चौथी या मिडिल वर्नाक्यूलर स्कूल की कक्षा दूसरी में किस प्रकार के पत्रों की लिखाई होनी चाहिए तथा पत्र-लेखन कैसे सिखाया जाना चाहिए ?

चौथी श्रेणी (हाई स्कूल की) और दूसरी श्रेणी (मिडिल वर्नाक्यूलर स्कूल की) में तो यह उद्देश्य होना चाहिए कि बच्चों को पत्र के विभिन्न अंगों के लिखने का क्रम-बद्ध ज्ञान हो जाय और थोड़ा बहुत उसमें अपनी बातें भी लिख सकें।

पहला पाठ

पत्र के अंगों का ज्ञान कराना और उनको लिखवाना।

(नोटः—बच्चों में यह एक नैसर्गिक बुद्धि होती है

कि वे अपने माँ-बाप और सम्बन्धियों को अन्य पुरुषों की अपेक्षा अधिक प्यार करते हैं। अतः अभी उन्हें उन पत्रों के अंग सिखाने चाहिए जो कि उनके माँ-बाप और सम्बन्धियों को लिखे जा सकते हैं। उनसे वही पत्र लिखवाने चाहिए, जो कि उनके माँ-बाप और सम्बन्धियों से लगाव रखते हों।)

(प्रथम चरण)

अध्यापक श्यामपट्ट पर ५ या ६ छोटे-छोटे पत्रों के आदर्श लिखकर तय्यार रक्खे। ध्यान रखना चाहिए कि आदर्श ऐसे पत्रों के हों जो किसी बच्चे ने अपने माँ-बाप या अन्य सम्बन्धियों को लिखे हों; यथाः—

श्यामपट्ट के आदर्शः—

नं० १

प्रयाग,

५ अगस्त, १९३०।

श्रीपिताजी,

नमस्कार,

मेरा जूता टूट गया है। अतः आप कृपया ५) रुपये भेज दीजिएगा।

आपका आज्ञाकारी पुत्र,

भास्करानन्द।

नं० २

आगरा,
६ मई, १९३१।

श्रीदादाजी,

नमस्ते,

मेरे पास अब घी नहीं है। मैं दो दिवस से विना घी के खाना खा रहा हूँ। कृपया मेरे लिए किसी नौकर के हाथ शीघ्र घी भिजवा दीजिएगा। घी इतना हो कि महीने भर चल जाय।

आपका प्रिय नाती,
वीरेन्द्र

नं० ३

टिहरी,
४ जून, १९३१।

प्रिय भाईजी,

प्रणाम,

मैं आपके पास दशहरे की छुट्टी में आना चाहता हूँ। मेरे पास खर्च नहीं है। आप शीघ्र २०) रुपये मनिआर्डर से भेज दीजिए। घर पर सब सकुशल हैं।

आपका प्रिय लघु भ्राता,
नारायणदत्त

नं० ४

मुज़फ़्फ़रनगर,
९ दिसम्बर, १९२९।

प्रिय माताजी,

पालागन,

मुझे आपकी बहुत याद आती है। बड़े दिनों की छुट्टी में घर आना चाहता हूँ। पिताजी से कहकर १०) रुपये एक सप्ताह के भीतर भिजवा दीजिए; क्योंकि बड़े दिनों की छुट्टी आज से १५ दिन पश्चात् आरम्भ होगी।

आपका प्रिय पुत्र,
गुरुप्रसाद

नं० ५

अलमोड़ा,
७ अगस्त, १९३०।

मित्रवर,

प्रणाम,

मैं यहाँ से अपने पिताजी के संग ता० १० अगस्त को आगरे के लिए प्रस्थान करूँगा। तुम मुझसे ता० १२ अगस्त को रेलवे स्टेशन पर ठीक ५ बजे मिलने के लिए आ जाना।

विनीत,
ब्रह्मानन्द सकलानी

अध्यापक बालकों से कहे कि वे श्यामपट्ट पर जो पत्र-आदर्श दिये गये हैं, उनको मन-ही-मन पढ़ लें और निम्न-लिखित प्रश्नों के उत्तर देने के लिए उद्यत रहें।

पत्र-आदर्शों पर प्रश्नः—(लेखक का नाम कहाँ पर लिखा जाता है)

(१) इस चिट्ठी को किसने लिखा है ? (भास्करानन्द ने) (२) लेखक का नाम प्रथम पत्र पर कहाँ लिखा गया है ? (नीचे दाहिनी ओर।) (३) दूसरी चिट्ठी में लेखक का नाम कहाँ पर लिखा है ? तीसरी में ? चौथी में ? पाँचवीं में ? (४) पहली चिट्ठी के लेखक का नाम पढ़ो। (५) प्रत्येक चिट्ठी के लेखक का क्या नाम है ? अब बताओ तुम्हें चिट्ठी में नाम कहाँ पर लिखना चाहिए ? (चिट्ठी के नीचे दाहिनी ओर।) (यह बात अपनी कापियों में लिख लो।)

(वह स्थान जहाँ से पत्र भेजा जाता है या लिखा जाता है।) प्रश्नः—(१) पहला पत्र किसने भेजा है ? (२) कहाँ से भेजा है ? (३) दूसरा पत्र किसने भेजा है ? (४) कहाँ से भेजा है ? (५) तीसरा पत्र किस स्थान से भेजा गया है ? चौथा ? पाँचवाँ ? (६) वह स्थान जहाँ से पहला पत्र भेजा गया है, पत्र में कहाँ पर लिखा है। (पृष्ठ के दाहिने कोने पर ऊपर की ओर दूसरी पंक्ति में।) (७) और पत्रों में भेजने का स्थान कहाँ पर लिखा है ? (८) अब बताओ तुम्हें भेजने का स्थान कहाँ पर लिखना चाहिए ?

(पत्र भेजने या लिखने की तारीख) प्रश्नः—लेखक ने पहली चिट्ठी किस तारीख़ को लिखी ? दूसरी चिट्ठी किस तारीख़ को लिखी गई ? तीसरी ? चौथी ? पाँचवीं ? चिट्ठी भेजने या लिखने की तारीख़ चिट्ठी में कहाँ पर लिखी

जाती है ? (स्थान के नीचे ठीक दूसरी पंक्ति में ।) यह बात भी अपनी कापियों में लिख लो ।

इस प्रकार प्रश्नों के द्वारा अध्यापक बालकों से यह भी निकलवा सकता है कि (१) ॐ, जैशिव, श्रीदुर्गे, श्री, श्रीरामजी, इत्यादि मङ्गलसूचक शब्द पृष्ठ के बीच में सबसे ऊपर की पंक्ति में लिखे जाते हैं; (२) सम्बोधन पृष्ठ के बायें कोने पर मंगलसूचक शब्द से ५-६ पंक्तियाँ छोड़कर लिखा जाता है; (३) अभिवादन (यथा नमस्कार, पालागन, नमस्ते, दण्डवत् इत्यादि) सम्बोधन के नीचे की पंक्ति में सम्बोधन से कुछ आगे दाहिनी ओर लिखा जाता है; (४) और पत्र का विषय अभिवादन के नीचे की पंक्ति से प्रारम्भ होता है। पत्र विषय की प्रथम पंक्ति तो हाशिया से कुछ दूर पर दाहिनी ओर लिखी जाती है किन्तु अन्य पंक्तियाँ हाशिया के किनारे से मिली हुई लिखी जाती हैं । इत्यादि ।

प्रश्नः—पत्र के तुम कितने अंग कर सकते हो ?

(२) उन अंगों के क्या नाम हैं ?

(३) प्रत्येक अंग के लिखने का उचित स्थान तथा रीति क्या है ?

नोटः—अध्यापक पत्र-लेखन के ऊपर कई पाठ दे सकता है; यथाः—(१) पत्र में विरामों का उचित प्रयोग; (२) सम्बोधित पुरुष का नाम और पता लिखने की रीति; (३) पत्रों का लिखवाना; इत्यादि-इत्यादि ।

नोटः—ज्यों-ज्यों बालक आगे की कक्षाओं में जायँ त्यों-त्यों पत्र का विषय अधिक और क्लिष्ट होना चाहिए। पत्र की भाषा भी सुन्दर और भावपूर्ण होनी चाहिए। बालकों को भिन्न भावों को भिन्न-भिन्न सूक्तों में लिखना चाहिए। हाई स्कूल की चौथी या मिडिल वर्नाक्यूलर की दूसरी कक्षा से आगे बालकों को भिन्न-भिन्न प्रकार के पत्र लिखने भी जानने चाहिए; यथाः—प्रार्थना-पत्रों का लिखना; व्यावसायिक पत्रों का लिखना।

छोटे बच्चे झूठी कहानियों या बातों को सच्ची क्यों समझते हैं?

कुछ समय के लिये हम पाठकों का ध्यान प्रश्न नं० ७, ८, पृष्ठ ३, की ओर आकर्षित करते हैं। उन्हें विदित हो गया होगा कि वाह्य पदार्थों या व्यक्तियों के प्रत्यक्ष उपलम्भन तथा अवलोकन के कारण बालकों में अनेक भाव उत्पन्न हो जाते हैं। उन भावों के प्राप्त करने से बालकों के बुद्धि की इतनी वृद्धि होजाती है कि वे विविध प्रकार की कल्पनाएँ तो कर लेते हैं; किन्तु उनमें विवेक तथा निर्णय-शक्तियों का अभी अभाव ही रहता है। वे सच-झूठ में अभी भेद नहीं समझते। झूठी कहानियों तथा घटनाओं को वे सच्ची समझा करते हैं। बड़े मनुष्यों में विवेक, निर्णय, इत्यादि सभी मानसिक शक्तियाँ उपस्थित होती हैं। छोटे बालक इस बात को सत्य ही समझते हैं कि गुड़ियों में जान होती है, या लाठी दौड़ा

तथा उछला करती है। बड़े मनुष्यों में विवेक तथा निर्णय-शक्तियाँ होती हैं। वे जानते हैं कि सच और झूठ में बड़ा अन्तर होता है। वे जानते हैं कि सम्पूर्ण जड़ पदार्थ जीव-रहित होते हैं। वे जड़ पदार्थ इस हेतु स्वयम् कोई कार्य नहीं कर सकते और न उनमें सुख-दुःख का ज्ञान होता है। इनके अर्थात् निर्णय और विवेक शक्तियों के अभाव के कारण छोटे बालक जड़ पदार्थों में भी जान (जीव) समझते हैं। यही कारण है कि छोटे बालक तो गुड़ियों को खाना, कपड़ा, इत्यादि देते हैं, या लाठी को समझते हैं कि वह उछलती, कूदती, फाँदती, और दौड़ती है; किन्तु बड़े मनुष्य यह भली भाँति जानते हैं कि बच्चों के ये भाव अपनी निर्णय तथा विवेक-शक्तियों द्वारा मिथ्या हैं।

अध्यापक को क्या करना चाहिए कि बच्चे सच और झूठ का भेद जान सकें ?

ऊपर लिखी बात से यह स्पष्ट है कि अब अध्यापक को बालकों में निर्णय तथा विवेक शक्तियों की जागृति करनी अत्यन्त आवश्यक है; क्योंकि इनके विना झूठ-सच का भेद तथा निश्चय करना कठिन है। वास्तव में पूर्ण मनुष्यता इन्हीं शक्तियों द्वारा प्राप्त होती है। अतएव आगे हम निर्णय और विवेक-शक्तियों का वर्णन करेंगे, यह निश्चय करेंगे कि पाठशालाओं में ऐसे कौन से पाठ निबन्ध-शिक्षा में बालकों को पढ़ाये जायँ कि उनकी निर्णय तथा विवेक-शक्तियों का उचित विकास हो।

पञ्चम अध्याय

विभाव (Ideation), निर्णय (Judgment), और विवेक (Reasoning), आदि शक्तियाँ।

(क) विभाव व निर्णय-शक्ति :—'अवलोकन' के अध्याय में तीन प्रकार के भाव बतलाये गये हैं; जातिवाचक, व्यक्तिवाचक और सूक्ष्म भाव। उस अध्याय में यह भी बतलाया गया है कि बालकों को इन भावों की प्राप्ति किस तरह होती है। उपलम्भनों और प्रत्यक्षों के होने से बच्चों को व्यक्तिगत तथा जाति-बोधक भाव होते हैं, किन्तु अवलोकन से उन्हें सूक्ष्म भाव होते हैं। सूक्ष्म भाव बच्चों को तभी होते हैं, जब वे भिन्न-भिन्न वस्तुओं की बुद्ध्यात्मक व्याख्या कर उन वस्तुओं के गुणों, अवयवों, विशेषताओं, पारस्परिक सम्बन्धों, सादृश्यताओं तथा विभिन्नताओं को जानते हैं। सूक्ष्म भावों की प्राप्ति के पश्चात् बालकों का मन इतना उन्नत हो जाता है कि वह कोई भी दो, या अधिक सूक्ष्म-भावों को ले लेता है और उनमें (अर्थात् सूक्ष्म भावों में) सादृश्य तथा विभिन्नताओं को जानने में समर्थ हो जाता है। सूक्ष्म भावों में सादृश्यताओं तथा विपरीतताओं को जानने के लिये मन उनकी परस्पर तुलना करता है।

विभाव के विषय में कुछ अधिक बातें

और तुलना करने पर सिद्धान्त (Principle or General idea) निश्चित करता है।

बच्चे सिद्धान्त कैसे निश्चित करते हैं ?

यथाः—(१) बच्चे को हलके और भारी का सिद्धान्त निश्चित करना है।

मान लो अध्यापक बच्चों से अनेक हलकी और भारी वस्तुओं को उठवाता है; जैसे रुई और लोहा; काग़ज़ और पत्थर ; टीन और ताँबा ; इत्यादि। उन हलकी और भारी वस्तुओं को उठाने से बच्चों को जो बोझ के भिन्न-भिन्न भाव होते हैं, उनमें तुलना करने से बच्चे अन्तर ज्ञात करते हैं और रुई और लोहे, काग़ज़ और पत्थर टीन और ताँबा, इत्यादि के परस्पर प्रतिकूल भावों की परस्पर तुलना करते हैं और तत्पश्चात् अपनी सम्मति निश्चित करते हैं कि अमुक वस्तु या पदार्थ हलका है और अमुक भारी।

(२) एवम् छोटाई और लम्बाई का ज्ञान बच्चों को अनेक छोटी और लम्बी भिन्न-भिन्न जाति की वस्तुओं के दिखाने से करा सकते हैं। लम्बी और छोटी वस्तुओं को देखकर बच्चे पहले उनका निरीक्षण करते हैं, तत्पश्चात् उनकी तुलना करके उनकी लम्बाइयों का अन्तर जानते हैं और तब निश्चित कर लेते हैं कि अमुक वस्तु लम्बी है और अमुक छोटी। कल्पना करो कि कोई अध्यापक बच्चों को कुछ लम्बी छड़ियाँ और कुछ छोटी सुइयाँ अव-

लोकन करने के लिए देता है। लम्बी छड़ियों और छोटी सुइयों के भावों में बच्चे विपरीतता की तुलना करते हैं और निश्चित करते हैं कि छड़ियाँ लम्बी हैं और सुइयाँ छोटी। इस प्रकार बच्चे विपरीत सूक्ष्म भावों की तुलना करने से अनेक सिद्धान्त निश्चित करते रहते हैं। अब एक और उदाहरण लीजिए:--दो या अनेक सदृश सूक्ष्म भावों की तुलना करने से भी बच्चे कितने ही सिद्धान्त निश्चित कर सकते हैं; यथा:-- मान लो अध्यापक बच्चों को कई टोपियाँ दिखाता है। टोपियाँ सब एक ही रूप-रंग की हैं, किन्तु उनमें अन्तर यह है कि कुछ की बाड़ तो ऊँची है और कुछ की नीची। अब बच्चे एक ही प्रकार की टोपियों का अवलोकन करते हैं और उनकी परस्पर तुलना करके यह निश्चित करते हैं कि अमुक टोपी की बाड़ ऊँची है और अमुक की नीची। देखिए, कई सदृश भावों की तुलना करने से बच्चे अनेक सिद्धान्त निश्चित कर सकते हैं।

इस प्रकार सदृश भावों में तुलना करने से बच्चे निश्चित करते हैं कि यह घोड़ा बड़ा है और वह छोटा; यह पुस्तक नवीन है और वह पुरानी; यह पेड़ ऊँचा है और वह छोटा; यह लड़का बड़ा है और वह छोटा, इत्यादि-इत्यादि।

जिस शक्ति द्वारा मन अनेक भावों में सादृश्यता या विपरीतता की तुलना कर उन (भावों) के विषय में अपनी सम्मति निश्चित करता है, उसे निर्णय-शक्ति कहते हैं। भावों में सादृश्यता या विपरीतता की तुलना करने और तुलना करने के पश्चात् सम्मति देने के कार्य को निर्णयन कहते हैं।

निर्णय-शक्ति की परिभाषा

निर्णयन के कुछ और उदाहरण लीजिए:—(१) कल्पना करो कि अध्यापक को पदार्थों के छिद्रों का ज्ञान कराना है। इस ज्ञान को अध्यापक कुछ छिद्रयुत और कुछ विना रन्ध्रवाली वस्तुओं की पारस्परिक तुलना द्वारा भी करा सकता है। छिद्रयुत और विना छिद्रवाली वस्तुओं की तुलना करने से बच्चे उनके अन्तर का निरीक्षण करते हैं। तत्पश्चात् वे विपरीत भावों की पारस्परिक तुलना करते हैं और अपनी सम्मति निश्चित करके यह बात प्रकट करते हैं कि अमुक वस्तुएँ छिद्रयुत हैं और अमुक विना रन्ध्र की। जब अध्यापक भिन्न-भिन्न जाति की वस्तुओं का निरीक्षण करवाता है और उनके भावों की (विपरीत) तुलना करवाकर बच्चों से सिद्धान्त निश्चित करवाता है, तो कहते हैं कि वह 'भेद की रीति' (Method of difference) का

निर्णयन की व्याख्या

प्रयोग में ला रहा है। इस 'भेद की रीति' द्वारा हम कितने ही सिद्धान्त बच्चों से निकलवा सकते हैं; यथाः—कालापन और सफ़ेदी का सिद्धान्त; खट्टापन और मीठापन का सिद्धान्त; इत्यादि-इत्यादि।

(२) सिद्धान्त निश्चित करवाने में हम 'समानता की रीति' (Method of Similarity) को भी प्रयोग में ला सकते हैं; यथाः—सच्छिद्रता का ज्ञान अध्यापक एक प्रकार या जाति की वस्तुओं को अवलोकन कराने से भी दे सकता है। मान लो अध्यापक बच्चों से अनेक रन्ध्रयुत वस्तुओं का अवलोकन करवाता है। वह बच्चों से खड़िया, स्पन्ज, ब्लाटिंग कागज़, कपड़े का टुकड़ा, रेत, लकड़ी का टुकड़ा, पेड़ या पौदे का पत्ता, इत्यादि का निरीक्षण करवाकर इनके विषय में सदृश सूक्ष्म भाव उत्पन्न करवा सकता है। तत्पश्चात् वह उन सदृश सूक्ष्म भावों की पारस्परिक तुलना करवाकर बच्चों से सम्मति निश्चित करवा सकता है कि चाक छेदीला है; ब्लाटिंग छेदीला है; लकड़ी का टुकड़ा छेदीला है; इत्यादि-इत्यादि। जब अध्यापक एक ही प्रकार के अनेक भावों की पारस्परिक तुलना करवाकर बच्चों से सिद्धान्त निश्चित करवाता है, तो कहते हैं कि वह 'समानता की रीति' को व्यवहार में ला रहा है।

नवीन सिद्धान्तों को निश्चित करवाने में अध्यापक यदि दोनों प्रकार की रीतियों को अर्थात् 'भेद की रीति' और 'समानता की रीति' को प्रयोग में लावे तो अत्यन्त अच्छा हो। यह बात निम्न-लिखित उदाहरण से स्पष्ट है:—

नवीन सिद्धान्तों को निश्चित करवाने में अध्यापक को कौन सी रीति काम में लानी चाहिए ?

चिकनेपन का सिद्धान्त:—कल्पना करो कि अध्यापक को बच्चों से चिकनेपन का सिद्धान्त निकलवाना है। प्रथम अध्यापक बच्चों से कुछ खुरखुरी और कुछ चिकनी वस्तुओं की पारस्परिक तुलना करवाता है; यथा:—(चिकनी वस्तुएँ) साबुन, घी, तेल, इत्यादि की क्रमशः रेतवाले काग़ज़, ब्लाटिंग काग़ज़, बालू से बना हुआ पत्थर, इत्यादि से तुलना करवाता है। इस प्रकार विपरीत गुणोंवाली वस्तुओं की तुलना करवाने से बच्चे इस सिद्धान्त पर पहुँचते हैं कि साबुन, घी, तेल चिकने होते हैं; किन्तु रेतवाला काग़ज़ (Sand-paper), ब्लाटिंग काग़ज़, और रेत से बना हुआ पत्थर (Sand-stone) खुरखुरे होते हैं। इस सिद्धान्त को निश्चित करने में अध्यापक ने 'भेद की रीति' का प्रयोग किया है। 'भेद की रीति' (Method of Difference) के प्रयोग के पश्चात् अध्यापक बच्चों से अनेक चिकनी (अर्थात् एक से गुणवाली) वस्तुओं की पारस्परिक तुलना करवाता

है (यथा ग्लिसरिन की तुलना मोमबत्ती से या चर्बी से या मक्खन से करवाना) और यह निश्चित करवाना कि साबुन, घी, तेल की तरह ग्लिसरिन, मोमबत्ती, मक्खन और चर्बी भी चिकनी वस्तुएँ हैं। अब अध्यापक ने 'समानता की रीति' का प्रयोग किया है। केवल 'भेद की रीति' के प्रयोग से या केवल 'समानता की रीति' के प्रयोग से चिकनेपन का उतना अच्छा तथा स्पष्ट सिद्धान्त निश्चित नहीं कराया जा सकता, जितना अच्छा और स्पष्ट (सिद्धान्त) दोनों रीतियों के प्रयोग से कराया जा सकता है।

कल्पना करो कि अध्यापक को बच्चों से त्रिभुज का भाव निश्चित करवाना है। यदि त्रिभुज की तुलना अन्य आकृतियों से यथा चतुर्भुज, कोण, वर्गाकार चतुर्भुज, आयताकार चतुर्भुज, बहुभुजक्षेत्र से की जाय, तो बच्चे यह सिद्धान्त निश्चित करेंगे कि त्रिभुज वह क्षेत्र है, जो तीन सीधी रेखाओं के घेरने से बना हो और जिसके तीनों कोणों का योग दो समकोण के योग के बराबर हो (यह सिद्धान्त 'भेद की रीति' से निकाला गया है।) इसके उपरान्त बच्चों से अनेक प्रकार के त्रिभुजों की परस्पर तुलना करवाई जाय: यथा (१) समद्विबाहु त्रिभुज, (२) विषम बाहु त्रिभुज, (३) समत्रिबाहु त्रिभुज, (४) समकोण त्रिभुज इत्यादि-इत्यादि। भिन्न-

भिन्न प्रकार, रंग या आकार के त्रिभुजों की तुलना करने से बच्चे फिर यही सिद्धान्त निश्चित करेंगे कि त्रिभुज वह क्षेत्र है, जो तीन सीधी रेखाओं से घिरा हो और जिसके तीनों कोण मिलकर दो समकोण के योग के बराबर होते हैं। (यह 'समानता की रीति' है।)

परिभाषा (Defination) क्या वस्तु है और कब होनी चाहिए ?

साधारण भाव (General Idea.)

ऊपर जो त्रिभुज का उदाहरण दिया गया है उससे विदित है कि त्रिभुज के पूर्ण सूक्ष्म भाव में कितने ही भाव सम्मिलित हैं, यथा उसका तीन रेखाओं से घिरा होना; उसमें तीन कोणों का होना; तीन कोणों का योग दो समकोण के बराबर होना; इत्यादि-इत्यादि । यह कह देना कि "त्रिभुज वह क्षेत्र है, जो तीन सीधी रेखाओं से घिरा हो और जिसके तीनों कोणों का योग दो समकोण के योग के बराबर हो" इस बात को प्रमाणित करता है कि बच्चों ने भिन्न-भिन्न प्रकार के त्रिभुजों की विशेषताओं, गुणों तथा भावों को, जो उनमें अलग सम्मिलित हैं, छोड़कर वे सामान्य गुण या भाव चुन लिये हैं, जो सर्वसाधारण त्रिभुजों में व्याप्त हैं; यथा (१) प्रत्येक त्रिभुज एक क्षेत्र होता है, (२) प्रत्येक त्रिभुज तीन सीधी रेखाओं से घिरा होता है, (३) प्रत्येक त्रिभुज के तीन कोण होते हैं, जिनका योग

दो समकोण के बराबर होता है। बच्चों ने भिन्न-भिन्न त्रिभुजों के वे विशेष गुण त्याग दिये हैं, जो प्रत्येक में पाये जाते हैं, यथाः—समद्विबाहु त्रिभुज की कोई सी दो भुजाओं का बराबर होना और उन भुजाओं से जो दो अलग कोण बनते हैं, उनका परस्पर बराबर होना, एवम् समत्रिबाहु त्रिभुज की तीनों भुजाओं तथा कोणों का बराबर होना; एवम् समकोण त्रिभुज में एक कोण का समकोण होना; इत्यादि-इत्यादि। उन्होंने वे ही भाव और गुण चुन लिये हैं, जो सर्वसाधारण त्रिभुजों में व्याप्त हैं। किसी वस्तु की जाति के व्यक्तियों के विशेष गुणों और भावों को छोड़कर ऐसे भाव और गुणों को चुन लेने से, जो कि उस वस्तु की जाति के सर्वसाधारण व्यक्तियों में पाये जायँ, जो भाव हम धारण या निश्चित करते हैं, उस भाव को साधारण भाव या विभाव कहते हैं और उस सामान्य भाव या विभाव को शब्दों में प्रकट करने को परिभाषा कहते हैं।

ऊपर लिखी बात से यह स्पष्ट है कि किसी वस्तु की जाति के साधारण भाव या विभाव बच्चों को तभी प्राप्त हो सकते हैं, जब उन्हें उस जाति की वस्तुओं के अनेक सूक्ष्म भाव ज्ञात हों; उन्होंने उस जाति की अनेक वस्तुओं की परीक्षा और पारस्परिक तुलना की हो और तत्पश्चात् ऐसे साधारण गुण और धर्म चुनकर मन में एकत्र कर लिये

हों, जो उस जाति के सम्पूर्ण व्यक्तियों में पाये जायँ अथवा सर्वसाधारण व्यक्तियों में व्याप्त हों। तात्पर्य कहने का यह है कि जब तक बच्चों में किसी वस्तु की जाति के साधारण या सामान्य भाव और विभाव न हों तब तक उनसे किसी पदार्थ या व्यक्ति की परिभाषा पूछना भूल है।

बहुत से शिक्षक जो इस नियम को नहीं समझते या जानते हैं बच्चों से अनेक वस्तुओं की परिभाषाएँ उन वस्तुओं के साधारण भाव उत्पन्न करने के पूर्व ही पूछा करते हैं। परिणाम यह होता है कि बच्चे परिभाषाएँ कहने में असमर्थ होते हैं। वे अध्यापक के भय के मारे पुस्तकों में दी हुई परिभाषाओं को तोते की नाईं बिना समझे-बूझे रटने लगते हैं। परिभाषाओं को बिना समझे-बूझे कण्ठाग्र करने से बच्चों की स्मरण-शक्ति पर अनुचित बोझ पड़ता है। इस कारण उनकी स्मृति में विकार पैदा हो जाता है। वे बहुत सी बातों को स्मरण नहीं रख सकते।

अवलोकन के अध्याय में हम यह बतला चुके हैं कि प्रारम्भिक दशा में बच्चों को केवल जातिवाचक और व्यक्तिवाचक भाव होते हैं। अर्थात् वे समस्त रूप में पदार्थों या व्यक्तियों को देखा करते हैं। वे उनकी बुद्ध्यात्मक व्याख्या नहीं कर सकते। विभाव अर्थात् साधारण भाव में भी जातिवाचक तथा व्यक्तिवाचक भाव अवश्य सम्मिलित होते हैं; क्योंकि विभाव की दशा में हम केवल वस्तुओं

के गुणों और धर्मों को ही विचार में नहीं लाते; किन्तु वस्तुओं की जाति को भी ध्यान में लाते हैं, जिसमें कि वे गुण और धर्म होते हैं। इससे स्पष्ट है कि विभाव के दो अर्थ होते हैं। प्रथम तो किसी जाति के मुख्य-मुख्य गुण या धर्म और द्वितीय वह जाति स्वयं ही। प्रथम अर्थ को Connotation और द्वितीय अर्थ को Denotation कहते हैं। इससे स्पष्ट है कि Connotation को ही विभाव अर्थात् साधारण भाव कहते हैं और Denotati n का ही दूसरा नाम Recept है। अर्थात् Connotation और Denotation मिलकर एक सामान्य या साधारण भाव बनाते हैं। साधारण भाव को शब्दों में प्रकट करने को ही परिभाषा कहते हैं, जैसा पहले बता चुके हैं।

निर्णयन और विभावना का सम्बन्ध

विभाव प्राप्त करने की क्रिया में भी हमको अनेक सूक्ष्म भावों, व्यक्तिगत भावों तथा जाति-बोधक भावों में परस्पर तुलना करनी पड़ती है। तत्पश्चात् हम ऐसे भावों को चुन लेते हैं, जो किसी जाति की सम्पूर्ण वस्तुओं में व्याप्त हों। कहने का सारांश यह है कि प्रत्येक विभाव प्राप्त करने में हमें निर्णयन की शरण लेनी पड़ती है। यह तो पहले ही बतला चुके हैं कि निर्णयन करने में हम किसी दो या अधिक विभावों को चुन लेते हैं और उनमें पारस्परिक तुलना करने के पश्चात् सिद्धान्त निश्चित करते हैं। यानी

विभावों के विना निर्णयन नहीं हो सकता; एवं निर्णयन के विना विभाव नहीं हो सकते। विभाव और निर्णयन की क्रियाओं में भेद केवल इतना ही है कि निर्णयन में साधारण भावों में सादृश्यताओं या विपरीतताओं की पारस्परिक तुलना करके हम अपनी सम्मति निश्चित करते हैं; किन्तु विभाव में हम अनेक सूक्ष्म भावों, व्यक्तिगत तथा जातिगत भावों की परस्पर तुलना कर अपनी सम्मति द्वारा ऐसे सामान्य गुणों और धर्मों को निश्चित करते हैं, जो किसी जाति के सम्पूर्ण व्यक्तियों में व्याप्त हों: अर्थात् निर्णयन की मानसिक क्रिया विभाव मानसिक क्रिया से कुछ अधिक क्लिष्ट और बढ़ी-बढ़ी होती है। साथ ही साथ उनमें यह भेद भी है कि निर्णयन की क्रिया में सूक्ष्म ज्ञान विभाव की क्रिया से अधिक प्रधान होता है, क्योंकि विभाव स्थापित करने में वस्तुओं के व्यक्तिगत गुणों का अवलोकन कर उनको त्याग करना पड़ता है, किन्तु निर्णयन में अधिकांश अत्यन्त सूक्ष्म भावों का केवल प्रत्याहार तथा अनुगम करना पड़ता है।

फलितार्थ

विभावः—विभाव स्थापित करने में मन को ये क्रियाएँ करनी पड़ती हैं:—

(१) एक जाति या वर्ग की अनेक वस्तुओं, पदार्थों और व्यक्तियों की परीक्षा करना।

(२) उन वस्तुओं, पदार्थों और व्यक्तियों की पारस्परिक तुलना करना और सादृश्यताओं तथा विपरीतताओं को जानना।

(३) उन वस्तुओं, पदार्थों और व्यक्तियों के व्यक्तिगत गुणों या धर्मों को छोड़ देना।

(४) उन वस्तुओं, पदार्थों और व्यक्तियों के ऐसे सूक्ष्म भाव अथवा सामान्य गुण या धर्म चुन लेना जो मिलकर साधारण भाव बनावें।

(५) तत्पश्चात् साधारण भाव को शब्दों में प्रकट करना।

शिक्षा-विधि के पाँच अंग (हरबर्टाचार्य के आधार पर।)

ऊपर लिखी पाँच क्रियाएँ अत्यन्त ध्यान देने योग्य हैं; क्योंकि उनको शिक्षा प्रदान करने में हम अति उच्च आसन देते हैं। हरबर्टाचार्य ने इन पाँचों क्रियाओं को शिक्षा-प्रणाली में भली भाँति प्रधानता दी है और वास्तव में देनी भी चाहिए; क्योंकि इन्हीं पाँचों क्रियाओं द्वारा मनुष्य और जानवर में भेद जाना जा सकता है। मनुष्य और जानवर का भेद अवलोकन के अध्याय में बताया गया है। हरबर्टाचार्य ने ऊपर लिखी पाँचों क्रियाओं के आधार पर शिक्षा-विधि को पाँच अंगों में विभक्त किया है और उन पाँचों अंगों का इस प्रकार नामकरण किया है:—

(१) प्रथम विधि का नाम प्रस्तावना (Introduction या Preparation) रक्खा है।

(२) द्वितीय का नाम मूल पाठ या प्रकाशन (Presentation) रक्खा है।

(३) तृतीय का तुलना (Comparison) रक्खा है।

(४) चतुर्थ का अनुगम (Generalization) ।

(५) पञ्चम का प्रयोग (Application) ।

अब हम यह देखेंगे कि हरवर्टाचार्य के बनाये हुए पाँचों अंग तथा 'भेद की रीति', 'समानता की रीति' और विभाव स्थापित करने में जो पाँचों मानसिक क्रियाएँ हैं, वे परस्पर किस प्रकार समान या विपरीत हैं।

कल्पना करो कि अध्यापक को चतुर्भुज-क्षेत्र का ज्ञान कराने के लिये हरबर्टाचार्य की विधि का प्रथम अंग यानी प्रस्तावना का तात्पर्य यह है कि स्थूल से सूक्ष्म की ओर चलना चाहिए, अथवा ज्ञात से अज्ञात की ओर चलना चाहिए। अतः हरबर्टाचार्य के मतानुसार प्रथम बच्चों से विविध प्रकार की ज्ञात वस्तुओं या उदाहरणों का अवलोकन कराया जाता है। विभाव के स्थापित करने में भी बच्चों को अनेक प्रकार की ज्ञात वस्तुएँ एक या भिन्न-भिन्न जाति की अवलोकन के निमित्त दी जाती हैं। 'भेद की रीति' भी इसी सिद्धान्त का समर्थन करती है कि

किसी वस्तु का ज्ञान कराने में प्रथम अनेक जानी हुई सदृश या विपरीत वस्तुओं का बच्चों से अवलोकन कराया जाय। इन तीनों नियमों के आधार पर यह कह सकते हैं कि प्रत्येक नवीन पाठ के पढ़ाने में प्रस्तावना (Introduction) अवश्य होनी चाहिए। प्रस्तावना के अनुसार चतुर्भुज-क्षेत्र का ज्ञान देने में पहले अध्यापक बच्चों को अनेक प्रकार की ज्ञात आकृतियाँ दिखाएगा और उनका अवलोकन करवाएगा, यथा:—तीन भुजावाली (त्रिभुज); चार भुजावाली (चतुर्भुज); चार से अधिक भुजावाली (बहुभुज) इत्यादि-इत्यादि। फिर वह बच्चों के सामने अनेक (अज्ञात) आकृतियाँ रक्खेगा; यानी वह बच्चों को अनेक प्रकार के चतुर्भुज-क्षेत्रों का अवलोकन कराएगा। (मूलपाठ यानी Presentation) (हरबर्टाचार्य की विधि के प्रथम दो अंग वास्तव में एक ही से हैं; किन्तु भेद केवल यही है कि प्रस्तावना में ज्ञात उदाहरण लिये जाते हैं और मूलपाठ या पाठ प्रकाशन में नवीन उदाहरण लिये जाते हैं। दोनों का प्रयोजन पाठ की तय्यारी से ही है।)

हरबर्टाचार्य की विधि का तृतीय अंग तुलना है। यानी प्रस्तावना तथा मूल पाठ के उदाहरण या वस्तुओं में पारस्परिक भेद या सादृश्यता ज्ञात करना। 'भेद की रीति' से भी बच्चे अनेक वस्तुओं या उदाहरणों को भेद या सादृश्यता की तुलना करने के पश्चात् ज्ञात करते हैं। विभाव

स्थापित करने में भी मन को विविध वस्तुओं या उदाहरणों की पारस्परिक तुलना करनी पड़ती है। अतः अब अध्यापक बच्चों से भिन्न-भिन्न प्रकार के चतुर्भुज-क्षेत्रों की पारस्परिक तुलना करवाएगा; यथाः—(१) समानान्तर चतुर्भुज-क्षेत्र, विषमकोण सम चतुर्भुज-क्षेत्र, आयताकार चतुर्भुज-क्षेत्र, वर्गाकार चतुर्भुज-क्षेत्र, समलम्ब चतुर्भुज-क्षेत्र और समद्विबाहु समलम्ब चतुर्भुज-क्षेत्र की और साधारण चतुर्भुज-क्षेत्रों की पारस्परिक तुलना करवाएगा। तुलना का यह परिणाम होगा कि बच्चे एक सी आकृतियों का मन ही मन में अलग समूह बनाएँगे और भिन्न-भिन्न आकृतियों में निम्न-लिखित बातों को देखेंगे। 'समानता की रीति' में भी एक जाति या वर्ग की भिन्न-भिन्न गुणोंवाली वस्तुओं की तुलना कराई जाती है।

(१) किसी-किसी चतुर्भुज क्षेत्र की तो आमने-सामने की भुजाएँ बराबर तथा समानान्तर हैं।

(२) किसी-किसी चतुर्भुज-क्षेत्र की भुजाएँ न तो बराबर हैं और न समानान्तर ही।

(३) किसी-किसी चतुर्भुज-क्षेत्र की दो भुजाएँ केवल समानान्तर हैं।

(४) किसी-किसी चतुर्भुज-क्षेत्र की सब भुजाएँ बराबर भी हैं और समानान्तर भी। इत्यादि-इत्यादि।

हरबर्टाचार्य की विधि का चतुर्थ अंग अनुगम वा प्रत्याहार

है (Generalization) विभाव या 'भेद की रीति' में भी तुलना के पश्चात् मन को अनुगम वा प्रत्याहार करना पड़ता है। अनुगम वा प्रत्याहार करने से बच्चे व्यक्तिगत गुणों या धर्मों को त्याग देंगे और वे ऐसे सामान्य गुण या धर्म चुन लेंगे, जो चतुर्भुज-क्षेत्र जाति के सम्पूर्ण और सर्वसाधारण चतुर्भुज-क्षेत्रों में व्याप्त हों; यथाः—चतुर्भुज-क्षेत्र तो अवश्य होता है, किन्तु वह चार सीधी रेखाओं से घिरा होता है। इस प्रकार की सामान्य भावना वे (बच्चे) अपने मन में निश्चित कर लेंगे। अब यदि अध्यापक बच्चों से पूछे कि चतुर्भुज-क्षेत्र क्या होता है ? या किसे कहते हैं ? तो वे तुरन्त चतुर्भुज-क्षेत्र की शुद्ध परिभाषा कह देंगे। अर्थात् उसके सामान्य गुणों या धर्मों का शब्दों में वर्णन कर देंगे। (पाठकगण यदि किंचित् समय के लिए सोचें, तो उन्हें विदित होगा कि जब तक बच्चों में साधारण भाव उत्पन्न न किया जाय, तब तक उनसे परिभाषा का पूछना व्यर्थ प्रतीत होता है।)

नोटः—तनिक इस बात पर भी विचार कीजिए कि यदि हमको किसी भी वस्तु का साधारण भाव या विभाव प्राप्त है, तो हम उस वस्तु को उस पर किंचित् दृष्टि डालने से ही पहचान लेते हैं और उसका तुरंत साधारण भाव अपने मन में बना लेते हैं। यथा, दूर से छाते, गाय, मनुष्य, या खाट का उसे बिना पूरा देखे ही यह निश्चित

कर लेते हैं कि वह छाता है, गाय है, मनुष्य है, या खाट है, इत्यादि-इत्यादि। इस प्रकार हम सर्वदा अपने साधारण भावों का प्रयोग करते ही रहते हैं। यही दशा बच्चों की भी होती है। वे भी अपने साधारण भावों का प्रयोग रात-दिन किया ही करते हैं। ज्यों-ज्यों साधारण भावों का अधिक प्रयोग किया जाता है, त्यों-त्यों वे अधिक पुष्ट होते जाते हैं और समय पड़ने पर सुगमता तथा सरलता से स्मृति में उपस्थित हो जाते हैं। किसी भी कार्य को बार-बार दोह-राने से वह सहज ही में स्मृति में आ जाता है। अतः इस नियम को दृष्टि में रखते हुए हरबर्टाचार्य ने अपनी विधि में प्रयोग यानी अभ्यास रक्खा है।

प्रयोग के नियम को ध्यान में रखते हुए अध्यापक बच्चों से अनेक चतुर्भुजों को पहिचनवाएगा और खिचवाएगा ताकि उनके विभाव अधिक पुष्ट हों और सरलता से समय पड़ने पर स्मृति में आ जायँ।

फलितार्थ

निर्णयः—निर्णय में मन को दो क्रियाएँ करनी पड़ती हैं—

(१) विविध सामान्य भावों की तुलना करना।

(२) उन विभावों की तुलना करने के पश्चात् सम्मति देकर सिद्धान्तों का निश्चित करना।

नोटः—हमने निर्णय का वर्णन प्रत्यक्ष उपलम्भन तथा कल्पना के पश्चात् किया है। इससे पाठकों को यह न

समझ लेना चाहिए कि निर्णय-शक्ति का विकास बच्चों में नितान्त कल्पना आदि शक्तियों के पश्चात् ही होता है। छोटे बच्चे बहुधा यह कहा करते हैं कि हम उस वस्तु को न खाएँगे जो खट्टी होगी। वे अपने माँ-बाप से अपने लिए वे वस्तुएँ खरिद्वाते हैं, जो मीठी होती हैं। कड़्वी ओषधि खाने से बच्चे मुँह मोड़ा करते हैं। बच्चे बहुधा कहा करते हैं कि यह केला मीठा है; वह बर्फ़ की डली ठण्ढी है; यह दवाई कड़्वी है; इत्यादि। अनेक भावों में सादृश्यता या विपरीतता प्रकट करने में निर्णय-शक्ति से काम लेना पड़ता है। यदि छोटे बच्चों में निर्णय-शक्ति न होती, तो वे कैसे कह सकते थे कि यह केला मीठा है; वह बर्फ़ की डली ठण्ढी है; इत्यादि-इत्यादि। इससे स्पष्ट है कि उनमें निर्णय-शक्ति तो अवश्य उपस्थित है; किन्तु अभी अव्यक्त दशा में है। अतः उनके सिद्धान्त अपूर्ण होते हैं, अर्थात् उनकी व्याप्ति पूर्णरूप में नहीं होती। वे बहुधा एकदेशीय होते हैं। अध्यापक का काम है कि बच्चों की निर्णय-शक्ति को इस प्रकार साधे कि उनके सिद्धान्त स्पष्ट, व्यक्त, शुद्ध तथा पूर्ण हों, किन्तु सिद्धान्तों में ये गुण तभी हो सकते हैं, जब उनके प्रत्यक्षों, उपलम्भनों, कल्पनाओं तथा विभावों में भी शुद्धता, स्पष्टता, पूर्णता तथा व्यापकता हो। यह भी एक कारण है कि हमने इस पुस्तक के द्वितीय और तृतीय अध्यायों में ऐसे पाठों की सूचियाँ दी

हैं, जिनके पढ़ाने से बच्चों को विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के देखने, छूने, तोड़ने, चखने परस्पर तुलना करने का अच्छा अवसर मिले, ताकि उनके विभाव उचित हों । वे पाठ बच्चों में उचित विभाव तो उत्पन्न करते ही हैं; किन्तु साथ ही साथ उनकी निर्णय-शक्ति का थोड़ा बहुत विकास भी करते हैं।

निर्णय-शक्ति और विवेक-शक्ति में बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः अभी हम उन निबन्ध-पाठों की सूची नहीं देंगे जो निर्णय-शक्ति की उत्कृष्ट क्रियाओं के साधन में सहायता करते हैं। वरन् हम अब विवेक-शक्ति का वर्णन करेंगे और तत्पश्चात् उन पाठों की सूचियाँ देंगे, जिनसे बच्चों की निर्णय शक्ति तथा विवेक-शक्ति की उन्नति हो सकेगी।

विवेक-शक्तिः—निर्णयन से जो सिद्धान्त बालक निकालते हैं, वे बहुधा परिचित तथा एकदेशीय होते हैं; यथा:—मोहन अपना जूता पैर में पहनता है; गेहूँ को खाते हैं; आग घास को जला देती है; इत्यादि-इत्यादि ।

निर्णय-शक्ति के पश्चात् बालकों में इतनी उन्नति हो जाती है कि वे अनेक सिद्धान्तों को एकत्र कर लेते हैं और उनकी तुलना करते हैं। तुलना करने के पश्चात् वे विशेष-विशेष सिद्धान्तों से एक नया साधारण सिद्धान्त स्थापित करते हैं; यथाः—कल्पना करो कि बालकों ने निर्णयन के द्वारा ये सिद्धान्त निकाले हैं:—

(क) (१) मोहन अपना जूता पैर में पहनता है। (२) सोहन अपना जूता पैर में पहनता है। (३) रंगा अपना जूता पैर में पहनता है। (४) मेरा बाप अपना जूता पैर में पहनता है। (५) राम की माँ अपना जूता पैर में पहनती है। इत्यादि-इत्यादि। अब बालक इन सिद्धान्तों को अपने मन में एकत्र करते हैं और इन सबकी पारस्परिक तुलना करते हैं और यह साधारण सिद्धान्त निकालते हैं कि सब जूते पैर में ही पहने जाते हैं।

(ख) गेहूँ को खाते हैं; चावल को खाते हैं; मक्का को खाते हैं; जौ को खाते हैं; चना को खाते हैं; बाजरा को खाते हैं; इत्यादि-इत्यादि। इन सिद्धान्तों को बालक एकत्र करते हैं और उनकी पारस्परिक तुलना कर एक नवीन साधारण सिद्धान्त यह स्थिर करते हैं कि सम्पूर्ण अन्न खाद्य हैं।

(ग) मान लो बालकों ने ये सिद्धान्त निर्णय-शक्ति द्वारा स्थिर कर रक्खे हैं:—पानी ऊँचे धरातल से नीचे धरातल को बहता है; दूध भी ऊँचे धरातल से नीचे धरातल को बहता है; मट्ठा भी ऊँचे धरातल से नीचे धरातल को बहता है; पारा भी ऊँचे धरातल से नीचे धरातल को बहता है; तेल भी ऊँचे धरातल से नीचे धरातल को बहता है; शहद भी ऊँचे धरातल से नीचे धरातल को बहता है; इत्यादि-इत्यादि। बालक इन सबको एकत्र कर यह नया साधारण सिद्धान्त स्थिर

करते हैं कि सब द्रव पदार्थ ऊँचे स्थान से नीचे को बहते हैं ।

(य) एवम् बालक यह सिद्धान्त भी निकाल सकते हैं कि सब ऊँचे स्थान ठण्ढे होते हैं । अतः हिमालय पहाड़ ऊँचा होने के कारण ठण्ढा है, सम्पूर्ण द्रव पदार्थ ऊँचाई से निचाई को बहते हैं, मिट्टी का तेल भी द्रव पदार्थ है, इस कारण मिट्टी का तेल भी ऊँचे स्थान से नीचे को बहता है, सम्पूर्ण पौदों के बढ़ने के निमित्त पानी, वायु, गर्मी, मिट्टी और खाद की आवश्यकता होती है, गेहूँ का भी एक पौदा है, अतः उसके बढ़ने के लिए भी पानी, वायु, गर्मी, मिट्टी और खाद की आवश्यकता है ।

(क) भाग से लेकर (ग) भाग तक जो सिद्धान्त दिये गये हैं वे विशेष-विशेष निर्णयों से निश्चित किये गये हैं । वे सामान्य अथवा सर्वदेशीय हैं; क्योंकि उनकी व्याप्ति किसी विशेष वस्तु तक परिमित नहीं है, वे प्राकृतिक नियमों के अनुकूल हैं ।

(घ) भाग में जो सिद्धान्त निकाले गये हैं, वे स्थापित किये हुए साधारण सिद्धान्तों से निकाले गये हैं; यथाः— 'सब ऊँचे स्थान ठंढे होते हैं' यह एक प्रकृति का अटल नियम है । (यह प्राकृतिक नियम अब भी ऐसा ही है जैसा कि वह भूतकाल में था और भविष्य में भी वैसा ही रहेगा, जैसा कि अब है । इसकी सच्चाई सर्वदा एक सी

रहेंगी।) इस साधारण सिद्धान्त से बालकों ने यह विशेष सिद्धान्त निकाला है कि हिमालय पहाड़ ऊँचा है अतः वह भी ठंढा है। एवम् सम्पूर्ण द्रव पदार्थ ऊँचाई से निचाई की तरफ़ बहते हैं, यह एक साधारण सिद्धान्त है। उसके आश्रय पर बालकों ने यह विशेष सिद्धान्त निकाला है कि मिट्टी का तेल भी द्रव पदार्थ होने के कारण ऊँचाई से निचाई की ओर बहता है। इत्यादि-इत्यादि।

विवेक-शक्ति की परिभाषाः—जिस मानसिक शक्ति से मनुष्य विशेष सिद्धान्तों के अवलोकन तथा पारस्परिक तुलना करने से नवीन या सामान्य सिद्धान्त (जिनकी व्याप्ति अपरिमित तथा पूर्ण व सर्व देशीय हो) निकालता या स्थापित करता है; और जिस मानसिक शक्ति द्वारा वह साधारण (पूर्व-निश्चित) सिद्धान्तों के आधार पर विशेष सिद्धान्त निकालता है, उसको (मानसिक शक्ति को) विवेक-शक्ति कहते हैं।

उसके प्रकारः—पीछे दिये हुए उदाहरणों पर ध्यान देने से विदित होता है कि विवेक-शक्ति अर्थात् तर्कना-शक्ति दो प्रकार की होती है:—

निगमनात्मक विवेक वा तर्क (Deductive Reasoning) और आगमनात्मक विवेक वा तर्क (Inductive Reasoning)।

निगमनात्मक तर्क तथा आगमनात्मक तर्क में अन्तर।

आगमनात्मक तर्कः—विशेष-विशेष ज्ञात निर्णयों से स्थापित सिद्धान्तों के अवलोकन या तुलना करने के पश्चात् जिस शक्ति से नवीन या सामान्य सिद्धान्त निकाले जाते हैं, उसे आगमनात्मक विवेक-शक्ति कहते हैं या आगमनात्मक तर्कनाशक्ति कहते हैं। एवम् जिस तर्क या विवेक-शक्ति से साधारण सिद्धान्तों के आधार पर विशेष-विशेष सिद्धान्त निकाले जाते हैं, उसको निगमनात्मक विवेक-शक्ति या तर्कना-शक्ति कहते हैं। आगमनात्मक तर्कना-शक्ति की क्रिया को आगमनात्मक तर्क और निगमनात्मक तर्कना-शक्ति की क्रिया को निगमनात्मक तर्क कहते हैं। आगमनात्मक तर्क में बालकों के सामने अनेक ज्ञात उदाहरण रक्खे जाते हैं। वे उन उदाहरणों का अवलोकन करते हैं। उनकी पारस्परिक तुलना करते हैं और ऐसे नवीन तथा सामान्य सिद्धान्त निकालते हैं, जो पूर्ण, सर्वदेशीय, स्पष्ट तथा व्यक्त होते हैं। विपरीत इसके निगमनात्मक तर्क में अध्यापक बालकों के सामने प्रथम कोई एक साधारण सिद्धान्त रखता है और बालक उसका प्रयोग इस प्रकार करते हैं कि उसके आधार पर वे विशेष-विशेष सिद्धान्त निकालते हैं। यथाः—कल्पना करो कि अध्यापक को बालकों से यह साधारण सिद्धान्त निकलवाना है कि सब विशेषण किसी संज्ञा या सर्वनाम

के अर्थ में कोई विशेषता बतलाते हैं। मान लो कि बालकों ने पूर्व निर्णयों द्वारा ये विशेष-विशेष सिद्धान्त स्थिर कर रक्खे हैं कि (१) मोहन के बाल काले हैं; (२) यह घोड़ा लाल है; (३) वह कागज़ श्वेत है; (४) यह केला मीठा है; (५) राम की पुस्तक लाल है; (६) ताजमहल श्वेत पत्थर का बना है; (७) मेरी पुस्तक पुरानी है; (८) चाँदी भारी होती है; (९) रुई हलकी होती है; (१०) हमारी पाठशाला में अस्सी लड़के पढ़ते हैं; (११) गिलास में थोड़ा पानी है; (१२) यह लड़का बड़ा है; किन्तु वह छोटा है; (१३) मैं नाटा हूँ; (१४) तुम लालची हो; (१५) हम सावधान हैं; इत्यादि-इत्यादि। अध्यापक इन्हीं विशेष-विशेष सिद्धान्तों को बालकों के सामने श्याम-पट्ट पर दर्शाता है।

तत्पश्चात् वह बालकों से प्रश्नों द्वारा ऊपर लिखे सिद्धान्तों का अवलोकन कराता है। वह बालकों से पूछता है कि स्थूलाक्षर शब्दों का क्या लक्षण है? इस प्रकार वह बालकों से यह बात निकलवाता है कि स्थूलाक्षर शब्द या तो किसी संज्ञा के अर्थ में विशेषता प्रकट करते हैं या वे किसी सर्वनाम की विशेषता प्रकट करते हैं। अब अध्यापक छात्रों से इन सब निर्णयों को एकत्र करवाए और उनसे यह नवीन तथा साधारण सिद्धान्त निकल-

जाए कि विशेषण वे शब्द होते हैं, जो किसी संज्ञा या सर्वनाम के अर्थ में विशेषता प्रकट करते हैं। इस भाँति अध्यापक बालकों को विशेषण का विभाव देता है और उन्हीं की बुद्धि के ऊपर बोझ डालकर उन्हीं से विशेषण की परिभाषा निकलवाता है। जब अध्यापक इस रीति से, जिससे कि विशेषण का विभाव दिया है, बालकों के पढ़ाने में काम लेता है, तो कहते हैं कि वह आगमनात्मक रीति (Inductive Method or Analytic method) से पढ़ा रहा है।

ऊपर दर्शाई हुई आगमनात्मक रीति से अध्यापक ने बालकों से यह साधारण सिद्धान्त निकलवा लिया कि विशेषण वे शब्द होते हैं जो किसी संज्ञा या सर्वनाम के अर्थ में कोई विशेषता प्रकट करते हैं। अब अध्यापक बालकों से पूछता है कि निम्न-लिखित वाक्यों में हरी, बीमार, अन्धा, बहरा, कैसे शब्द हैं? इस प्रश्न को सुनकर बालक अपने मन में तर्क करते हैं और सोचते हैं कि जो शब्द किसी संज्ञा या सर्वनाम के अर्थ में विशेषता प्रकट करते हैं, वे विशेषण कहलाते हैं; और हरी, बीमार, अन्धा, बहरा, ऐसे शब्द हैं कि ये भी संज्ञाओं और सर्वनामों के अर्थ में विशेषता प्रकट करते हैं। अतः वे भी विशेषण हुए। यह सिद्धान्त अध्यापक ने बालकों से निगमनात्मक रीति (Deductive or Synthetic Method) से निकलवाया है।

वाक्यः—यह घास हरी है; मोहन बीमार है; सड़क पर एक अन्धा पुरुष चल रहा है; मेरा भाई बहरा नहीं है।

हमने बालकों के पढ़ाने की जो दो रीतियाँ अभी बतलाई हैं, उनका भेद तो पाठकों की समझ में आ गया होगा। अब प्रश्न यह उठता है कि हमें उनमें से किस रीति से काम लेना चाहिए ? इस प्रश्न का उत्तर नीचे दर्शाया गया है:—

यदि बालकों को किसी वस्तु की परिभाषा का बोध हो, तो हम उनको उस वस्तु का ज्ञान केवल परिभाषा कहकर सुना देने से करा सकते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि प्रथम बालकों में किसी वस्तु की परिभाषा का विभाव होना चाहिए। किन्तु किसी वस्तु का स्पष्ट और शुद्ध विभाव बालकों के मन में तभी होता है, जब कि उनसे अनेक ज्ञात उदाहरणों का अवलोकन कराया जाय; उन उदाहरणों की पारस्परिक तुलना कराई जाय; तथा उन उदाहरणों में वे सादृश्यता या विपरीतता के भावों को चुनकर मन में अलग-अलग रक्खें, जैसा कि विभावना के वर्णन में बताया गया है। इस प्रकार की क्रिया मन को तभी करनी पड़ती है जब कि आगमनात्मक रीति बरती जाती है। इससे स्पष्ट है कि जब अध्यापक को कोई नवीन विभाव बालकों के मन में जमाना हो, तो उसे आगमना-

त्मक रीति से काम लेना चाहिए; क्योंकि निगमनात्मक रीति तो तभी बरतनी चाहिए जब कि बालकों में किसी वस्तु का विभाव पहले ही से उपस्थित हो। (निगमनात्मक तर्क तभी हो सकता है जब कि साधारण सिद्धान्तों का पहले ही से ज्ञान हो।) "हम ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से पढ़ते हैं। किन्तु वह ज्ञान निरर्थक है, जिसको हम व्यवहार में नहीं ला सकते" यह नियम ध्यान में रखते हुए, कह सकते हैं कि किसी भी विभाव का होना उसी सीमा तक उचित है, जहाँ तक कि हम उस विभाव को प्रयोग में ला सकें। मान लो कि बालकों को विशेषण का विभाव तो हो गया है; किन्तु वे अभी उस दशा में हैं कि जब वे कोई नया वाक्य पढ़ते हैं, तो उसमें से विशेषणों को चुन नहीं सकते। अतः बालकों में कोई नया विभाव उत्पन्न करने के पश्चात् यह जान लेना परम आवश्यक है कि वे प्राप्त किये हुए विभाव को प्रयोग में ला सकते हैं या नहीं। विभावों को प्रयोग में लाने से उनकी पुष्टि होती है और वे स्मरण-शक्ति में डट जाते हैं। यही कारण है कि जिस कार्य को हम बार-बार करते हैं उसकी स्मृति पक्की हो जाती है।

तात्पर्य कहने का यह है कि जब कभी बालकों को कोई नवीन नियम या सिद्धान्त समझाना हो, तो प्रथम अध्यापक को आगमनात्मक रीति से काम लेना चाहिए। यथाः—

अध्यापक को बालकों को भिन्न का, भौगोलिक परिभाषाओं का, रेखागणित के किसी प्रयोग का, या व्याकरण के किसी नियम का, इत्यादि-इत्यादि का ज्ञान कराना है, तो उसे आगमनात्मक रीति से बालकों को पढ़ाना ठीक है; किन्तु यदि उसने कोई नवीन सिद्धान्त या नियम बालकों के हृदयस्थ करा दिया है, तो उसे यह अवश्य ज्ञात करना चाहिए कि बालक उसका प्रयोग भी कर सकते हैं या नहीं। अतः निगमनात्मक रीति से भी बालकों को अवश्य पढ़ाना चाहिए। निगमनात्मक रीति अध्यापक को तब प्रयोग में लानी चाहिए जब कि उसने आगमनात्मक रीति द्वारा किसी नवीन सिद्धान्त, परिभाषा, या नियम का विभाव बालकों के मन में बिठा दिया हो, अर्थात् जब कि अध्यापक को किसी नियम या सिद्धान्त का बालकों को अभ्यास कराना हो।

आरम्भ ही से निगमनात्मक रीति से काम लेने के दोष

जो लोग इस नियम को नहीं समझते वे आरम्भ ही से निगमनात्मक रीति से बालकों को पढ़ाने लगते हैं; यथाः—यदि उन्हें साधारण ब्याज निकालने का नियम बालकों को सिखाना है, तो वे उनको यह नियम रटवा देते हैं कि मूलधन को ब्याज की दर से तथा जितने समय का ब्याज निकालना है उस समय से गुणा करने और गुणनफल को सौ से भाग देने से इष्ट ब्याज निकल

आता है। बालक इस नियम को अपनी कापियों में इस प्रकार लिख देते हैं कि--

ब्याज = $\frac{\text{मू० ध० × ब्याज० द० × स०}}{१००}$ और वे बिना समझे-बूझे इस नियम के आधार पर अनेक ब्याज के प्रश्न जो कि उनकी अङ्कगणित की पुस्तक में दिये होते हैं निकाल लेते हैं। किन्तु बालक सैकड़ों ब्याज के प्रश्न हल करने पर भी यह नहीं समझते कि ब्याज निकालने में मूलधन को ब्याज की दर तथा समय से क्यों गुणा करते हैं और गुणनफल को १०० से क्यों भाग देते हैं। परिणाम क्या होता है? बालक सैकड़ों प्रश्न हल तो कर चुकते हैं, किन्तु उनकी विवेक-शक्ति का किंचित् भी विकास नहीं होता। यदि परीक्षा में किसी परीक्षक ने ऐसे प्रश्न पूछ दिये, जो बालकों की पुस्तक में नहीं आये हैं, तो बालक उनको हल नहीं कर सकते और अध्यापकगण यह उलहना करने लग जाते हैं कि परीक्षक की उनसे कुछ आँट थी, जिसके कारण उसने छाँट-छाँटकर ऐसे प्रश्न दिये हैं जो कि न तो बालकों की पुस्तक में कहीं आये हैं और न कभी उनसे निकलवाये गये हैं।

निगमनात्मक रीति के अनुसार प्रारम्भ ही से पढ़ाने में और भी दोष हैं; यथा:--बालक अपने काम में ध्यान नहीं देते। जिस काम में हम अपनी बुद्धि से काम नहीं लेते, वह

काम करने म हमारा मन घबड़ाने लगता है। यही कारण है कि किसी लेख की प्रतिलिपि या पुस्तक की नक़ल करने से हम उकताते हैं, किन्तु यदि हमें कोई ऐसा कार्य दे दिया जाय कि उसमें हमें अपनी बुद्धि से काम लेना पड़े, तो उस काम के करने में हमारा ध्यान भली भाँति लग जाता है। काम में ध्यान के न लगने से बालकों में अरुचि उत्पन्न हो जाती है। अरुचि उत्पन्न होने के कारण बालक कुछ भी नहीं सीख पाते और कोरे के कोरे ही रह जाते हैं।

यदि हमें बालकों को किसी वस्तु, नियम, सिद्धान्त, विभाव, या परिभाषा का ज्ञान कराना है, तो हमें आगमनात्मक रीति से काम लेना चाहिए; किन्तु जब हमें बालकों को किसी नियम या सिद्धान्त इत्यादि का अभ्यास कराना हो, तो निगमनात्मक रीति को व्यवहार में लाना उपयोगी है। मान लो कि अध्यापक ने आगमनात्मक रीति से अङ्कगणित का कोई नियम बालकों के मन में बैठा दिया है और अब वह निगमनात्मक रीति के सिद्धान्त पर बालकों को उस नियम-सम्बन्धी प्रश्न करने को देता है अर्थात् उस नियम का बालकों से अभ्यास कराता है, किन्तु किसी नियम पर अभ्यास देने में उसे यह बात विचार में रखनी चाहिए कि अभ्यास ऐसा लम्बा न हो कि बालक किसी कल या यन्त्र की तरह उन

प्रश्नों को विना सोचे-विचारे निकालते ही चले जायँ। अतः किसी नियम या नियमों का अभ्यास कराते समय भी अध्यापक को यह बात दृष्टि में रखनी चाहिए कि जिन प्रश्नों को बालक हल करें उनके करते समय वे प्रति घड़ी अपने मन में यही सोचा करें कि कहाँ पर जोड़ने, घटाने, गुणने या भाग देने की क्रिया होनी चाहिए। अतः ज्यों-ज्यों अभ्यास की अवधि लम्बी होती जाय, त्यों-त्यों प्रश्न कठिन होने चाहिए और उनमें जोड़ने, घटाने, गुणने और भाग देने की क्रियाओं का यथोचित सम्मिश्रण होना चाहिए।

आगमनात्मक रीति के प्रयोग में ध्यान देने योग्य बातें

नोटः—आगमनात्मक रीति द्वारा पढ़ाने में यह न समझ लेना चाहिए कि वस्तुतः सम्पूर्ण काम छात्रों के ऊपर ही लाद दिया जाना ठीक है। छात्र प्रत्येक काम को स्वतः नहीं कर सकते। संसार अनन्त कला-कौशलों तथा विज्ञानों से परिपूर्ण है। उन सबको यदि कोई भी पुरुष चाहे तो स्वतः नहीं ढूँढ़ सकता, किन्तु उनके विषय में उसे कुछ न कुछ जानना परम हितकर है; क्योंकि विना उनके ज्ञान के उसका काम चल नहीं सकता। अतः बालकों को कुछ न कुछ अवश्य बताना चाहिए। प्राचीन विचार की शिक्षा का अर्थ यही है कि अध्यापक के अन्दर जो कुछ विद्या है उसे वह बालकों के अन्दर ठूँस दे,

यह अनुचित है। अर्वाचीन विचार की शिक्षा का उद्देश्य यह है कि बालकों के अन्दर जो कुछ भाव हैं, उनको इस प्रकार, उसके अन्दर से बाहर निकालना चाहिए कि जो कुछ उन्हें बतलाया जाय, वह उनके पूर्व भाव या ज्ञान से सम्बद्ध हो। जो शिक्षक इस सिद्धान्त को नहीं समझते वे एक उपदेशक की नाईं अपने सम्पूर्ण विचारों को बालकों के प्रति वर्णन करते ही जाते हैं; किन्तु वे यह जानने की तिलभर भी चिन्ता नहीं करते कि जो कुछ वे बक रहे हैं, उसे बालक समझ भी रहे हैं या नहीं। इस प्रकार की रीति को जो शिक्षक वर्तते हैं वे बकते-बकते स्वयम् भी थक जाते हैं और बालकों को भी थका डालते हैं, क्योंकि उनको (बालकों को) कई घंटे केवल श्रवण-इन्द्रिय से ही काम लेना पड़ता है। इस अनुचित थकान का परिणाम यह होता है कि छात्र अध्यापक की पढ़ाई से कुछ भी लाभ नहीं उठा सकते। बहुत से प्रवीण अध्यापक जो इस बात को समझते हैं कि पढ़ना-लिखना तो छात्र का काम है, हमारा काम तो केवल उन्हें मार्ग दिखाने का है, वे छात्रों की बुद्धि पर यथोचित भार डाल देते हैं और यथा-सम्भव उन्हीं की बुद्धि द्वारा नवीन-नवीन नियम या सिद्धान्त निकलवाया करते हैं। वे (शिक्षक) उनको केवल इतनी सहायता भर दे देते हैं कि उनकी रुचि काम में लगी रहे और वे थक न जायँ। ऐसे प्रवीण अध्यापक

स्वयम् तो थोड़ा काम करते हैं, किन्तु छात्रों से अधिक काम लेते हैं। छात्रों से अधिक काम तभी लिया जा सकता है, जब कि वे यह जानते हों कि अमुक काम करने से हमें कोई विशेष लाभ है। जो कुछ छात्रों को सिखाया जाय या बढ़ाया जाय, उसका उद्देश्य उन्हें अवश्य विदित हो जाना चाहिए। छात्रों का ध्यान काम की ओर लगाने का एक बड़ा साधन यह भी है कि जो कुछ काम छात्रों से कराया जाय, वह उनके वास्तविक जीवन से सम्बद्ध किया जाय। जिससे उन्हें यह धारणा हो कि अमुक कार्य करने से हम अपने जीवन में अमुक-अमुक लाभ उठाएँगे।

बालकों से जो काम कराया जाय, वह उनके वास्तविक जीवन से सम्बद्ध हो।

अनुभव से सिद्ध है कि हम उसी काम में अधिक ध्यान या रुचि लगाते हैं, जिसे हम समझते हैं कि अपने जीवन में भी प्रयोग कर सकते हैं। इस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक काम जो बालकों से कराया जाय, वह ऐसा होना चाहिए कि उसका उनके जीवन से सम्बन्ध हो।

अंकगणित के घंटे में बालकों को ऐसे प्रश्न हल करने को देने चाहिए, जिनसे कि उन्हें प्रतिदिन काम पड़ता हो; यथा:—लेनदेन-विषयक प्रश्न। एवम् भूगोल में बालकों को ऐसी बातें सिखानी चाहिए कि जिनका प्रभाव मनुष्य-जीवन पर पड़ता हो; यथा:—किसी देश या स्थान की प्राकृतिक बनावट, उस देश या स्थान की जल-वायु, उपज,

व्यवसाय, इत्यादि-इत्यादि। छोटी-छोटी नदियों के नाम, छोटे-छोटे समुद्रों के नाम, छोटे-छोटे पर्वतों के नाम इत्यादि रटवाने से क्या लाभ? एवम् इतिहास में साधारण संवत् या मितियों को सिखाने से क्या लाभ? अन्य विषयों में भी यही सिद्धान्त लागू है। तात्पर्य यह है कि (१) शिक्षक को चाहिए कि वह बालकों को उतना ही बताये, जितने के बिना वे (बालक) आगे नहीं चल पाते; (२) शिक्षक को छात्रों से वही काम कराना चाहिए, जो उनके जीवन में कुछ लाभ पहुँचाये; (३) शिक्षक को चाहिए कि वह छात्रों के हृदय में यह भाव उत्पन्न कर दे कि पढ़ना-लिखना उनका ही काम है, अध्यापक तो केवल उनका एक मित्र, सहायक या मार्ग-दर्शक है; (४) शिक्षक को चाहिए कि वह छात्रों को ऐसा काम करने को दे कि वे अन्वेषणशील बनें।

फलितार्थ

(१) विवेक-शक्ति के साधन में दोनों प्रकार की रीतियों से काम लेना चाहिए। यानी आगमनात्मक रीति से भी काम लेना चाहिए और निगमनात्मक रीति से भी।

(२) आगमनात्मक रीति से काम लेने में निम्न-लिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए।

(क) विशेष-विशेष उदाहरणों की परीक्षा छात्रों से करवाना (उदाहरण बहुत होने चाहिए और ऐसे होने चाहिए जो छात्रों को पहले ही से ज्ञात हों।)

(ख) उचित प्रश्नों द्वारा उन उदाहरणों के अवलोकन तथा परीक्षा से छात्रों को नवीन-नवीन साधारण नियम या सिद्धान्त निकलवाने चाहिए।

(ग) छात्र जो नियम या सिद्धान्त निकालें, उसे उन्हें अपने शब्दों में प्रकट करना चाहिए।

(घ) जो उदाहरण परीक्षा के निमित्त चुने जायँ, वे अनेक भाँति के होने चाहिए।

(ङ) छात्र जो नवीन सिद्धान्त या नियम निकालें, वे शुद्ध, स्पष्ट तथा व्यापक होने चाहिए।

(३) निगमनात्मक रीति से काम लेने में निम्न-लिखित बातें ध्यान में रखनी चाहिए:—

(क) आगमनात्मक रीति से जो सिद्धान्त या नियम स्थापित किये गये हों, उनको विशेष उदाहरणों के समझने में छात्रों से प्रयोग करवाना चाहिए, ताकि नवीन नियम या सिद्धान्त की पुष्टि हो।

(ख) निगमनात्मक रीति के आधार पर जो काम अभ्यास कराने के उद्देश्य से छात्रों को दिया जाय, वह इतना लम्बा न हो जाय कि बालक उसे विना सोचे-समझे करने लगें।

(ग) अभ्यास देने में ऐसे उदाहरण छाँटने चाहिए जिनका सम्बन्ध छात्रों के जीवन से हो, ताकि उनकी रुचि काम करने में लगी रहे।

(४) छात्रों में यह भाव उत्पन्न कर देना चाहिए कि पढ़ना-लिखना उनका ही काम है। शिक्षक तो उनका केवल एक सहायक है।

(५) छात्र जो कुछ कहें, उसका उन्हें कार्य-कारण द्वारा समर्थन करवाना चाहिए। प्रारम्भ में, जब उनकी निर्णय या विवेक-शक्ति में कमी थी, तब कार्य-कारण का पूछना वृथा था। किन्तु निर्णय और विवेक-शक्तियों का विकास होने पर कार्य-कारण का पूछना आवश्यक है।

नोटः—अभी तक तो हमने यह दर्शाया है कि निर्णय और विवेक-शक्तियाँ क्या वस्तु हैं और वे किन-किन सिद्धान्तों पर आश्रित हैं। अब हम यह बताएँगे कि निर्णय तथा विवेक-शक्ति के साधन के निमित्त निबन्ध-शिक्षा देने में कौन-कौन और कैसे-कैसे पाठ होने चाहिएँ। निर्णय और विवेक-शक्तियों द्वारा ही वास्तविक मनुष्यता प्राप्त होती है। जिस मनुष्य में इन दोनों शक्तियों का अभाव होता है, वह भलाई-बुराई को नहीं समझ सकता। वह कार्य-कारण से अनभिज्ञ रहता है। वह जानवरों की नाईं अपना आगा-पीछा नहीं सोच सकता। वह किसी बात के विषय में अपनी सम्मति नहीं दे सकता। वह यह नहीं जान सकता कि किस काम को करना चाहिए और किसको नहीं। अतः वह जानवरों की नाईं मनुष्य-समाज में अपना व्यवहार प्रकट करता है।

निर्णय तथा विवेक-शक्तियों के उचित विकास के निमित्त निबन्ध-पाठों की सूची:—

(नोट:—छोटी कक्षाओं के पढ़ाने में तो अध्यापक का यह उद्देश्य होता है कि बच्चों को उत्तम प्रत्यक्ष या उपलम्भन होने के अतिरिक्त उन्हें उत्तम प्रतिमाएँ भी हों; किन्तु ज्यों-ज्यों बच्चे ऊँची श्रेणियों में पहुँचते हैं, त्यों-त्यों उनकी शिक्षा स्थूल से सूक्ष्म की ओर जानी चाहिए। अतः हाई स्कूल तथा मिडिल वर्नाक्यूलर स्कूल की सर्वोच्च श्रेणियों में अर्थात् हाई स्कूल की ९वीं व १०वीं और मिडिल वर्नाक्यूलर स्कूल की ७वीं कक्षा में विशेषतः काल्पनिक निबन्ध लिखवाए जाने चाहिए, यानी बालकों को ऐसे निबन्ध लिखने चाहिए, जिनके लिखने में उन्हें अनेक निर्णयन या तर्क-वितर्क करने पड़ें; तथा उन्हें प्रत्येक दशा में कार्य-कारणों का प्रयोग करना पड़े। यथा:—

(क) किसी विशेष लक्ष्य को मन में रखकर निबन्ध लिखना।

(ख) किसी वस्तु या विषय की हानि-लाभ पर निबन्ध लिखना।

(ग) (Absurdities) अनुचित बातों पर आलोचना करना।

(घ) वाक्यों के रूप-परिवर्त्तन का अभ्यास करना।

(ङ) निबन्ध-लिखने में लोकोक्तियों और महावरों का प्रयोग करना।

(च) कठिन सूक्तों का अर्थ लिखना या उनकी व्याख्या करना। इत्यादि-इत्यादि।

पीछे लिखी हुई छः बातों का विवरण:—

(क) विवरण:—

(१) इस विषय पर एक निबन्ध लिखो कि तुमको यदि ५) रु० दिये जायँ, तो तुम उनको किस प्रकार व्यय करोगे ?

(२) यदि तुम्हें एक मोटर दी जाय, तो तुम उसका क्या प्रयोग करोगे ?

(३) यदि तुम्हारी टाँगें काट दी जायँ, तो तुम इधर-उधर जाने के लिए क्या-क्या युक्तियाँ करोगे ?

(४) यदि तुमको किसी पाठशाला का प्रधान अध्यापक बना दिया जाय, तो तुम पाठशाला का प्रबन्ध किस प्रकार करोगे ?

(५) यदि तुम्हारे पंख लगा दिये जायँ, तो तुम किन-किन देशों का भ्रमण करोगे ? जिन देशों का तुम भ्रमण करोगे, उनमें से किसी एक का वर्णन लिखो ; इत्यादि-इत्यादि।

नोट:—उपर्युक्त शीर्षकों पर बालक निबन्ध-लिखते समय अनेक प्रकार की कल्पनाएँ करेंगे; किन्तु जो कुछ कल्पनाएँ वे करेंगे उनका सम्बन्ध किसी एक विशेष लक्ष्य से होगा अर्थात् वे मनमानी घटनाएँ और वृत्तान्त तो

अवश्य लिखेंगे, पर वे सब इस विचार से लिखी जायँगी कि कहीं वे लक्ष्य के बाहर न हो जायँ। इस तरह के निबन्ध लिखने में उन्हें अपनी विवेक-शक्ति से काम लेना पड़ेगा। वे (बालक) यही सोचेंगे कि जो कुछ कल्पनाएँ वे कर रहे हैं और लिख रहे हैं, वे कदाचित् अप्रासंगिक तो नहीं हैं; यथाः—

जब बालक ५) रु० के व्यय करने के ऊपर लेख लिखेंगे, तो वे अवश्य इन बातों को ध्यान में रक्खेंगे कि जो वस्तु वे मोल लें उसका मूल्य कहीं ५) रु० से अधिक न हो या जो कुछ वे ख़र्च करें, उसका मीज़ान ५) रु० से अधिक न बैठे।

(ख) विवरणः—

(१) वाष्पयान के हानि-लाभ पर निबन्ध लिखना।

(२) व्यायाम के लाभ पर निबन्ध लिखना।

(३) स्त्री-शिक्षा के लाभ।

(४) नौकरी पेशा अच्छा है या वाणिज्य।

(५) भाग्य बड़ा है या उद्योग। (तदबीर बड़ी कि तक़दीर)

(६) इतिहास पढ़ना अच्छा है या भूगोल।

(७) धन बड़ा है या विद्या।

(८) धूम्रपान से हानियाँ।

(९) बुद्धिमान् होना अच्छा है या बलवान्।

(१०) ग्राम्य-जीवन उत्तम है या नागरिक।

(११) अकबर बादशाह (सम्राट्) और सम्राट् औरंगज़ेब की तुलना।

(१२) वर्णाश्रम के लाभ और हानियाँ।

(१३) समुद्र के लाभ।

(१४) एकता से लाभ।

(१५) ब्रह्मचर्य के लाभ।

(१६) आलस्य से हानियाँ।

(१७) बाल-विवाह से हानियाँ।

(१८) समाचारपत्रों के लाभ।

(१९) दया से लाभ।

(२०) अभिमान से हानियाँ। इत्यादि-इत्यादि।

नोटः—ऊपर लिखे विषयों पर निबन्ध-लिखते समय बालक अनेक सदृश या विपरीत भावों की पारस्परिक तुलना करेंगे और जिन-जिन निर्णयों को वे निश्चित करेंगे, उनको वे अपनी कापियों में लिखेंगे। इसके अतिरिक्त वे अपने मन में अनेक तर्क-वितर्क भी करेंगे। इस प्रकार उनको अपनी निर्णय तथा विवेक-शक्तियों को व्यवहार में लाना पड़ेगा।

(ग) विवरणः—भिन्न-भिन्न अनर्थकताओं पर आलोचना करना; यथाः—निम्न-लिखित सूक्तों को पढ़ो और उनमें जो अनर्थकताएँ हों, उनको कारण-सहित अपनी कापियों में लिखोः—

आज से ८ बरस पहले की बात है कि १५ जनवरी, सन् १९१४ के ठीक १२ बजे हवड़ा एक्सप्रेस बड़ी तेज़ी के साथ आगरा छावनी स्टेशन से होकर ६० मील प्रति घंटे की रफ़्तार से जा रहा था । एक युवा पुरुष जिसकी मूछें भी अभी नहीं निकली थीं, गाड़ी में से प्लेटफ़ार्म पर उतर पड़ा । उसके दोनों हाथ अपने कोट की जेब में थे, किन्तु दाहिने हाथ में वह एक भारी ट्रंक यानी सन्दूक़ लिये जा रहा था और बायें हाथ से अपनी मूछों पर ताव दे रहा था । आकाश बादलों के न होने से स्वच्छ तथा उज्ज्वल था । मूसलाधार पानी बरसने के कारण उस युवक ने अपना बरसाती कोट उतार लिया और स्टेशन के बाहर सड़क पर चलने लगा ; इत्यादि-इत्यादि ।

(२) एक किसान बड़ा दीन और परिश्रमी था । यदि वह २ घंटे काम करता तो ८ घंटे का विश्राम लेता था । उसके सैकड़ों बीघे खेत थे । एक दिन वह २० जून को प्रातःकाल उठा और गेहूँ बोने के लिए अपने खेत में गया । उसने गेहूँ बोया और अपने घर चला आया । गेहूँ बोने के दिन से लेकर और २ महीने तक बरसा एक बूँद भी न हुई । गेहूँ बोने के तीन मास पश्चात् वह खेत में यह देखने गया कि गेहूँ किस प्रकार उगा है । गेहूँ बड़ी धूम-धाम के साथ उग रहा था । वह पककर काटने के योग्य तैयार था !

(३) एक धनवान् लड़का था। वह नाटक देखना चाहता था, किन्तु उसके पास पैसे नहीं थे। वह नाटक देखने चला ही गया। उसने अपने मन में सोचा कि जब कोई चौकीदार उससे टिकट माँगेगा, तो वह झट से पीछे को लौटने लगेगा। उसे लौटते देख चौकीदार समझेगा कि यह लड़का नाटक-भवन से बाहर को जा रहा है, अन्दर को नहीं। इसलिए फाटक पर का चौकीदार मुझसे टिकट दिखाने को नहीं कहेगा। इत्यादि-इत्यादि।

(घ) विवरण:--वाक्यों के रूप परिवर्तन का अभ्यास कराना ; यथा:—

(१) निषेधात्मक वाक्यों को विध्यात्मक बनाना (किन्तु अर्थ-भेद न हो)।

(२) विध्यात्मक वाक्यों को निषेधात्मक वाक्यों में बदलना (किन्तु अर्थ-भेद न हो)।

(३) अनेक वाक्यों को अर्थ-भेद किये बिना प्रश्न-सूचक बनाना।

(४) साधारण वाक्यों को इस प्रकार मिलाना कि उनसे मिश्र वा संयुक्त वाक्य बन जायँ।

(५) संयुक्त या मिश्रित वाक्यों को इस प्रकार परिवर्त्तन करना कि उनसे कई एक साधारण वाक्य बन जायँ।

(६) आश्रित उपवाक्यों को वाक्यांश में या केवल

एक शब्द में परिवर्त्तन करना तथा वाक्यांश या एक शब्द का उपवाक्य में बदलना । इत्यादि-इत्यादि ।

(ङ) वाक्यों में मुहावरों का प्रयोग करना ; यथाः--
कान खड़े होना ; कान काटना ; कान का कच्चा होना ; मुँह काला होना ; आँख मिलाना ; दम भरना ।

(च) समयानुकूल लोकोक्तियों का प्रयोग करना; यथाः--सौ सुनार की और एक लोहार की; जब लग साँस तब लग आस; दुविधा में दोनों गये, माया मिली न राम; इत्यादि-इत्यादि ।

(छ) कठिन सूक्तों का साधारण तथा सरल भाषा में अर्थ करना या उनकी व्याख्या करना; यथाः--

(१) वास्तव में उस समय अयोध्या की श्री अन्तर्हित हो गई थी। अयोध्या के सौभाग्य का भाण्डार लुट गया था। त्रिलोक-विश्रुत-कीर्ति महाराज दशरथ ने पुत्र-शोक से प्राण त्याग दिये थे। अभिषेक मञ्च पर बैठनेवाले ज्येष्ठ राजकुमार विधाता के शाप से भिखारियों के भेष से वन को जा चुके थे। आभूषण और सखियों को छोड़कर, अयोध्या की राजवधू भिखारिनों की तरह स्वामिसङ्गिनी हो चुकी थी। जिसके लम्बे और पुष्ट बाहु, सब प्रकार के आभूषण धारण करने योग्य थे, वह "सुवर्णछवि" लक्ष्मण, भाई और भावज के पदचिह्नों का अनुसरण कर चुके थे। सब दूकानें बंद थीं। सुमंत्र ने बहुत ठीक कहा

था—"समस्त अयोध्या नगरी मानो पुत्रहीना कौशल्या की दशा को प्राप्त हो रही है।"

(हिन्दी-गद्य-पद्य-संग्रह से)

(२) भारतवासियों का मुख उज्ज्वल करनेवाले स्वनाम-धन्य मिस्टर रामानन्द चतुर्वेदी का विवाह परम विदुषी श्रीमती मोहिनी बाला के साथ कल बड़ी धूमधाम से हो गया। हाईकोर्ट के प्रधान विचारपति तथा अन्यान्य गण्य मान्य सज्जन विवाह-मंडप में उपस्थित थे। ईश्वर करे, नवदंपती चिरजीवी होकर देश का मंगल-साधन करें। मोहिनी के पिता ने कई लाख की संपत्ति छोड़ी थी, जिसकी एकमात्र अधिकारिणी मोहिनी थी। पर रामानन्द को उस संपत्ति में सबसे अधिक मूल्यवान् वह पत्र प्रतीत हुआ जो मोहिनी के पिता की मृत्यु के बाद उनके बक्स में मिला था।

(हिन्दी-गद्य-संग्रह से)

(३) चलि सुरपुर सों विश्वामित्र अवधपुर आये।
देखे तहाँ समाज साज सब सुभग सुहाये॥
बन उपबन आराम सुखद सब भाँति मनोहर।
लहलहात ह्वै हरित भरित फल-फूलनि तरवर॥१॥
बापी कूप तड़ाग झील सरवर सरिता सर।
जीवनधर संतापहर नर-ही-तल-सीतल-कर॥
कियौ नेकु बिस्राम आनि सरजू-तट बैठे।

तहँ अन्हाइ करि नित्य कृत्य पुर-अंतर पैठे ॥ २ ॥

(हरिश्चन्द्र से)

(४) पुनि सप्रेम बोलेउ खगराऊ ।

जो कृपालु मोहि ऊपर भाऊ ॥

नाथ मोहि निज सेवक जानी ।

सप्त प्रश्न मम कहहु बखानी ॥

प्रथमहिं कहहु नाथ मति धीरा ।

सबतें दुर्लभ कवन सरीरा ॥

बड़ दुख कवन कवन सुख भारी ।

सो संक्षेपहि कहहु विचारी ॥

सन्त असन्त मरम तुम्ह जानहु ।

तिन्हकर सहज सुभाव बखानहु ॥

(रामायण से) इत्यादि-इत्यादि ।

निबन्ध-लिखना सिखाने की रीति

धन बड़ा या विद्या बड़ी ।

नोटः—मिडिल वर्नाक्यूलर तथा हाईस्कूल की सर्वोच्च श्रेणियों के बालकों में इतनी योग्यता अवश्य हो जानी चाहिए कि वे बेखटके शुद्ध तथा स्पष्ट हिन्दी लगातार कुछ समय तक लिख सकें या बोल सकें । हम देखते हैं कि मिडिल वर्नाक्यूलर स्कूल की सातवीं तथा हाई स्कूल की दसवीं कक्षा के बालक यदि २० पंक्तियों का भी कोई निबन्ध लिखते

हैं या १०-१५ मिनिट किसी एक विषय पर बोलते हैं, तो भाषा की अत्यन्त असाधारण अशुद्धियाँ करते हैं। यही नहीं वरन् लगातार किसी विषय पर १ या २ पृष्ठ लिखने में या १०-१५ मिनिट तक बोलने में वे बहुधा अगट-शगट यानी अप्रासंगिक बातों का व्यवहार करते हैं। अतः इन कक्षाओं के बालकों में ऐसी बान अवश्य डाल देनी चाहिए कि वे किसी एक ही विषय पर लगातार कुछ समय तक शुद्ध या स्पष्ट रीति से लिख सकें या बोल सकें। इससे विदित है कि मौखिक-क्रिया से अभी काम लेना हितकर है। छोटी कक्षाओं में और उच्च कक्षाओं के वार्तालाप में भेद केवल यह है कि उच्च कक्षाओं में बालकों को लगातार कुछ समय तक किसी एक विशेष विषय के ऊपर शुद्ध तथा स्पष्ट भाषा में बोलने का अभ्यास होना चाहिए। इस लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए यह कह सकते हैं कि उच्च कक्षाओं में निबन्ध-शिक्षा के घंटे में कुछ-न-कुछ समय "वाद-विवाद" (Debate or Discussion) के ऊपर अवश्य व्यय करना चाहिए। परस्पर वाद-विवाद करने से बालकों की वाक्‌शक्ति बढ़ती है। वे वाद-विवाद करते समय अपने भावों को इस प्रकार संगठित करते हैं कि विपक्ष में बोलनेवाला उनसे हार मान ले और उनके विचारों को सत्य समझे। इस प्रकार की क्रिया से बालकों की तर्कनाशक्ति बढ़ती है, उनका साहस बढ़ता है, और वे युक्तिमान् बनते हैं।

वाद्-विवाद् कराने के निमित्त बालकों को वाद्-विवाद् का विषय २-३ दिवस पहले बता देना चाहिए, जिससे उन्हें सोचने का पर्याप्त समय मिले और वे अच्छी प्रकार वाद्-विवाद् करने के लिए तैयार हो जायँ। वाद्-विवाद् करने के लिए कक्षा को दो दलों में विभक्त कर देना चाहिए, ताकि कुछ बालक तो विषय के पक्ष में बोलें और कुछ विपक्ष में। वाद्-विवाद् करते समय भी बालकों को अनेक सदाचार की बातें सिखाई जा सकती हैं; यथा:—

वाद-विवाद के लाभ

(१) जब एक बालक बोल चुके तब दूसरा बोले। (२) सभापति की आज्ञा प्राप्त किये बिना कोई बालक न बोले। (३) कुछ चतुर बालकों को वाद्-विवाद् करनेवालों के आलोचक बनाना चाहिए। आलोचकों को भली भाँति समझा देना चाहिए कि उनका काम व्याख्यानदाताओं की भाषा की अशुद्धियों को पकड़ना तथा उनके खड़े होने, बोलने, संकेत करने के ढंग की आलोचना करना है। आलोचक इन बातों को ध्यानपूर्वक देखते जायँ, उनको किसी नोटबुक में लिखते जायँ और वाद्-विवाद् समाप्त होने पर उनको सबके सामने वर्णन करें। (४) प्रत्येक व्याख्याता को बोलने के लिए निश्चित समय देना चाहिए, ताकि वह समय के महत्त्व का अनुभव करे और सब बालकों को बोलने का समय मिले। (५) बालकों को सभापति तथा अन्य श्रोताओं को

सम्बोधित करने का ढंग जानना चाहिए। (६) उन्हें इस प्रकार बोलना सीखना चाहिए कि जो कुछ वे बोलें वह सबको सुनाई दे। (७) उन्हें अपने भाव इस रीति या युक्ति द्वारा प्रकट करने चाहिए कि जो कुछ वे भाषण करें उसका प्रभाव श्रोताओं के हृदय पर पड़े। इत्यादि-इत्यादि। यदि 'वाद-विवाद' में पूर्ण घंटा समाप्त हो जाय तो कुछ हानि नहीं, क्योंकि हमारा उद्देश्य तो यह है कि बालकों को लगातार किसी एक विषय पर बेखटके बोलने का अभ्यास हो और वे अपनी विवेक-शक्ति से काम लें।

वाद-विवाद समाप्त होने पर बालकों से कह दिया जाय कि वे अपनी कापियों में निबन्ध लिखना प्रारम्भ कर दें। निबन्ध लिखने से पूर्व बालकों को अपने भाव तथा वाद-विवाद से उन्हें जो भाव प्राप्त हुए हैं, उनके संकेत अपनी कापियों की बाईं ओर लिख लेने चाहिएँ। उन्हें संकेत लिखने का अभ्यास भी होना चाहिए। जो कुछ संकेत वे अपनी कापियों की बाईं ओर लिखें यथासम्भव वे (बालक) उन्हीं के आधार पर निबन्ध लिखें। 'यथा सम्भव' शब्द यहाँ पर ध्यान देने योग्य है। यथासम्भव का अर्थ यहाँ पर जहाँ तक हो सके से है। बालकों में निबन्ध के संकेतों को लिखते समय बहुत से भाव नहीं भी आ सकते हैं, किन्तु ज्यों-ज्यों वे निबन्ध लिखते जाते हैं और निबन्ध के विषय पर अपना ध्यान जमाते जाते हैं,

तो परस्पर सहचार के कारण उनको स्मृति में अनेक भाव आते रहते हैं। बालकों को पूर्ण अधिकार है कि उस समय भी वे अपने भाव लिख सकते हैं। कहने का सारांश यह है कि संकेतों को निश्चित करना और यथा-सम्भव उनके आधार पर निबन्ध लिखने से बालकों में युक्तियों के बनाने की युक्ति और उन युक्तियों के अनुसार काम करने की बान पड़ती है।

युक्ति (Plan)

संसार में हम अनेक युक्तियाँ बनाते हैं और उनके अनुसार काम करते हैं, यथा अपनी आरोग्यता बढ़ाने की किसी मनुष्य ने यह युक्ति निकाली हो कि देश-देशांतरों में भ्रमण किया जाय। अब वह मनुष्य सोचता है कि देश-देशान्तरों में घूमने के लिए तो रुपये की आवश्यकता है। अब वह मनुष्य अपनी युक्ति सफल करने के लिये रुपये कमाने में लग जायगा और जब उसके पास काफ़ी धन इकट्ठा हो जायगा तो वह सुदूर देशों में घूमने के लिए निकल जायगा। यदि कोई बालक अपने शिक्षक को प्रसन्न करना चाहता है, तो प्रथम वह अपने मन में अनेक युक्तियाँ निश्चित करता है और तत्पश्चात् उन्हीं के अनुसार काम करता है। कल्पना करो किसी मनुष्य को किसी अज्ञात स्थान पर पहुँचना है, तो वह उस अज्ञात स्थान में पहुँचने के लिए अनेक युक्तियों को काम में लाता है, यथा--नक़्शे से काम लेना, पुलिस वा

डाकिया की सहायता लेना, किसी इक्के या टाँगेवाले की सहायता लेना, इत्यादि-इत्यादि। इसी प्रकार संकेतों का लिखना भी निबन्ध-लिखने की एक उत्तम युक्ति है। यदि हम अपनी युक्ति द्वारा अपने उद्देश्य को पूर्ण न कर सकें या जब हम अपना युक्ति को व्यवहार में लाकर देखते हैं कि उससे हमें सफलता प्राप्त न होगी, तो हम अपनी पहली युक्ति में कुछ परिवर्तन कर देते हैं या नितान्त दूसरी भिन्न युक्ति को निश्चित करते हैं और तब उसको व्यवहार में लाते हैं। अतः पीछे कहा गया है कि बालक यथासम्भव संकेतों के अनुसार निबन्ध लिखा करें। वे उन संकेतों को बदल भी सकते हैं, जिन को वे ठीक न समझते हों। संकेत तो बालकों के लिए केवल सहायता पहुँचाने के लक्ष्य से लिखे जाते हैं। यदि वे (संकेत) बिलकुल ठीक हैं, तो बालकों को पूर्ण स्वतन्त्रता है कि वे उनका निबन्ध लिखने में पूर्णतया उपयोग करें और यदि उनमें कोई बात जो कि बालक निबन्ध में लिखना चाहते हैं, रह गई हो, तो बालकों को पूर्ण अधिकार है कि उनके आधार पर निबन्ध न लिखें और दूसरे भिन्न तथा नवीन संकेत निश्चित करें और उनका उपयोग करें; किन्तु बालकों को अपनी कापियों में कुछ न कुछ संकेत अवश्य लिख लेने चाहिए, जिससे कि वे युक्तिमान् बनें।

मान लो कि बालकों ने यथोचित नियमों के अनुसार

'धन बड़ा है या विद्या' विषय पर वाद-विवाद भी कर लिया है और नीचे दर्शाए प्रकार से संकेत भी लिख लिये हैं:—(यह आवश्यक नहीं कि सब लड़के एक ही प्रकार के संकेत लिखें या धन या विद्या के ही पक्ष में लिखें।)

धन से विद्या बड़ी है।

(१) क्योंकि विद्या से धनोपार्जन होता है।

(२) क्योंकि विद्या को चोर चुरा नहीं सकता, राजा छीन नहीं सकता, और न वह बाँटी ही जा सकती है।

(३) क्योंकि धनवान् का केवल अपने ही देश में आदर होता है; किन्तु विद्वान् का सर्वत्र।

(४) क्योंकि विद्या से मनुष्यता प्राप्त होती है। वह हमारे शरीर का एक अंग हो जाती है।

(५) बुद्धिमान् अपनी कला-कौशल से जब चाहे धन कमा सकता है।

(६) शास्त्र और बड़े-बड़े आचार्य भी इसी बात का समर्थन करते हैं। इत्यादि-इत्यादि।

कोई बालक निश्चित करता है कि **धन बड़ा है** क्योंकि:—

(१) विना धन के विद्या प्राप्त नहीं हो सकती।

(२) विना धन के धर्म नहीं हो सकता।

(३) विना धन के सुख कहाँ।

(४) धन के बल से अनेक विद्वान् नौकर रक्खे जा सकते हैं।

(५) "सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति" इत्यादि-इत्यादि शास्त्रोक्त प्रमाण ।

(नोटः—बालक छोटी-छोटी कथा-कहानियाँ या दृष्टान्त भी अपनी उक्तियों के समर्थन में लिख सकते हैं ।)

ऊपर लिखे संकेतों को निश्चित करने के उपरान्त उनके आधार पर निबन्ध लिखना बहुत कुछ सरल सा प्रतीत होता है । अतः शिक्षक बालकों से प्रथम निबन्ध के संकेत लिखने को कहता है और तत्पश्चात् उनके आधार पर निबन्ध लिखने को कहता है ।

समाचारपत्र पढ़ने से लाभ

संकेतः—

(१) देश की भलाई-बुराई, कुप्रथा, सुधार, वाणिज्य, राजा की आज्ञा, इत्यादि-इत्यादि का ज्ञान होता है ।

(२) घर-बैठे देश-विदेश की बातों का ज्ञान होता है ।

(३) अपने दुःखों को राजा के कानों तक पहुँचा सकते हैं ।

(४) परस्पर प्रेम बढ़ा सकते हैं ।

(५) विद्या या धर्म फैला सकते हैं; नवीन आविष्कारों से दूसरों को सूचित कर सकते हैं ।

(६) जिस देश में समाचारपत्रों का आदर है, वही उन्नति पर है ।

(७) भाषा का भाण्डार बढ़ता है । इत्यादि-इत्यादि ।

स्त्री-शिक्षा से लाभ

संकेत:—

(१) सन्तान बुद्धिमान् और बलिष्ठ हो सकती है।

(२) सन्तान सच्चरित्र बन सकती है।

(३) गृह-प्रबन्ध उत्तम होता है।

(४) पति-सेवा या अन्य परिजनों की यथोचित सेवा होती है।

(५) प्राचीन काल में भी स्त्री-शिक्षा का प्रचार था; लीलावती, भारती, गार्गी, मैत्रेयी इत्यादि के उदाहरण।

(६) देश और समाज की भावी उन्नति स्त्री-शिक्षा पर निर्भर है। इत्यादि-इत्यादि।

वाक्य-परिवर्त्तन की शिक्षा

(क)

(नोट:—वाक्य-परिवर्त्तन सिखाने में शिक्षक को एक क्रम से चलना चाहिए। इस पुस्तक के (घ) भाग विवरण, पृष्ठ नं० २६६ में जो क्रम दर्शाया गया है, वह केवल नमूने के ढंग से दिया गया है। शिक्षकगण भिन्न-भिन्न क्रम से काम ले सकते हैं। प्रत्येक क्रम का निश्चित करना कक्षा की दशा पर निर्भर है।

मान लो कि अध्यापक को बालकों को वे रीतियाँ सिखानी हैं, जिनके द्वारा निषेधात्मक वाक्य विध्यात्मक

में परिवर्त्तित हो सकते हैं, तो प्रथम वह बहुत से निषेधात्मक वाक्य श्यामपट्ट पर लिखेगा; यथा:—

(१) मोहन लम्बा नहीं है।

(२) राम आलसी नहीं है।

(३) जो लड़के सत्य नहीं बोलते, उनको लोग प्यार नहीं करते।

(४) इस कमरे में कोई लड़का नहीं है।

(५) कुछ लड़के प्रति-दिन ठीक समय पर पाठशाला नहीं आते।

(६) आज वर्षा हुई है अतः भूमि सूखी नहीं है।

(७) इस पेड़ का तना मोटा नहीं है।

(८) जो बालक व्यायाम करते हैं, वे रोगी नहीं रहते।

(९) क्या यह तुम्हारी पुस्तक नहीं है ?

(१०) क्या मोहन झूठ नहीं बोलता ? इत्यादि-इत्यादि।

अब अध्यापक बालकों से कहता है कि तुम लोग चुपचाप मन ही मन श्यामपट्ट पर के वाक्य पढ़ जाओ।

प्रश्न:—(१) व्याकरण के घंटे में वाक्यों के प्रकार बताये गये हैं, अब बताओ ये वाक्य किस प्रकार के हैं ? (ये निषेधात्मक वाक्य हैं ?) (२) ये निषेधात्मक वाक्य क्यों हैं ?

तुम लोग इन निषेधात्मक वाक्यों को इस प्रकार विध्यात्मक बनाओ पर इनका अर्थ न बदले। अब लड़के

पहले वाक्य को इस प्रकार परिवर्त्तित करेंगेः—मोहन छोटा है। दूसरे वाक्य से लेकर १० वें तक वे क्रमशः इस प्रकार बदलेंगेः—(२) राम फुर्तीला है, (३) जो लड़के झूठ बोलते हैं उनको लोग अप्रिय समझते हैं; (४) यह कमरा खाली है; (५) कुछ लड़के प्रतिदिन देर से पाठशाला आते हैं; (६) आज वर्षा हुई है, अतः भूमि गीली है; (७) इस पेड़ का तना पतला है। (८) जो बालक व्यायाम करते हैं, वे स्वस्थ रहते हैं; (६) यह तुम्हारी पुस्तक है; (१०) मोहन झूठ बोलता है। इत्यादि-इत्यादि ।

प्रश्नः—बताओ तुमने श्यामपट्ट पर के निषेधात्मक वाक्यों को किस नियम द्वारा विध्यात्मक वाक्यों में परि-वर्त्तित किया है ?

इस प्रकार अध्यापक लड़कों से ही स्वयम् यह नियम निकलवाए कि निषेधात्मक वाक्यों को जब विध्यात्मक वाक्यों में परिवर्त्तित करना होता है, तो प्रथम 'नहीं' शब्द (जो निषेधात्मक है) हटा देते हैं और वाक्यों का भाव समझकर उनमें कुछ शब्दों के विपरीत अर्थवाले शब्दों को रख देते हैं, यथाः—प्रथम वाक्य में पहले निषेधात्मक 'नहीं' शब्द लिया गया और फिर 'लम्बा' शब्द का विपरीत अर्थवाला 'छोटा' शब्द उसके स्थान में रख दिया गया।

जब बालक स्वयम् इस नियम को निकाल लें, तो उन्हें

निषेधात्मक वाक्यों को विध्यात्मक बनाने में अच्छा अभ्यास देना चाहिए। यदि अध्यापक चाहे, तो वह उन निषेधात्मक वाक्यों को, जिनको वह विध्यात्मक वाक्यों में परिवर्त्तित कराना चाहता है, हिन्दी-रीडरों से छाँट सकता है।

(ख)

विध्यात्मक वाक्यों को निषेधात्मक वाक्यों में बदलना (किन्तु अर्थ-भेद न हो):—

अध्यापक बालकों से कहता है कि प्रत्येक बालक एक-एक विध्यात्मक वाक्य का उदाहरण दे। जो उदाहरण वे देते हैं, उन्हीं में से कुछ को वह श्यामपट्ट पर लिख देता है। कल्पना करो कि अध्यापक ने निम्नलिखित विध्यात्मक वाक्य, जो लड़कों ने स्वयम् कहे हैं, श्यामपट्ट पर लिख दिये हैं:—

(१) मेरे पास दस रुपये हैं।

(२) राम एक चतुर बालक है।

(३) आजकल समाचारपत्रों की भरमार है।

(४) इस कक्षा के विद्यार्थी सच्चे हैं।

(५) प्रातःकाल का घूमना बड़ा सुहावना मालूम पड़ता है।

(६) इन चार विद्यार्थियों ने परिश्रम नहीं किया, अतः वे फ़ेल हो गये।

(७) घास की कमी के कारण आज-कल घी महँगा हो गया है।

(८) शरद् ऋतु में लिहाफ़ ओढ़कर बैठने से शीघ्र नींद आ जाती है।

(९) बम्बई शहर कलकत्ते से बड़ा है।

(१०) क्या तुम रात-दिन पढ़ते हो? इत्यादि-इत्यादि।

अध्यापक श्यामपट्ट पर लिखे हुए वाक्यों को बालकों से पढ़वाता है और उनसे कहता है कि उन वाक्यों को इस प्रकार निषेधात्मक वाक्यों में बदलो कि अर्थ-भेद न हो। लड़के अनेक उत्तर देंगे; किन्तु अध्यापक शुद्ध उत्तरों को श्यामपट्ट पर प्रत्येक वाक्य के सामने लिख देगा; यथाः—

वाक्यः—	उत्तरः—
(१) मेरे पास दस रुपये हैं।	मेरे पास दस रुपये से अधिक नहीं हैं।
(२) राम चतुर बालक है।	राम एक मूर्ख बालक नहीं है।
(३) आजकल समाचार-पत्रों की भरमार है।	आजकल समाचारपत्रों की न्यूनता नहीं है।
(४) इस कक्षा के विद्यार्थी सच्चे हैं।	इस कक्षा के विद्यार्थी झूठे नहीं हैं।
(५) — — —	— — — —
(६) — — —	— — — —

(९) बम्बई शहर कलकत्ते से बड़ा है। | बम्बई शहर कलकत्ते से छोटा नहीं है।

(१०) इत्यादि-इत्यादि।

अब अध्यापक लड़कों से उन्हीं के दिये हुए उत्तरों का अवलोकन करवाता है और उनसे यह नियम स्थापित करवाता है कि जब विध्यात्मक वाक्यों को निषेधात्मक बनाना होता है, तो पहले विध्यात्मक वाक्यों का भाव समझ लिया करते हैं, तत्पश्चात् वाक्य के भावानुकूल कुछ शब्दों के उलटे शब्द रख देते हैं और उलटे शब्दों के आगे निषेधसूचक 'नहीं' शब्द रख देते हैं।

इसके उपरान्त शिक्षक बालकों को विध्यात्मक वाक्यों से निषेधात्मक वाक्य बनाने में खूब अभ्यास देता है।

(ग)

वाक्यों को अर्थ भेद किये विना प्रश्नसूचक बनाना:—

शिक्षक बालकों से कहता है कि तुम लोग एक-एक वाक्य चाहे वह निषेधात्मक हो या विध्यात्मक सोचो और उसे कहने के लिए उद्यत रहो। तत्पश्चात् अध्यापक लड़कों से कहता है कि जो वाक्य तुमने सोचा है उसे कहो। मान लो कि लड़के निम्न-लिखित वाक्य कहते हैं:—

(१) मोहन परिश्रमी लड़का है।

(२) श्याम राम से बड़ा है।

(३) परमात्मा ने हम सबको मुँह दिया है।

(४) इस पलँग के पाये नहीं हैं।

(५) राधे की लेखनी टूट गई है। इत्यादि-इत्यादि।

जो वाक्य लड़के कहते हैं, उनमें से कुछ अध्यापक श्यामपट्ट पर लिख देता है और लड़कों से कहता है कि उनको प्रश्नसूचक वाक्यों में बदलो; किन्तु उनका अर्थ-भेद न हो। शुद्ध उत्तरों को अध्यापक श्यामपट्ट पर लिख देगा और बालकों से उनका अवलोकन कराएगा। तत्पश्चात् वह बालकों से यह नियम निकलवाएगा कि वाक्यों को प्रश्नसूचक बनाने में (१) प्रत्येक वाक्य के अन्त में प्रश्नवाचक चिह्न रख देते हैं; (२) प्रत्येक वाक्य के आरम्भ में क्या या क्यों रख देते हैं; (३) प्रत्येक वाक्य में भावानुकूल कुछ शब्दों को बदल देते हैं, इत्यादि-इत्यादि। यथाः—क्या मोहन परिश्रमी लड़का नहीं है? या क्या मोहन आलसी लड़का है? क्या श्याम राम से बड़ा नहीं है? या क्या श्याम राम से छोटा है?

क्या परमात्मा ने हम सबों को मुँह नहीं दिया है? क्या इस पलँग के पाये हैं? क्या राधे की लेखनी टूट नहीं गई है? (या क्या राधे की लेखनी साबूत है?) इत्यादि-इत्यादि।

अब अध्यापक बालकों को प्रश्नसूचक वाक्य बनाने में और अधिक अभ्यास देगा; किन्तु वह बालकों को भली

भाँति समझा देगा कि किसी वाक्य को प्रश्नसूचक बनाने में अर्थ-भेद नहीं होना चाहिए।

(घ)

साधारण वाक्यों को इस प्रकार मिलाना कि उनसे संयुक्त वाक्य बन जायँ।

(नोटः—यह मानी हुई बात है कि वाक्य-परिवर्तन का सिखाना तब होना चाहिए जब कि लड़कों ने व्याकरण के घंटों में वाक्य-भेद, तथा पद-क्रम और व्याख्या का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया हो।)

अध्यापकः—(१) वाक्य कितने प्रकार के होते हैं? (२) साधारण वाक्य किसे कहते हैं? (३) मिश्र वाक्य और साधारण वाक्य में क्या भेद होता है? (४) प्रत्येक लड़का एक-एक साधारण वाक्य बनाए। तुमने कौन-सा साधारण वाक्य बनाया है? (जो साधारण वाक्य लड़के बताएँ, उनमें कुछ को अध्यापक श्यामपट्ट पर लिख दे।)

मान लो निम्न-लिखित साधारण वाक्य अध्यापक ने श्यामपट्ट पर लिखे हैं:—

(१) मेरे दो कान हैं।

(२) मेरे दो हाथ हैं।

(३) हमारा स्कूल शाहगंज के पास है।

(४) हमारे स्कूल में ४५० लड़के पढ़ते हैं।

(५) मोहन ऊँचा है।

(६) राम नाटा है।

(७) नारायण एक धनी का लड़का है।

(८) नारायण ख़ूब खाता-पीता है।

(९) एक जादूगर था।

(१०) जादूगर चीन में रहता था। इत्यादि-इत्यादि।

अब अध्यापक लड़कों से कहता है कि पहले और दूसरे वाक्यों को इस प्रकार मिलाओ कि उनसे एक संयुक्त वाक्य बन जाय। शुद्ध उत्तर को शिक्षक श्यामपट्ट पर लिख देता है; यथा--मेरे दो कान और दो हाथ हैं। एवम् अध्यापक वाक्य नं० ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १० को लड़कों से इस प्रकार मिलवाता है कि उनसे अलग-अलग कई संयुक्त वाक्य बन जायँ; यथा वाक्य नं० ३-४, को मिलाने से—हमारा स्कूल शाहगंज के पास है और उसमें ४५० लड़के पढ़ते हैं। ५-६ को मिलाने से--मोहन ऊँचा है किन्तु राम नाटा है। ७-८ को मिलाने से—नारायण एक धनी का लड़का है और वह ख़ूब खाता-पीता है। ९-१० को मिलाने से—एक जादूगर था और वह चीन में रहता था। इत्यादि।

इसके उपरान्त अध्यापक निम्न-लिखित साधारण वाक्यों को, जो कि उसने श्यामपट्ट की दूसरी ओर पहले ही से लिख छोड़े हैं, संयुक्त वाक्यों में इस प्रकार जुड़वाता है कि अर्थ-भेद न हो।

साधारण वाक्य	संयुक्त वाक्य—
(अ) (१) व्यायाम करने से हमारा शरीर पुष्ट होता है। (२) व्यायाम से हमका बल प्राप्त है। (३) व्यायाम करने से हमारी आयु बढ़ती है।	व्यायाम करने से हमारा शरीर पुष्ट होता है, हमको बल प्राप्त होता है, और हमारी आयु बढ़ती है।
(आ) (१) यह पुस्तक अच्छी नहीं है। (२) यह पुस्तक बड़ी नहीं है। (३) यह पुस्तक सुन्दर नहीं छपी है।	यह पुस्तक न अच्छी है, न बड़ी है, और न सुन्दर छपी ही है।
(इ) (१) मोहन छोटा बालक है। (२) मोहन अपनी कक्षा में सब बालकों से चतुर है।	मोहन छोटा बालक है, किन्तु या परन्तु वह अपनी कक्षा में सब बालकों से चतुर है।
(ई) (१) मैं पुस्तक और पढ़ना चाहता था। (२) मैं पुस्तकालय में बैठा रह गया।	मैं पुस्तक और पढ़ना चाहता था अतः, या सो, या अतएव, या इस कारण या इसलिए मैं पुस्तकालय में बैठा ही रह गया।

(उ) (१) सोहन ने खूब परिश्रम किया । (२) सोहन अपनी कक्षा में पहला निकला । इत्यादि-इत्यादि ।	सोहन ने खूब परिश्रम किया अतः वा इसलिए वा अतएव वा इस कारण वा सो वह अपनी कक्षा में पहला निकला ।

शुद्ध उत्तरों को शिक्षक कोष्ठ के सन्निकट लिख देता है, जैसे कि ऊपर दर्शाया गया है । अब अध्यापक बालकों के दिये हुए शुद्ध उत्तरों का निरीक्षण करता है; उनमें सदृश वा विपरीत अव्ययों की ओर उन (बालकों) का ध्यान आकर्षित करता है और नियम स्थापित कर-वाता है कि जब भिन्न-भिन्न साधारण वाक्यों से संयुक्त वाक्य बनाने होते हैं, तो जिन साधारण वाक्यों से संयुक्त वाक्य बनाना होता है, पहले उनका भाव समझ लिया करते हैं और फिर भावानुकूल उनको संयोजक, विभाजक, विरोधदर्शक या परिणामबोधक अव्ययों से जोड़ देते हैं और इस बात का भी ध्यान रखते हैं कि कहीं नवीन वाक्य (यानी संयुक्त वाक्य) कर्ण-अप्रिय या व्याकरण के नियमों के अनुसार अशुद्ध तो नहीं हो गया है । उस नवीन संयुक्त वाक्य में विराम, सर्वनाम, इत्यादि का उचित प्रयोग करते हैं; यथा—(१) व्यायाम करने से हमारा शरीर पुष्ट होता है । (२) व्यायाम करने से हमको बल प्राप्त होता है । (३) व्यायाम करने से हमारी आयु

बढ़ती है। इन तीनों साधारण वाक्यों का अर्थ व्यायाम के भिन्न-भिन्न लाभ वर्णन करने से हैं; अतः इनको संयोजक अवयव 'और' से जोड़ना चाहिए, किन्तु बार-बार 'और' व 'व्यायाम' का प्रयोग करने से संयुक्त वाक्य कर्णकटु तथा व्याकरण के नियमों के प्रतिकूल हो जाता है। अतएव पहले दो साधारण वाक्यों को जोड़ने में तो विराम लगा दिया है, किन्तु तीसरे साधारण वाक्य को 'और' शब्द से जोड़ा है, विराम से नहीं। एवम् 'व्यायाम' शब्द की एक ही वाक्य में यदि कई बार आवृत्ति हो, तो वह वाक्य सुनने में कर्णों को प्यारा नहीं लगता। उसका संयुक्त वाक्य में एक ही बार प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार वाक्यांश 'करने से' की आवृत्ति उचित नहीं जान पड़ती। इस कारण तीनों साधारण वाक्य मिलकर ऐसे हो गये—'व्यायाम करने से हमारा शरीर पुष्ट होता है, हमको बल प्राप्त होता है और हमारी आयु बढ़ती है।'

(आ) भाग पृष्ठसंख्या २८९ में जो तीन साधारण वाक्य हैं, उनकी योजना करने से विदित होता है कि वे परस्पर भाव विभाजक हैं; अतः उनके जोड़ने में विभाजक अव्यय व्यवहार में लाने चाहिए। (इ) भाग (पृष्ठ संख्या २८९) में जो वाक्य दिये गये हैं, वे परस्पर विरोधी भाव-दर्शक हैं; अतः उनको जोड़ने में विरोध-दर्शक अव्यय काम में लाने चाहिएँ। एवम् उसी (ई) भाग में जो साधारण

वाक्य हैं, उनमें दूसरा वाक्य परिणाम-सूचक है; अतः उनको जोड़ने में परिणाम बोधक अव्ययों का प्रयोग होना चाहिए; इत्यादि-इत्यादि। प्रथम इन बातों का अनुमान बालकों को अपने मन में कर लेना चाहिए और तब साधारण वाक्यों को मिलाकर देखना चाहिए कि उनके योग से जो संयुक्त वाक्य बना है, उसका अर्थ वही है, जो साधारण वाक्यों का है या नहीं। जब बालक इस प्रकार भिन्न-भिन्न वाक्यों के भावों का अनुमान भली भाँति करने लगें, तब उनको अनेक साधारण वाक्यों से संयुक्त वाक्य बनाने का अभ्यास देना चाहिए। तत्पश्चात् उन्हें संयुक्त वाक्यों को इस प्रकार पृथक् करना जानना चाहिए कि उनसे कई साधारण वाक्य बन जायँ; किन्तु अर्थ में कोई अन्तर न पड़े।

(ङ) आश्रित उपवाक्यों के लिए एक शब्द या वाक्यांश का प्रयोग करना।

(अ) आश्रित संज्ञा उपवाक्यों के बदले वाक्यांश का प्रयोग इस प्रकार करना कि अर्थ-भेद न हो:—

अध्यापक प्रश्नः—(१) मुख्य उपवाक्य किसे कहते हैं? (२) आश्रित उपवाक्य कितने प्रकार के होते हैं? (३) मुख्य उपवाक्य और आश्रित उपवाक्य में क्या भेद है? (४) वाक्यांश किसे कहते हैं? प्रत्येक बालक एक एक संज्ञा-उपवाक्य का उदाहरण दो। जो उत्तर छात्र

देते हैं, उनमें से कुछ शुद्ध उत्तरों को अध्यापक श्यामपट्ट पर लिख दे, यथाः—

वाक्यः—	परिवर्तित रूपः—
(१) लोग कहते हैं कि रात में नहाना हानिकारक है।	रात का नहाना हानिकारक कहा जाता है।
(२) मैं नहीं जानता कि मोहन कल आएगा।	मैं मोहन का कल आना नहीं जानता।
(३) उनके कहने से विदित होता है कि वेतनों में कमी हो गई है।	उनके कहने से वेतनों में कमी का होना विदित होता है।
(४) मेरा विचार है कि कल एक नौकर रक्खूँ।	मैं कल से एक नौकर रखने का विचार करता हूँ।
(५) पढ़ाई से जी चुराने का परिणाम यह होता है कि हम परीक्षा में असफल होते हैं।	पढ़ाई से जी चुराने का परिणाम हमारा परीक्षा में असफल होना है।
(६) राम कहता है कि वह कल यहाँ आवेगा।	राम कल यहाँ आने को कहता है।
(७) आप सज्जनों के लिए कब उचित है कि आप झूठ बोलें।	आप सज्जनों के लिए झूठ बोलना कब उचित है।

(८) सब लोगों को ज्ञात है कि रावण रामचन्द्रजी से लड़ा था।	रावण का श्रीरामचन्द्रजी से लड़ना सब लोगों को ज्ञात है वा सब लोगों को रावण का श्रीरामचन्द्रजी से लड़ना ज्ञात है।
(९) इत्यादि-इत्यादि	

तत्पश्चात् अध्यापक बालकों से कहता है कि तुम इन वाक्यों में जो आश्रित संज्ञा-उपवाक्य आये हैं, इस प्रकार वाक्यांशों में परिवर्तित करो कि अर्थ-भेद न हो। शुद्ध उत्तरों को वह वाक्यों के सन्निकट लिख देता है, जैसा कि पृष्ठ-संख्या २६३ में दर्शाया गया है।

अब अध्यापक प्रत्येक बालक से एक-एक ऐसा मिश्र वाक्य बनाने को कहता है, जिसमें कि आश्रित विशेषण उपवाक्य हो। शुद्ध उत्तरों को वह श्यामपट्ट पर लिख देता है यथाः—

वाक्यः—	परिवर्तित रूपः—
(१) हिमालय एक बहुत ऊँचा पर्वत है, जो भारतवर्ष की उत्तरी सीमा बनाता है।	हिमालय भारतवर्ष की उत्तरी सीमा बनानेवाला एक ऊँचा पर्वत है।
(२) यह वही गाय है, जिसको हमने कल देखा था।	यह हमारी कल की देखी हुई गाय है।
(३) यह वही लड़का है, जो कल यहाँ आया था।	यह यहाँ कल आनेवाला लड़का है।

(४) यह वही पुस्तक है, जिसको हमने पारसाल पढ़ा था।	यह हमारी पारसाल की पढ़ी हुई पुस्तक है।
(५) रंगा एक लड़का है, जिसको फुटबौल का खेल बहुत अच्छा आता है।	रंगा बहुत अच्छा फुटबौल का खेल जाननेवाला लड़का है।
(६) उस पहाड़ पर एक गुफा थी, जिसमें एक लोमड़ी रहती थी।	उस पहाड़ पर लोमड़ी के रहने की एक गुफा थी।
(७) वे लड़के जो परिश्रम करते हैं, हर साल परीक्षा में उत्तीर्ण होते हैं।	परिश्रम करनेवाले लड़के हर साल परीक्षा में उत्तीर्ण होते हैं।
(८) वह कौन मनुष्य है जो कालिदास का नाम न जानता हो?	कालिदास के नाम को कौन मनुष्य नहीं जानता?
(९) क्या तुम मेरी वह बात भूल गये, जो मैंने कल ही तुमसे कही थी?	क्या तुम मेरी कल की कही बात भूल गये?
(१०) अयोध्या एक पवित्र स्थान है, जहाँ श्रीरामजी का जन्म हुआ था। इत्यादि-इत्यादि।	अयोध्या श्रीरामजी का पवित्र जन्मस्थान है।

ऊपर के वाक्यों में जो आश्रित विशेषण-उपवाक्य आये हैं, उनको अध्यापन वालकों से वाक्यांशों में परिवर्त्तन करवाता है। इस प्रकार जो वाक्यों के नवीन रूप बनते हैं, उनको भी अध्यापक श्यामपट्ट पर लिख देता है, जैसा कि उत्तर दर्शाया गया है।

क्रिया-विशेषण-उपवाक्यों को वाक्यांशों में इस प्रकार बदलना कि अर्थभेद न हो:—

(१) लड़कों के कहे हुए मिश्रवाक्य:—	(२) लड़कों की सहायता से परिवर्तित वाक्य:—
जब तक तुम लौटकर यहाँ न आओगे तब तक मैं यहीं खड़ा हूँ।	तुम्हारे लौटकर आने तक मैं यहीं खड़ा हूँ।
जब-जब संसार में भारी अत्याचार फैलता है, तब-तब भगवान् अवतार लेते हैं।	संसार में भारी अत्याचार के फैलने पर भगवान् अवतार लेते हैं।
ज्यों ही चोर घर के अंदर घुसा, त्यों ही मैंने उसके ज़ोर से लाठी मारी।	चोर के अन्दर घुसते ही मैंने ज़ोर से उसको लाठी मारी।
मोहन वहीं रहता है, जहाँ सोहन रहता है।	मोहन और सोहन के रहने का एक ही स्थान है।

मैं वहीं से आ रहा हूँ, जहाँ से आप आ रहे हैं।	आपके और मेरे आने का एक ही स्थान है।
वह राक्षस ऐसा गरजा, जैसे कि सिंह गरजता है।	वह राक्षस सिंह की तरह गरजा।
जैसा तुम बोओगे वैसा काटोगे।	अपने बोने के अनुसार तुम काटोगे।
जैसा तुम करोगे वैसा फल पाओगे।	अपनी करनी के अनुसार तुम फल पाओगे।
जैसे-जैसे आमदनी बढ़ती है, वैसे-वैसे ख़र्च भी बढ़ता है। इत्यादि-इत्यादि।	आमदनी के अनुसार ख़र्च बढ़ता है। इत्यादि-इत्यादि।

(आ) आश्रित वाक्यों के स्थान में कभी-कभी बालकों को केवल एक शब्द के प्रयोग करने का अभ्यास देना चाहिए:—

वाक्यः—	रूप परिवर्त्तनः—
(१) सब लोग जानते हैं कि रामचन्द्रजी से रावण ने युद्ध किया था।	सब लोग राम-रावण युद्ध को जानते हैं।
(२) यह वही स्थान है जहाँ राजा राममोहन का जन्म हुआ था।	राजा राममोहन का जन्मस्थान यही है।

(३) जब कार्य समाप्त हो जायगा, तब मैं तुम्हारे पास आऊँगा।	कार्य-समाप्ति पर मैं तुम्हारे पास आऊँगा।
(४) आँकले का पौधा उस ऋतु में बढ़ता है, जिसमें गर्मी पड़ती है।	आँकले का पौधा ग्रीष्म-ऋतु में बढ़ता है।
(५) आकाश में इतने तारे हैं कि वे गिने नहीं जा सकते।	आकाश में अगणित तारे हैं।
(६) सूर्यप्रसाद ने मुझे आज्ञा दे दी है कि मैं रात में स्नान कर सकता हूँ।	सूर्यप्रसाद ने मुझे रात्रि-स्नान की आज्ञा दे दी है।
(७) वह इतना डरावना है कि काल के तुल्य जान पड़ता है।	वह काल-तुल्य डरावना है। इत्यादि-इत्यादि।

(नोट १ :—उदाहरण के वाक्यों के जो परिवर्त्तित रूप दिये गये हैं, उनके अतिरिक्त और भी रूप हो सकते हैं। जो परिवर्त्तित रूप हमने दिये हैं, वे केवल नमूने के ढंग से दिये गये हैं।)

हमें आशा है कि पाठक वाक्य-परिवर्तन सिखाने के लाभ समझ गये होंगे। कुछ लाभ नीचे और दिये जाते हैं।

(१) वाक्यार्थ का स्पष्टीकरण होता है।

(२) शब्दों, वाक्यांशों, उपवाक्यों तथा वाक्यों का परस्पर सम्बन्ध जाना जाता है।

(३) वाक्यों के रूप-परिवर्त्तन करने से भाषा के ज्ञान की उन्नति होती है।

(४) बालकों की निर्णय तथा विवेक-शक्तियों का विकास होता है।

(५) व्याकरण के नियमों की पुष्टि होती है।

(६) साहित्यिक बोध का बीज बालकों के हृदय में बोया जाता है। वे शब्द-संगठन की सुन्दरता का रस पीना आरम्भ करते हैं। वे अनुभव करने लगते हैं कि किन-किन शब्दों का अमुक वाक्य-परिवर्तन करने में प्रयोग करना ठीक है और किनका नहीं।

(नोट २:—जब बालकों को वाक्य-परिवर्त्तन का अच्छा ज्ञान हो जाय, तब अध्यापक उन्हें कभी-कभी ऐसी कहानी या घटना का वर्णन पढ़कर सुनावे, जो साधारण वाक्यों में लिखी हो। तत्पश्चात् वह बालकों से कहे कि इस कहानी या घटना को, जो मैंने पढ़कर सुनाई है केवल साधारण वाक्यों में कह सुनाओ। जब वे साधारण वाक्यों में कहानी या घटना सुना दें, तो अध्यापक उनको आज्ञा दे कि वे उस (कहानी या घटना) को केवल संयुक्त वाक्यों या मिश्र वाक्यों में लिख डालें। एवम् यदि कोई वृत्तान्त बालकों की हिन्दी रीडरों में संयुक्त या मिश्र

वाक्यों में दिया हो, तो अध्यापक लड़कों से कह सकता है कि वे उसे साधारण वाक्यों में लिखें।)

(नोट ३:—यदि कोई कहानी, वृत्तान्त या घटना साधारण वाक्य या भूतकाल में लिखी हो, तो अध्यापक उसे बालकों से वर्त्तमान काल या मिश्र या संयुक्त वाक्यों में लिखा सकता है। इत्यादि-इत्यादि।)

(नोट ४:—इस प्रकार व्याकरण की पढ़ाई को निबन्ध-शिक्षा से भली भाँति सम्बद्ध कर सकते हैं। यह अनुमान करना कि व्याकरण का निबन्ध-शिक्षा से कोई सम्बन्ध नहीं, नितान्त भूल है। व्याकरण का ज्ञान तभी लाभ-दायक है, जब हम उसका प्रयोग लिखने और बोलने में करें। देखा गया है कि व्याकरण के घंटे में अध्यापक ने यदि वाक्य-परिवर्त्तन के नियम लड़कों को सिखाए हैं, तो वह निबन्ध-शिक्षा के घंटे में ऐसी बात पढ़ाता है कि जिसका बहुधा वाक्य-परिवर्त्तन के नियमों से कोई लगाव न हो। सारांश कहने का यह है कि बहुत से अध्यापक इस प्रकार निबन्ध-रचना का सिलेबस बनाते हैं कि मानो अन्य विषयों से निबन्ध-रचना का कोई सम्बन्ध ही नहीं। पीछे बताया गया है कि निबन्ध-रचना का अन्य विषयों से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

छठा अध्याय

(क) लिखित काम का संशोधन

(Correction of written work)

निबन्ध-रचना सिखानेवाले अध्यापक सर्वदा यही शिकायत करते हैं कि:—'हम तो अशुद्धियाँ ठीक करते-करते हैरान हो गये; किन्तु लड़के वार-वार उन्हीं अशुद्धियों को किया करते हैं, जो कई बार ठीक कर दी गई हैं।' वे यह भी कहा करते हैं कि लड़कों का लिखा हुआ बहुत सा काम अभी ठीक करने को पड़ा है। उनके इस उलहने पर विचार करने से दो बातें झलकती हैं:—(१) या तो वे लड़कों से लिखित काम मौखिक काम की अपेक्षा, इतना अधिक कराते हैं कि वे अशुद्धियों को ठीक करते-करते स्वयम् ही विकल हो जाते हैं और लड़कों को भी विकल कर देते हैं, (२) या वे अशुद्धियों को ठीक करने का ढंग ही नहीं जानते।

(१) लड़कों से मौखिक काम (Oral work) की अपेक्षा लिखित काम (Written work) अधिक कराने का कारण:—

यह तो प्रत्येक शिक्षक जानता है कि जब लड़के बेकार बैठे रहते हैं, तो वे परस्पर वार्त्तालाप करते हैं, एक दूसरे को मारते-पीटते हैं और कोई-कोई उपद्रव ठाने रहते हैं।

बेकार बैठने का परिणाम यह होता है कि शासन ढीला पड़ जाता है। विपरीत इसके यदि लड़कों को हर समय काम में लगाए रक्खा जाय, तो उन्हें कमरे के अन्दर नटखटी करने का समय नहीं मिलता। अतः शासन ठीक रहता है। इस लाभ के कारण बहुत से शिक्षक लड़कों से लिखित काम बहुत अधिक कराते हैं। मौखिक काम में इस प्रकार अनुचित कमी करने से लड़कों के विभाव अधूरे, अपूर्ण, तथा अव्यक्त रह जाते हैं, जिसके कारण वे निबन्ध लिखने में अनेक अशुद्धियाँ करते हैं। मौखिक काम और लिखित काम में उचित अनुपात होना चाहिए। Proportion का नियम सर्वदा दृष्टि में रखना चाहिए। लिखित काम तब कराना ठीक है, जब लड़कों के विभाव मौखिक काम के द्वारा शुद्ध, स्पष्ट, और पूर्ण कर दिये गये हों। लिखित काम तो विभावों की शुद्धता, स्पष्टता, और पूर्णता की पुष्टि के लिए दिया जाता है। केवल इस विचार से कि लड़के शासन में रहें और प्रधानाध्यापक यह न समझ लें कि शिक्षक महाशय छात्रों का अमूल्य समय वृथा बिता रहे हैं। लिखित काम को मौखिक काम की अपेक्षा अत्यन्त अधिक प्रधानता देना अनुचित ही नहीं वरन् भूल भी है। मौखिक काम इतना अवश्य कराना चाहिए, जितने से लिखित काम को ठीक प्रकार से करने में सहायता मिले और लिखित काम इतना कराया जाना

आवश्यक है कि मौखिक काम की पुष्टि हो। अतः मौखिक काम और लिखित काम में उचित अनुपात न रखनेवाले शिक्षक यदि सर्वदा शिकायत किया करें कि लड़के बार-बार उन्हीं अशुद्धियों को दोहराते हैं, जो कई समय ठीक कर दी गई हैं या शिक्षक को लिखित काम इतना अधिक हो गया है कि वह उसका संशोधन नहीं कर पाता, तो इसमें क्या आश्चर्य है ? ठीक यही दशा उन अध्यापकों की भी रहती है, जो 'डाल्टन-प्लान' पर काम करते हैं; किन्तु समझ बैठते हैं कि 'डाल्टन-प्लान' का अर्थ केवल यही है कि लड़कों को ऐसा काम निर्दिष्ट (Assign) किया जाय कि उन्हें लिखित काम के अतिरिक्त कोई दूसरा काम न करना पड़े। वे समझते हैं कि 'डाल्टन-प्लान' में मौखिक काम का कोई स्थान ही नहीं। इस अनुचित नियम को ध्यान में रखकर जो 'डाल्टन-प्लान' पर काम करते हैं, वे स्वयम् लिखित काम की अशुद्धियों को ठीक करते-करते व्यग्र हो जाते हैं और छात्रों को भी लिखित काम करते-करते व्याकुल कर डालते हैं। डाल्टन-प्रणाली का अधिक विवरण हम आगे चलकर एक अलग परिशिष्ट में मॉन्टेसरी, होवर्ड, ग्रे तथा प्रोजेक्ट-प्रणालियों के साथ-साथ देंगे। यहाँ पर हम यह केवल चेतावनी के रूप में कह देना हितकर समझते हैं कि लिखित काम और मौखिक काम में शिक्षक को सर्वदा उचित अनुपात रखना चाहिए; जिससे

लड़कों को भी पाठशाला की पढ़ाई-लिखाई से लाभ पहुँचे और उसका समय भी शिकायतों में वृथा व्यतीत न हो।

(२) लिखित काम की अशुद्धियों के संशोधन की उचित रीतिः—

लिखित काम की अशुद्धियों को ठीक करने की प्रचलित रीति यह है कि अध्यापक लाल रोशनाई से अशुद्धियों को काट देता है और उनके ऊपर स्वयम् शुद्ध रूपों को लिख देता है, ताकि प्रधानाध्यापक या इन्सपेक्टर महाशय यह न कह पावें कि अध्यापक ने अशुद्धियों को शुद्ध नहीं किया है। वह अशुद्धियों के शुद्ध रूप भी लिख देता है; किन्तु लड़के समझ नहीं पाते कि उन शुद्ध रूपों का क्या तात्पर्य है। अतः वे (लड़के) विना सोचे-समझे अध्यापक की मार के भय से उन शुद्धियों की ठीक नक़ल कापियों की बाईं ओर कर देते हैं। अध्यापक कापियों की बाईं ओर देखता है और यह देखकर संतुष्ट हो जाता है कि लड़कों ने अशुद्धियों के शुद्ध रूप लिख लिये हैं। इसका परिणाम यह होता है कि लड़के बार-बार उन्हीं अशुद्धियों को दोहराया करते हैं, जो अध्यापक ने पहले कई बार ठीक कर दी हैं। "लड़कों की अशुद्धियों को स्वयम् ठीक कर देने और उनकी अशुद्धियों को उन्हें ज्ञात करा देने में बड़ा अन्तर है"। वास्तव में संशोधन करने की सबसे उत्तम रीति तो यह है कि लड़कों को उनकी

अशुद्धियाँ जता दी जायँ और वे स्वयम् अपनी अशुद्धियों के शुद्ध रूप ढूँढ़ें; उन शुद्धरूपों को अपनी कापियों की बाईं ओर लिखें और स्मरण करें। इससे विदित है कि अध्यापक लड़कों को प्रथम यह बात जता दे कि उन्होंने अशुद्धियाँ की हैं और फिर केवल यह बतला दे कि उन्होंने अमुक-अमुक प्रकार की अशुद्धियाँ की हैं। अब प्रश्न उठता है कि यह काम अध्यापक किस युक्ति द्वारा कर सकता है? यह काम वह एक विशेष संकेत-प्रणाली को व्यवहार में लाने से सरलतापूर्वक कर सकता है; यथाः—

लिखित काम की अशुद्धियों को ठीक करने के निमित्त कुछ संकेतः—

अ=अक्षर-विन्यास (हिज्जे) की अशुद्धि।

$\wedge$=कोई बात छूट गई है।

भ=भाषा की अशुद्धि।

व्य=व्याकरण की अशुद्धि।

वि=विराम की अशुद्धि।

अ० प्र०=अप्रासंगिक बात है।

ह=इस पद, शब्द, वाक्यांश, उपवाक्य या वाक्य को हटा दो।

?=कथन की शुद्धता में सन्देह है।

!=भाषा कठिन है या बात बढ़ाकर लिख दी गई है। इत्यादि-इत्यादि।

ऊपर लिखे संकेतों का अर्थ और भी अधिक स्पष्ट हो

जायगा यदि निम्न-लिखित उदाहरण को ध्यानपूर्वक अवलोकन किया जाय:—

अ—तुलाराम एक आलसी मनुष्य है।

^—वह ८ बजे सोकर ^ है।

व्य— नहाने धोने की पहले खाना खाता है।

वि—अपनी दूकान पर वह रोज़ देर में पहुँचता है अतः उसके बहुत से ग्राहक लौट जाते हैं।

भ—ग्राहकों के फिर-फिरकर लौट जाने पर घाटा होने के कारण उस पर ऋण हो गया है।

ह—तुलाराम शोक तथा चिन्ता के कारण से आजकल बड़ा व्याकुल है।

अ० प्र०—भगवान् भक्तवत्सल, करुणानिधि, सर्वव्यापी ही अब उसकी रक्षा कर सकते हैं इत्यादि-इत्यादि।

(नोट:—अशुद्धि-सूचक संकेत न तो इतने अधिक होने चाहिएँ कि छात्र उनको स्मरण रखते-रखते घबरा जायँ और न इतने कम होने चाहिएँ कि बहुत सी साधारण अशुद्धियाँ शुद्ध न हो पाएँ और यों ही छूटती चली जायँ। संकेत ऐसे होने चाहिएँ कि वे स्वयम् अशुद्धि को और उसके प्रकार को भी जता दें। यदि सम्पूर्ण पाठशाला में एक ही प्रकार के संकेतों द्वारा काम लिया जाय, तो और भी अच्छा है, क्योंकि जब लड़के उत्तीर्ण होकर एक कक्षा से दूसरी कक्षा में जायँगे, तो उन्हें फिर दुबारा अशुद्धि-

सूचक संकेतों को सीखना न पड़ेगा। प्रधानाध्यापक तथा इन्सपेक्टर महाशय भी लिखित काम की जाँच सरलता से कर सकेंगे। उन्हें बार-बार प्रत्येक कक्षा में भिन्न-भिन्न संकेतों का अर्थ न लगाना पड़ेगा।

प्रधानाध्यापक चाहे तो अपने स्कूल के सब अध्यापकों को एकत्र कर यह निश्चित करवा सकता है कि कौन-कौन अशुद्धि-सूचक संकेत बालकों के लिखित काम की अशुद्धियों को ठीक करने में शिक्षकों को बरतने चाहिए। जो अशुद्धि-सूचक संकेत निश्चित कर लिये गये हों, उन्हीं का प्रयोग पाठशाला भर में किया जाय।)

अशुद्धि-सूचक संकेतों के प्रयोग करने में शंका:— अशुद्धि-सूचक संकेतों को प्रयोग करने में कुछ अध्यापक यह शंका करते हैं कि उनको व्यवहार में लाने से यह तो अवश्य लाभ है कि लड़कों को अपनी अशुद्धियाँ प्रकट हो जाती हैं, किन्तु उनको अशुद्धियों के शुद्ध रूप ज्ञात नहीं होते, जिसका परिणाम यह हो सकता है कि जब लड़के अशुद्धि-सूचक संकेतों के अनुसार स्वयम् अशुद्धियों को ठीक करके उनके शुद्ध रूपों को लिखेंगे तो सम्भवतः वे एक अशुद्धि के अतिरिक्त दूसरी अशुद्धि कर डालें, किन्तु शिक्षकों की यह शंका निर्मूल है; क्योंकि अशुद्धियाँ विशेषतः स्मरण-शक्ति की त्रुटि के कारण होती हैं। पाठकों को अनुभव होगा कि

शंका का उत्तर

जब कोई बालक कोई अशुद्धि करता है और उससे कहा जाता है कि तुमने अमुक ग़लती की है, उसे स्वयम् ठीक करो, तो वह अशुद्धि के शुद्ध रूप को स्मरण करता है और अपनी ग़लती अपने आप ठीक कर लेता है; यथा यदि किसी बालक ने यह वाक्य कह या लिख दिया हो—मैं अपना पुस्तक लाना भूल गया हूँ; और अध्यापक उससे पूछे कि पुस्तक के साथ 'अपना' शब्द आता है? इस प्रश्न को सुनते ही बालक की स्मृति में झट से आ जाता है कि पुस्तक के साथ 'अपनी' शब्द आता है और इस प्रकार वह अशुद्धि की ओर केवल संकेत करने ही से अपनी ग़लती को स्वयम् ही ठीक कर लेता है। अतः अनुभव से सिद्ध है कि बालकों को यदि यह जतला दिया जाय कि उन्होंने अमुक प्रकार की अशुद्धियाँ की हैं, तो वे स्वयम् उनको ठीक कर लेते हैं। अशुद्धियों को स्वयम् ठीक करने में लड़कों को शुद्ध रूप ढूँढ़ने पड़ते हैं, उन शुद्ध रूपों को कापियों में लिखना पड़ता है, तथा उनको अशुद्धियों पर विचार करना पड़ता है। इसका परिणाम यह होता है कि अध्यापक के काम का भार हलका हो जाता है और अशुद्धियों के शुद्ध रूप भी लड़कों को हृदयस्थ हो जाते हैं, जिसके कारण वे भविष्य में फिर उन्हीं अशुद्धियों को नहीं करने पाते, जो कि वे एक बार कर चुके हैं।

(नोट:—जब लड़के स्वयम् अपनी पिछली अशुद्धियों

को ठीक कर लें और शुद्ध रूपों को याद कर लें, तब भी उन्हें आगे का काम करने को देना चाहिए। अशुद्धियों को ठीक करके लिखने के निमित्त कापी का बायाँ पृष्ठ खाली छोड़ना चाहिए।

जो शिक्षक इस बात को प्रधानता नहीं देते कि लड़कों ने अशुद्धियाँ स्वयम् ठीक करके बायें पृष्ठ पर सुन्दर लिपि में लिख ली हैं और स्मरण कर ली हैं, वे लड़कों में कामचोरी तथा आलस्य करने का स्वभाव डाल देते हैं। बुरा स्वभाव जो बालकों में एक बार पड़ जाता है, उसे उनसे निकालने में अध्यापक को बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है; क्योंकि "स्वभावो मूर्ध्नि वर्त्तते"—ऐसा कहा गया है।

प्रतिदिन आगे का काम कराने से पूर्व घंटे के आरम्भ में यदि इस बात के जानने में अध्यापक ४-५ मिनिट व्यय करे कि बालकों ने अपनी पिछली अशुद्धियाँ ठीक कर ली हैं तथा स्मरण कर ली हैं, तो कोई हानि नहीं; वरन् इससे महान् लाभ ही है।

यदि अध्यापक घंटे के ४-५ मिनिट लड़कों की उन अशुद्धियों को समझाने में व्यय करे, जिनको लगभग सम्पूर्ण लड़कों ने किया है, तो महान् लाभ होगा।

साल के प्रारम्भ ही से लड़कों में ऐसी बान डाल देनी चाहिए कि वे जो कुछ अशुद्धियाँ करें, उन्हें सावधानी और सुन्दरता के साथ अपनी कापी की बाईं ओर लिखकर

याद कर लिया करें। उन लड़कों को, जिन्होंने अपनी कापियाँ स्वच्छ रक्खी हैं और अशुद्धियों को उचित रीति से उनमें भरा है, वार्षिक परीक्षा में ४-५ नम्बर उन लड़कों की अपेक्षा, जिन्होंने कापियाँ मैली-कुचैली रीति से रक्खी हैं और अन्ट-शन्ट तरीक़े पर अशुद्धियों के शुद्ध रूप लिखे हैं, अधिक मिलने चाहिए।

(ख) लिखित काम करते समय बालकों के बैठने का ढंग (Sitting Posture)

लिखते समय बालकों को एक विशेष ढंग से बैठना चाहिए। पाठकों को अनुभव होगा कि यदि किसी बुड्ढे मनुष्य की हड्डी टूट जाती है, तो वह बहुत दिनों में जुड़ती है, किन्तु जितना छोटा बालक होता है, उतनी ही शीघ्र उसकी टूटी हुई हड्डी जुड़ जाती है। क्यों ? इसका उत्तर हम एक दृष्टान्त द्वारा समझाएँगे।

दृष्टान्त—एक छोटे पौदे का तना चाहे वह किसी वृक्ष का हो यदि टेढ़ा-मेढ़ा हो गया हो, तो सरलता से सीधा किया जा सकता है, किन्तु यदि हम किसी पुराने वृक्ष के तने को सीधा करना चाहें तो वह या तो टूट जायगा या बड़ी कठिनाई से सीधा होगा। छोटे पौदे का टेढ़ा तना इस कारण सीधा हो जाता है कि वह बढ़न की दशा में होता है। बढ़न की दशा

में उसमें लचक होती है। एवम् छोटे बालक भी बढ़न की दशा में होते हैं, अतः उनकी हड्डियों में भी लचक होती है। इस लचक के कारण अनुचित ढंग से बैठने में उनकी हड्डियाँ अनुचित रूप या आकार ग्रहण कर लेती हैं। यदि वे झुककर बैठते हैं, तो वे कुबड़े हो जाते हैं। उनके सीने पूर्णतया बढ़ने नहीं पाते। झुककर बैठने से उनकी आँखों पर ज़ोर पड़ता है, जिसका परिणाम यह होता है कि वे (आँखें) दुर्बल हो जाती हैं और बच्चों को ऐनक मोल लेना पड़ता है। झुककर बैठने के इन सब दुष्परिणामों को ध्यान में रखकर शिक्षक को सर्वदा बच्चों को लिखते समय या पढ़ते या बातचीत करते समय बैठने तथा खड़े होने का ठीक ढंग बताना चाहिए। यहाँ पर हम बहुत सूक्ष्म रीति से उस ढंग का वर्णन करेंगे, जो बच्चों को लिखते समय ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि निबन्ध-शिक्षा के अध्यापक को अधिकांश इसी बात से सम्बन्ध है। टि० जी० रूपर एच्० एम्०, इन्सपेक्टर मदारिस, लिखते समय बालकों के बैठने का ढंग इस प्रकार वर्णन करते हैं—

(१) लेखक को सीधा बैठना चाहिए और अपनी पीठ को कुर्सी की पीठ से अड़ा देना चाहिए।

(२) लेखक के कंधे डेस्क के किनारे के समानान्तर रहने चाहिए। लेखक को लिखते समय अपना सीना डेस्क से कदापि नहीं लगाना चाहिए। लिखते समय लेखक का

शरीर डेस्क से १ इंच या उससे कुछ अधिक दूरी पर रहना चाहिए।

(३) लिखते समय लेखक के शरीर का भार दोनों कूल्हों की हड्डियों पर बराबर पड़ना चाहिए।

(४) सिर डेस्क पर बहुत झुका न रहे और न सिर को हाथ पर टिकाया ही रक्खे। सिर आगे को किंचित् झुकाया जा सकता है और दाहिनी ओर से बाईं ओर अथवा बाईं ओर से दाहिनी ओर को आँखों के साथ-साथ कुछ-कुछ घूम सकता है।

(५) अग्रबाहु डेस्क पर रखना चाहिए, न कि कोहनी। लिखते समय हाथ को कागज़ पर आरपार घूमना चाहिए, न कि बाहु को।

(६) क़लम की नोक कम-से-कम लेखक की आँख से १० इंच की दूरी पर होनी चाहिए (अच्छा हो कि वह लेखक की आँख से १२ इंच की दूरी पर रहे।)

(७) ऊपर जो छः उपदेश दिये गये हैं, उनके अनुसार बालक तभी बैठ सकते हैं, जब कि उनकी कापी या कागज़ डेस्क पर शरीर के मध्य भाग के ठीक सामने रक्खा हो।

(८) कागज़ या कापी जिसके ऊपर लिखा जाय उसके नीचे के किनारे को डेस्क के निचले किनारे से ३० से ४० अंश का कोण बनाना चाहिए। इत्यादि-इत्यादि।

ऊपर लिखे उपदेशों पर तभी काम हो सकता है, जब कि लड़कों के बैठने के निमित्त उचित डेस्क और कुर्सियाँ हों; किन्तु कई पाठशालाओं में डेस्क या कुर्सियाँ नहीं होतीं और लड़कों को भूमि पर बिछे हुए चटाई या टाट पर बैठना पड़ता है। जिन बालकों को भूमि पर बैठना पड़ता है और उन्हें लिखते समय किस ढंग से बैठना चाहिए यह निश्चित करना कठिन है। तथापि उनके बैठने की एक रीति नीचे दी गई है—

(१) लड़का अपने बायें पैर को मोड़कर सामने रक्खे अथवा उसी के ऊपर बैठ जाय और दाहिने पैर को खड़ा मोड़कर कापी रखने के काम में लावे।

(२) पाठक सदैव ध्यान रक्खे कि लड़कों की आँखें कापी से कम-से-कम १२ इंच के अन्तर पर रहें।

(३) लड़के अपनी कापियों के नीचे काग़ज़ का एक मोटा पुट्ठा अवश्य रक्खें।

(४) रीढ़-खम्भ यथाशक्ति सीधा रहना चाहिए। सिर ऊपर को उठा रहना चाहिए।

(५) बायें हाथ से कापी को थामे रहना चाहिए, और कलाई दफ़्ती या तख़्ती के साधने में सहायता दे।

(६) भूमि पर बैठनेवाले लड़कों से लिखित काम की समाप्ति के पश्चात् कुछ व्यायाम या खेल अवश्य कराना चाहिए।

(ग) हकलानेवाले बालकों के विषय में कुछ बातें ।

बहुत से लड़के पढ़ते या बोलते समय हकलाया करते हैं । निबन्ध-रचना के घंटे में लड़कों को अनेक कहानियाँ, वृत्तान्त और घटनाओं का वर्णन करना पड़ता है । इसके अतिरिक्त कभी-कभी उन्हें अपने लिखे हुए निबन्ध भी पढ़कर सुनाने पड़ते हैं । अतः निबन्ध-रचना सिखानेवाले अध्यापक को हकलानेवाले बालकों के विषय में कुछ न कुछ जानना आवश्यक है । यदि अध्यापक उनके हकलाने की ओर कुछ ध्यान न देंगे, तो सम्भव है कि लड़कों में हकलाने की आदत पक्की हो जायगी । अध्यापक को यथा-शक्ति प्रयत्न करना चाहिए कि लड़कों का हकलाना छूट जाय ।

लड़के क्यों हकलाया करते हैं ?

प्रायः लड़के पट्ठों की अनुचित गति के कारण हकलाया करते हैं; क्योंकि देखा गया है कि वे लड़के भी हकलाते हैं जिनके कंठ-भाग (Vocal organs) में किसी प्रकार का दोष नहीं होता । लड़के अधिकतर पट्ठों की अनुचित गति के कारण हकलाया करते हैं । अतः अध्यापक हकलानेवाले लड़कों की चिकित्सा कर सकता है । पाठकों को अनुभव होगा कि जब कोई लड़का बहुत डर जाता है, तो वह हकलाकर बोलने लगता है ।

बहुत से लड़के स्वभाव से ही संकोची होते हैं । अध्या-

पक या अपने सहपाठियों से वोलने में वे संकोच किया करते हैं। इस अनुचित संकोच के कारण भी वहुत से लड़के हकला-हकलाकर वोलते हैं। संकोच और भय के कारण वे अपने पट्ठों और नसों को अपने अधिकार में नहीं रख पाते और परिणाम यह होता है कि वे हकलाकर बोलते हैं। लेखक को अनुभव है कि नये लड़के जब पाठशाला में भर्त्ती होने आते हैं, तो वे भय तथा संकोच के कारण बहुधा हकलाकर अध्यापक के प्रश्नों का उत्तर देते हैं। लेखक को जब इस बात का ज्ञान न था तो वह कभी-कभी नये भर्ती होनेवाले लड़कों से यदि ज़ोर से प्रश्न पूछ बैठता था, तो वे हकलाकर उत्तर देना तो दूर रहा, कुछ भी उत्तर न दे पाते थे। जब से लेखक को इस बात का पता चला तब से वह नये भर्ती होनेवाले लड़कों से बहुत प्रेम और नम्रतापूर्वक प्रश्न पूछने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि अधिकतर लड़के उसके प्रश्नों का स्पष्ट भाषा में उत्तर देने लगे। सारांश कहने का यह है कि लड़के अधिकांश अनुचित भय और संकोच तथा पट्ठों वा नसों की अनैच्छिक गति के कारण पढ़ते या बोलते समय हकलाया करते हैं।

ऊपर लिखी बात से विदित है कि हकलानेवाले वालकों की चिकित्सा करने में अध्यापक दो ओषधियों का प्रयोग करेगा:—

(१) प्रथम ओषधि यह है कि लड़कों के अन्दर से अनुचित भय और संकोच निकालना।

(२) द्वितीय ओषधि यह है कि लड़कों के पट्ठों तथा नसों की अनुचित गति को ठीक करना।

इन दोनों ओषधियों को वह निम्न-लिखित रीतियों से प्रयोग में ला सकता है:—

(क) लड़कों से प्रेम तथा नम्रतापूर्वक बोलना। (इससे उनका अनुचित भय दूर होगा)

(ख) गाते समय हकलानेवाले कम हकलाते हैं। इस कारण निबंध-शिक्षा के घंटे में अध्यापक कभी-कभी बाल-गीत को श्यामपट्ट पर लिखकर लड़कों से पढ़वाए।

(ग) हकलानेवाले लड़कों को अध्यापक इस बात में उत्साहित करेगा कि वे लय के साथ बोलें ताकि उनका हकलाना बन्द हो।

(घ) यदि लड़के हकलानेवाले पर हँसें, तो अध्यापक उन्हें ऐसा न करने दे; क्योंकि हकलानेवाले की हँसी करने से उसे अधिक संकोच होगा और वह पहले की अपेक्षा और भी अधिक हकलाने लगेगा।

(ङ) हकलानेवाले लड़के को अध्यापक यह उपदेश दे कि वह घर पर या कहीं अकेले स्थान में अपने पाठों को ज़ोर-ज़ोर से पढ़े।

(च) हकलानेवाले लड़कों के लिए समस्त कक्षा का

सहपठन लाभप्रद होगा। अध्यापक हकलानेवाले से कहेगा कि देखें तुम इन लड़कों की तरह साफ़-साफ़ पढ़ सकते हो या नहीं। इस प्रकार उसमें स्पर्द्धा का भाव जाग्रत् किया जाय। जब हकलानेवाला लड़का पढ़ चुके तो अध्यापक उसके पढ़ने की प्रशंसा करे और कहे कि तुमने आज कल से अच्छा पढ़ा है। अब तुम और भी अच्छी रीति से पढ़ने का प्रयत्न करो। इस प्रकार अध्यापक हकलानेवाले के मन में उत्साह उत्पन्न करेगा।

(छ) हकलानेवाले लड़के से किसी कहानी, वृत्तान्त या घटना का वर्णन कहलवाने से पूर्व नाक से साँस लेने और धीरे-धीरे निकालने की कसरत कराई जाय। इस कसरत का यह परिणाम होगा कि उसके फेफड़ों में स्वच्छ हवा के पहुँचने से कुछ बल आ जायगा। ऐसे बालकों के लिए प्राणायाम अतीव लाभप्रद होगा।

(ज) जिन स्वरों या व्यंजनों के उच्चारण करने में हकलानेवाले लड़के को कठिनाई ज्ञात होती है, अध्यापक उनके उच्चारण का अच्छा अभ्यास करावे तथा उनके उच्चारण करने की विधि प्रत्यक्ष निदर्शनों द्वारा समझावे।

(झ) जो हकलानेवाले ऐसे हों कि जिनको अध्यापक स्वयं ठीक नहीं कर सकता, उनको वह बाध्य करे कि वे किसी डाक्टर या हकीम से चिकित्सा कराएँ।

सप्तम अध्याय

संकल्प और व्यक्तित्व (Will and Personality)

अब तक जो कुछ वर्णन हुआ है उसका मुख्य प्रयोजन यही है कि बालकों की बुद्धि-सम्बन्धी शक्तियों का इस प्रकार साधन किया जाय कि वे बुद्धिमान बनें अर्थात् उनकी मानसिक शक्ति उन्नत हो। किंतु शिक्षा का अर्थ केवल मानसिक शक्ति की ही उन्नति नहीं है वरन् उससे मनुष्य की शारीरिक तथा आत्मिक (Moral) शक्तियों का विकास करना भी अभिप्रेत है। यह बात हम इस पुस्तक के प्रथम अध्याय में भी वर्णन कर आये हैं।

शारीरिक, मानसिक और आत्मिक साधनों का संबंध तथा उनकी आवश्यकताएँ—

कल्पना करो कि किसी मनुष्य की केवल मानसिक शक्ति की ही उन्नति हुई है और आत्मिक शक्ति की नहीं। ऐसा मनुष्य उचित-अनुचित, भला-बुरा, सच-झूठ का भेद तो अवश्य जान लेगा; किन्तु आत्मिक दुर्बलता के कारण वह अपने शुद्ध भाव या विचार को कार्यरूप में परिणत करने में असमर्थ रहेगा। एवम् वह सदाचार और दुराचार का अन्तर तो जान लेगा, किन्तु सदाचार के नियमानुकूल काम न कर सकेगा। सदाचार ही मनुष्य का एकमात्र भूषण है। शिक्षित होते हुए भी यदि कोई

मनुष्य सदाचार से वञ्चित है, तो वह पशुवत् है।......
"मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति"...।

शरीर का हृष्ट-पुष्ट रहना भी अधिकांश आत्मिक शक्ति पर निर्भर है। मान लो कोई मनुष्य व्यायाम आदि उपचारों से अपने शरीर को बलिष्ठ और गठीला बना लेता है, किन्तु आत्मिक शक्ति की दुर्बलता के कारण वह अनेक दुराचारों में लिप्त होकर अपने शरीर को पुनः नष्ट कर डालता है। इससे स्पष्ट है कि शारीरिक उन्नति के लिए भी आत्मिक उन्नति की बड़ी आवश्यकता है। विपरीत इसके आत्मिक उन्नति के निमित्त शारीरिक उन्नति का होना अत्यावश्यक है, क्योंकि प्रायः दुर्बल पुरुष कायर और भीरु होते हैं। रोगी मनुष्य बहुधा हठीला और चिड़चिड़ा होता है। कायरता, डर, हठ और चिड़चिड़ेपन से आत्मा दुर्बल हो जाती है। "का पुरुष अपनी मृत्यु से पहले कई बार मरते हैं, किन्तु वीर पुरुष केवल एक ही बार मरते हैं।" पाठकों को विदित हुआ होगा कि शारीरिक, मानसिक, और आत्मिक शक्तियों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः मनुष्य को इन तीनों शक्तियों के साधन के विना जीवन-संग्राम में सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। वेणाचार्य के इस कथन से कि शारीरिक शिक्षा शिक्षा-नियम के अधिकार के बाहर है, हम सहमत नहीं हैं। हम तो यही कहेंगे कि शिक्षा-प्रदान से जिनका भी सम्बन्ध हो,

चाहे वे अध्यापक हों या प्रधानाध्यापक अथवा माता-पिता, उनको इस बात का अवश्य ज्ञान होना चाहिए कि छात्रों की शारीरिक उन्नति किस प्रकार होनी चाहिए। वेणाचार्य (Professor Bain) के उपरोक्त कथनानुसार बहुत से शिक्षक छात्रों की केवल मानसिक और आत्मिक शक्तियों का ही साधन करते हैं और उनकी शारीरिक शक्ति के साधन की ओर ध्यान नहीं देते। परिणाम यह होता है कि उनके (शिक्षकों के) छात्र बुद्धिमान् तथा सुशिक्षित तो अवश्य होते हैं; किन्तु उन (छात्रों) में से बहुत से (छात्र) सिर की पीड़ा तथा अजीर्ण आदि रोगों से पीड़ित रहते हैं और कहा करते हैं कि "एम्० ए० बनाके क्यों मेरी मिट्टी खराब की।" क्योंकि उन्हें पाठशाला में अधिक मानसिक काम करने के अतिरिक्त घर पर भी रात में लम्बे-लम्बे पाठ पढ़ने पड़ते हैं। बहुत से अध्यापक बालकों को इतना अधिक काम घर पर करने को दे देते हैं कि बेचारे बालकों को खेलने-कूदने का उचित अवसर नहीं मिलता। वे सम्भवतः यह नहीं जानते कि छोटे बालक शीघ्र ही थक जाते हैं और शीघ्र ही स्वस्थ हो जाते हैं। छोटे-छोटे बालक दिन भर में कम-से-कम ३-४ मील चल लेते हैं और तब भी नहीं थकते, किन्तु यदि उन्हें एक फ़र्लांग की भी दौड़ लगानी पड़े, तो वे तुरन्त थक जाते हैं। इस हेतु छोटे बच्चों के लिये पाठशाला में

लम्बे-लम्बे घन्टे नहीं होने चाहिए । अनुभव से सिद्ध है कि १० बरस के बच्चे किसी एक विषय पर या वस्तु पर १५-२० मिनिट से अधिक ध्यान नहीं जमा सकते ।

बच्चे के मस्तिष्क को दो काम करने पड़ते हैं; किन्तु युवक के मस्तिष्क को केवल एक ही काम करना पड़ता है

छोटे बच्चे के विषय में हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि उसके मस्तिष्क को दो कार्य करने पड़ते हैं; किन्तु युवक के मस्तिष्क को केवल एक ही कार्य करना पड़ता है। बच्चे के मस्तिष्क को बढ़ने के साथ-साथ काम भी करना पड़ता है। युवक का मस्तिष्क बढ़ तो चुकता ही है, अतः उसे केवल काम ही करना पड़ता है। छोटे बच्चे के मस्तिष्क का बढ़ना भी दो प्रकार का होता है—एक तो उस (मस्तिष्क) के डीलडौल की वृद्धि होती है और दूसरे उसके आन्तरिक संस्थान की वृद्धि होती है। बच्चे के मस्तिष्क की आकार-वृद्धि के निमित्त पर्याप्त भोजन तथा खेल-कूद इत्यादि की आवश्यकता होती है और उसकी संस्थान-वृद्धि के लिये उचित विश्राम की आवश्यकता है। इन सब कारणों से यह सिद्ध है कि शिक्षक को छात्रों के शारीरिक साधन का ज्ञान अवश्य होना चाहिए और उसे ऐसे ढंग अवश्य जानने चाहिए कि जिनसे उनकी शारीरिक उन्नति हो।

कहने का सारांश यह है कि शिक्षा से केवल विद्याध्ययन

का ही अर्थ नहीं होता, वरन् उसके अंतर्गत शारीरिक तथा आत्मिक शक्तियों को उन्नत और विकसित करना भी आ जाता है। मनुष्यों की शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियों को उन्नत और विकसित करना शिक्षा का ध्येय है। इस कारण शिक्षक को शारीरिक साधन और बुद्धिसाधन (Intellectual Training) के अतिरिक्त आत्मिक साधन का ज्ञान भी होना आवश्यक है। इस अध्याय में अब हम बच्चों के आत्मिक साधन का विवरण करेंगे और बुद्धिसाधन के जिन शिक्षा-सिद्धान्तों का प्रयोग अध्यापक ने पिछले छः अध्यायों में पढ़ा है, उनकी सार्थकता का निश्चय भी करेंगे।

भाव

(Emotions or feelings)

शिक्षा की जिस शाखा से आत्मिक साधन किया जाता है, उसे धार्मिक शिक्षा कहते हैं। धार्मिक शिक्षा की नींव सदाचार है। प्रत्येक बालक का सदाचारी और दुराचारी होना उसके भावों पर अवलम्बित है। जिस प्रकार के भाव उसके मन में उपस्थित होते हैं, उसके कार्य अधिकांश में उसी प्रकार के होते हैं। यथाः—(१) यदि कोई बच्चा मिठाई खाता है, तो उसके मन में प्रसन्नता के भाव उत्पन्न होते हैं। (२) लँगड़े मनुष्य को देखने से उसके मन में

दया के भाव उत्पन्न होते हैं और उस लँगड़े को सहायता पहुँचाने का प्रयत्न करता है। (३) भयजनक वस्तु को देखने से उसके मन में भय के भाव उत्पन्न होते हैं। मन में भय उत्पन्न होने से या तो बच्चा रोने लगता है या भाग जाता है। एवम् आग में अँगुली डालने से बच्चे के मन में दुःख के भाव उत्पन्न होते हैं और इस कारण वह फ़ौरन् आग में से अपनी अँगुली निकाल लेता है। गली में ढोल का बजना सुनकर बच्चे के मन में आनन्द के भाव जाग्रत् होते हैं। अतः वह घर से दौड़कर बाहर गली में जाकर ढोल का बजना खड़े-खड़े सुनता रहता है और आनन्द का अनुभव करता रहता है।

भाव का मन पर प्रभाव

(Effects of feelings on Mind)

इससे स्पष्ट है कि भावों से मन पर दो प्रकार के प्रभाव पड़ते हैं, दुःख या सुख। जिन भावों के प्रभाव से मन में दुःख होता है, उन्हें दुःखदायी भाव और जिनके प्रभाव से मन में सुख होता है, उन्हें सुखदायी भाव कहते हैं। दुःखदायी भाव के होने से बच्चा उस काम को करना रोक देता है, जिससे उसे दुःख होता है। एवम् सुखदायी भाव के होने से बच्चा उस काम को करना अधिक पसन्द करता है, जिससे उसे सुख होता है।

प्रारम्भ में बच्चा बहुत कुछ ज्ञान इन्हीं सुखदायी और दुःखदायी भावों के द्वारा ही प्राप्त करता है।

अब तक जिन भावों का हमने वर्णन किया है, उनको प्रत्यक्ष भाव कहते हैं; क्योंकि वे बाह्य वस्तुओं के प्रभाव शरीर पर पड़ने से उत्पन्न होते हैं। यथाः—(१) लँगड़े के देखने का प्रभाव बच्चे की चाक्षुष इन्द्रियों पर पड़ता है। (२) आग में अँगुली डालने का प्रभाव त्वचा पर पड़ता है। (३) मिठाई खाने का प्रभाव बच्चे की स्वाद-इन्द्रिय पर पड़ता है। इत्यादि-इत्यादि। ये सब प्रभाव बाह्य वस्तुओं अर्थात् लँगड़ा, आग, मिठाई से बच्चे के मन में उत्पन्न होते हैं। इन प्रभावों का वर्णन हम इस पुस्तक के प्रथम अध्याय में इन्द्रिय-जनित ज्ञान के प्रकरण में भी कर आये हैं। बाह्य वस्तुओं के प्रभाव से जो प्रत्यक्ष भाव बच्चे के मन में उत्पन्न होते हैं, उनकी सहायता से भी बच्चा अनेक अच्छे आचरण सीखता है। यथाः—(१) आग में अँगुली न डालना; (२) लँगड़े के ऊपर दया करना, इत्यादि।

प्रथम अध्याय में यह भी कहा गया है कि प्रारम्भ में बच्चा अपने ही प्रतिवेश का दास होता है। उसमें अपनी इन्द्रियों का प्रयोग करने की प्रबल इच्छा होती है। यही कारण है कि ३-४ वर्ष का बच्चा अनेक वस्तुओं को छूता है, चखता है, तोड़ता है, फोड़ता है, बजाता है, इत्यादि।

किन्तु इन सब क्रियाओं का प्रभाव उसकी आत्मा पर पड़ता रहता है, जिसका परिणाम यह होता है कि वह बाह्य वस्तुओं और अपने तईं में भेद अनुभव करने लगता है। वस्तुतः बच्चे में आत्मिक ज्ञान की प्राप्ति का आरम्भ प्रत्यक्ष भावों से ही होता है। छोटा बच्चा वस्तुओं को छूना, तोड़ना, फोड़ना, चखना क्यों चाहता है ? वह सुख को क्यों ढूँढ़ता है और दुःख से क्यों बचना चाहता है।

१ हस्तादि चालन की नैसर्गिक रुचि;

२ खेल की नैसर्गिक रुचि;

३ सुख को ढूँढ़ने और दुःख से बचने की नैसर्गिक रुचि।

नैसर्गिक रुचि किसे कहते हैं ? इसके विषय में हमने इस पुस्तक के प्रथम अध्याय में बहुत कुछ कहा है। नैसर्गिक रुचि वह प्राकृतिक या अन्तरुत्पन्न शक्ति है, जिसको हम अपने पूर्वजों से पाते हैं और जो किसी विशेष कार्य करने को हमें प्रेरित करती है।

हस्तादि चालन की रुचि—अर्थात् हाथ, पैर, मुँह, इत्यादि शरीर के अंगों को चलाने की बच्चे में नैसर्गिक रुचि होती है। वह हर समय यही चाहता है कि उसके हाथ, पैर, मुँह चलते ही रहें। चुप बैठना तो उसे बड़ा बुरा मालूम होता है। इस रुचि के कारण बच्चा अनेक वस्तुओं को छूता है, तोड़ता है, अथवा चूर-चूर कर डालता है।

खेल की नैसर्गिक रुचि (Instinct of play) खिलौने खेलना, गेंद-बल्ला खेलना, गुड़िया खेलना, इत्यादि दृष्टान्तों से प्रकट है कि बच्चे में खेल की नैसर्गिक रुचि होती है। कोई समय था कि शिक्षक और माँ-बाप तथा अन्य मनुष्य बच्चे की इस रुचि को बुरा समझते थे और वे उसको कम करने में यथाशक्ति कटिबद्ध रहते थे। बहुत से अशिक्षित माँ-बाप, जो इस रुचि की महत्ता को नहीं समझते, वे अब भी यही प्रयत्न करते हैं कि उनके बच्चे जहाँ तक हो सके कम खेलें। किन्तु इस रुचि के विषय में अर्वाचीन विचार यह है कि जहाँ तक हो सके, इस रुचि को बच्चों में बढ़ने दो, उन्हें खेल में खूब भाग लेने दो ताकि उनकी शारीरिक तथा मस्तिष्क सम्बन्धी वृद्धियों में किसी प्रकार की बाधा न हो। हम देखते हैं कि मानसिक काम करते-करते जब बच्चे थक जाते हैं और उन्हें खेलने का अवसर दे दिया जाता है, तो वे पुनः पूर्ववत् स्वस्थ हो जाते हैं। वास्तव में छोटे बच्चों को ऐसे पाठ पढ़ाने चाहिए कि वे उन्हें खेल से जान पड़ें। यह सिद्धान्त हम इस पुस्तक के तृतीय अध्याय में भी कह आये हैं। ज्यों-ज्यों बच्चे बड़े होते जायँ और उनकी मानसिक शक्तियाँ विकसित होती जायँ, त्यों-त्यों उन्हें ऐसे पाठ पढ़ाए जा सकते हैं, जिनमें खेल की मात्रा कम हो। देखा गया है कि जब बच्चों को कोई कठिन

या अरोचक काम करना है, तो उस समय यदि खेल की रुचि की किंचित् मात्रा भी उस कठिन या अरोचक कार्य में मिला दी जाय, तो बच्चे उस कठिन या अरोचक कार्य को प्रसन्नता से कर डालते हैं।

यथा—(१) कठिन या अरोचक कार्य कराते समय कक्षा को दो भागों में बाँट देना और बालकों में स्पर्द्धा का भाव जाग्रत् करना। (२) जब बच्चे पाठ पढ़ते-पढ़ते उकता जायँ, तब उनको ऐसा अवसर देना कि जिससे वे पाठ को नाटकरूप में कहें। (३) बच्चों में किसी कठिन विषय के ऊपर निबन्ध लिखाते समय स्पर्द्धा का भाव जाग्रत् करना और उनसे कहना कि जिस बच्चे का सबसे उत्तम निबन्ध होगा, उसका लेख पाठशाला के सबसे बड़े कमरे की दीवार पर टाँग दिया जायगा, ताकि उसके लेख को सर्वसाधारण विद्यार्थी और मनुष्य देखें। (४) रुपये, आने, पाई के प्रश्न करते-करते यदि बच्चे उकता जायँ, तो वे वणिक और ग्राहक का खेल खेल सकते हैं। (५) इतिहास के घंटे के अन्त में वे ऐतिहासिक व्यक्तियों का नाटक खेल सकते हैं। नाटक खेलने के पूर्व बच्चों से कह दिया जा सकता है कि देखें तुममें से कौन सबसे अच्छा नाटक खेलता है। इस प्रकार स्पर्द्धा का भाव उनमें जाग्रत् करने से वे कठिन पाठ में भी अधिक ध्यान देते हैं।

सुख को ढूँढ़ने और दुःख से बचने की नैसर्गिक रुचि
(Instinct of avoidings pain and seeking pleasure)

इस रुचि के कारण बच्चे में अनेक स्वभाव उत्पन्न होते हैं। जिस कार्य के करने से बच्चे को दुःख होता है, उसे वह छोड़ देता है; यथा आग से अँगुली का जलना, और जिस कार्य के करने में बच्चे को सुख होता है, उसे वह बार-बार करता रहता है। किसी भी कार्य को बार-बार करने से उस कार्य के करने का स्वभाव या बान पड़ जाती है। यथा बहुत से छोटे बच्चे अपने पैर के अँगूठे या पहनने के वस्त्रों को चूसा करते हैं। यह कार्य छोटे बच्चों को तो अच्छा लगता है, किन्तु यह निस्सन्देह एक बुरा काम है। माँ-बाप इस स्वभाव को तोड़ने का हर समय प्रयत्न करते रहते हैं। कभी वे बच्चे के अँगूठे पर किसी कड़वी वस्तु को घोटकर लगा देते हैं। बच्चा अपने अँगूठे को जब मुँह में रखता है, तो वह कड़वा लगने के कारण उसे चूसना तुरन्त बंद कर देता है। इस प्रकार एक या दो बार अँगूठे पर कड़वा लेप लगाने से बच्चा प्रायः इस बुरी आदत को त्याग देता है।

दंड और पारितोषिक की प्रणाली
(System of Reward and Punishment)

"दंड और पारितोषिक" की महत्ता भी "सुख ढूँढ़ने और दुःख से बचने की नैसर्गिक बुद्धि" के ही आधार

पर अवलम्बित है। "दण्ड और पारितोषिक" के उचित प्रयोग से भी हम बच्चों में अनेक अच्छी बात डाल सकते हैं। छोटा बच्चा, जैसा कि इस पुस्तक के तृतीय अध्याय में कहा गया है, बहुत दिनों तक जानवरों की नाईं रहता है; क्योंकि वह जन्म लेने के समय से लेकर कुछ काल तक कार्य-कारण से अनभिज्ञ रहता है; सच और झूठ का अन्तर नहीं समझता और अपने प्रतिवेश की वस्तुओं की बुद्ध्यात्मक व्याख्या नहीं कर सकता। अतः जब माँ-बाप छोटे बच्चे के अँगूठे पर किसी कड़वी वस्तु का लेप करते हैं, तो वह यह नहीं समझता कि अँगूठा चूसने में कड़वा क्यों लगता है। वह यह नहीं समझता कि कड़वी वस्तु के लेप के कारण अँगूठा चूसने में कड़वा लगता है। वह तो अँगूठा चूसना ही बुरा समझने लगता है। परिणाम यह होता है कि वह अँगूठे को चूसना बन्द कर देता है। यदि अँगूठे को चूसने की आदत बच्चे में कुछ अधिक काल तक रह जाय, तो वह समझने लगता है कि अँगूठे को चूसना दुःखदायी नहीं है, वरन् कड़वा लेप जो उसके ऊपर लगा है, वही उसे दुःख देता है। अतः जब कड़वा लेप अँगूठे पर से छूट जाता है, तो वह उसे पहले की अपेक्षा और अधिक इच्छा से चूसता है। इस अवस्था में माँ-बाप बच्चे के अँगूठे पर जितना अधिक कड़वा लेप लगाते हैं, उतनी ही अधिक उसमें अँगूठा चूसने की प्रबल इच्छा

होती है। यही कारण है कि जिन बच्चों के ऊपर पाठशाला में कठोर शासन किया जाता है, वे पाठशाला से छुटकारा पाते ही अनेक बुरे-बुरे काम करते हैं। इस पुस्तक के प्रथम अध्याय में हमने इस बात की अधिक महत्ता दर्शाई है कि शिक्षा-प्रदान करने में बच्चों की प्रकृति का बहुत ध्यान रखना चाहिए।

मान लो कि कोई छोटा बच्चा घर पर बहुधा बिना मुँह धोए ही खाना खाया करता है। किन्तु जब वह मुँह धोकर खाना खाता है, तब उसको माँ उस पर प्रसन्न होती है और उसे मिठाई खाने को देती है। माँ का बच्चे को मिठाई देना एक प्रकार का पारितोषिक है। छोटा बच्चा यह नहीं समझता कि मुँह धोकर खाना खाने का परिणाम यह होता है कि उसे मिठाई मिलती है; किन्तु बुद्धि की न्यूनता के कारण वह 'मुँह धोकर खाना खाने' में और उसके परिणाम में 'मिठाई मिलने में' भेद नहीं समझता। इसका परिणाम यह होता है कि बच्चे में मुँह धोकर खाना खाने की अच्छी बान पड़ जाती है। एवम् किसी छोटे बच्चे में अपने भाइयों से लड़ने-झगड़ने की बुरी आदत है। किन्तु जब कभी वह अपने भाइयों से प्रेम-पूर्वक बातचीत करता है और उनके साथ मेल से रहता है, तो उसकी माँ उसके लिए सुन्दर खिलौने मोल लेती है। खिलौने पाकर बच्चे को सुख होता है। अभी वह

'भाइयों से न लड़ने' और उसके परिणाम 'खिलौने पाने' में कोई अन्तर नहीं समझता। अतः उसमें झगड़ा न करने की अच्छी आदत पड़ जाती है। यदि अपने भाइयों से लड़ने की बुरी बान बच्चे में कुछ अधिक काल तक रह जाय, तो तब भी यदि उसे मिठाई और सुन्दर खिलौने दिये जायँ, तो वह भली भाँति समझने लगता है कि मिठाई और खिलौनों का मिलना अपने भाइयों से प्रेम तथा मेलपूर्वक रहने का परिणाम है। इस कारण सम्भव है कि मिठाई और खिलौने पाने की लालच से वह लड़ने के अतिरिक्त अपने भाइयों से कुछ और भी बुरे कार्य करे।

ऊपर लिखी बात से स्पष्ट है कि छोटी अवस्था के बच्चों में हम 'दण्ड और पारितोषिक' देने की प्रणाली से कितने ही अच्छे स्वभाव डाल सकते हैं; किन्तु ज्यों-ज्यों बच्चे बड़े होते जायँ, त्यों-त्यों इस प्रथा के प्रयोग को धीरे-धीरे दूर करते रहना चाहिए। किन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिए कि "दण्ड और पारितोषिक" प्रणाली को नितान्त मूल से ही उखाड़कर फेंक देनी चाहिए। कभी-कभी ऐसा होता है कि बालक में अच्छी नैसर्गिक बुद्धियों के होते हुए भी वह बुरी नैसर्गिक बुद्धियों के प्रबल प्रभाव के कारण बुरा काम कर ही तो डालता है। कभी-कभी यह जानते हुए भी कि अपने भाइयों से लड़ना बुरा काम

है। कोई-कोई बालक उनसे झगड़ा कर ही देता है, तो ऐसी दशा में उसे दण्ड देने से उसकी अच्छी नैसर्गिक बुद्धियाँ फिर जागृति हो जाती हैं और उसकी बुरी नैसर्गिक बुद्धियों को दबा डालती हैं। दण्ड जो बालकों को दिया जाय वह यथासम्भव ऐसा होना चाहिए कि उनके बुरे कार्यों का स्पष्ट फल हो। यथा—यदि कोई बालक अपना पाठ याद करके पाठशाला में नहीं आता, तो उसे पाठशाला के नियुक्त समय के पश्चात्, पाठशाला में छुट्टी होने के बाद आध घंटे रोक दिया जाय और वह पाठ जो वह याद करके नहीं लाया है, याद करवा दिया जाय। एवम् यदि कोई बालक लिखित काम को मलिन रीति से करता है, तो वही काम उससे स्वच्छ रीति से बायें पृष्ठ पर दोबारा करवा लिया जाय। इसी प्रकार यदि कोई बालक पाठशाला में ठीक समय पर न आये, तो उसको उतने समय के लिये खड़ा रक्खा जाय, जितनी देर करके वह पाठशाला में आया है। माँ-बाप भी इसी नियम को दृष्टिगोचर रखते हुए यदि अपने बालकों को दण्ड दें, तो अच्छा है। ऊपर हमने यथा-सम्भव शब्द का प्रयोग इस कारण किया है कि यदि प्रत्येक दण्ड बुरे कार्य को स्पष्ट फल के अनुसार दिया जाय, तो बड़े-बड़े भयंकर अनर्थ हो सकते हैं। मान लो कि कोई बच्चा ज्वर से पीड़ित है और वह औषधि खाना नहीं चाहता, ऐसी दशा में उसके लिए उपरोक्त सिद्धान्त के

अनुसार उचित दंड यही है कि उसे औषधि का सेवन न कराया जाय; किन्तु इस प्रकार का व्यवहार बच्चे के लिए इतना हानिकारक है कि सम्भवतः वह इस लोक से चल बसे। एवम् यदि कोई बच्चा शरद् ऋतु में कपड़े नहीं पहनता है, ऐसे बच्चों के लिए उचित दण्ड यही है कि उसे कपड़े न पहनने दो, ताकि वह निमोनिया से ग्रसित हो जाय और भविष्य में स्वतः शरद् ऋतु में वस्त्र धारण करने की चिन्ता करे; किन्तु ऐसे दण्ड देने से सम्भव है कि वह निमोनिया से इतना पीड़ित हो जाय कि मर जाय। अतः दण्ड देनेवाले अधिकारी को दण्ड देने में अवश्य हस्तक्षेप करना चाहिए और अपराधी को दण्ड देने में उसे अपनी बुद्धि का प्रयोग करना चाहिए। उसे देखना चाहिए कि दण्ड जो अपराधी को दिया जाय, वह अपराधी के लिए ठीक भी है या नहीं। यदि दण्ड और पारितोषिक की प्रणाली बालक के सम्पूर्ण विद्यार्थी-जीवन भर बरती जाय, तो डर है कि उसकी दुःख से बचने और सुख को ढूँढ़ने की नैसर्गिक बुद्धि ही जागृति न हो जाय और उसकी अन्य अच्छी नैसर्गिक बुद्धियाँ बिना प्रयोग के सर्वदा के लिये नष्ट हो जायँ। अतः शिक्षक का कर्तव्य है कि वह बच्चे की सम्पूर्ण नैसर्गिक बुद्धियों का अवलोकन करता जाय और उनके अनुसार उसे शिक्षा दे। बच्चे को शिक्षित करने में नैसर्गिक बुद्धियों का जितना अधिक उचित प्रयोग

किया जायगा, उतना ही अधिक वह चतुर बनेगा। बच्चे में पूर्वोक्त नैसर्गिक बुद्धियों के अतिरिक्त (१) जिज्ञासा (Curiosity) की नैसर्गिक बुद्धि, (२) अनुकरण की नैसर्गिक बुद्धि (Instinct of Imitation), (३) भय (Fear) की नैसर्गिक बुद्धि, (४) संग्रह (Acquisition) की नैसर्गिक बुद्धि, (५) निर्माण (Construction) की नैसर्गिक बुद्धि, (६) युयुत्सा (Self Assertion) की नैसर्गिक बुद्धि और (७) यूथचारित्व की नैसर्गिक बुद्धि भी होती है। इस छोटी पुस्तक में इन सबका विवरण करना कठिन है, किन्तु शिक्षक इन सब नैसर्गिक बुद्धियों के विकास-क्रम को यदि अवलोकन करते जायँ, तो उनसे बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं।

उपरोक्त नैसर्गिक बुद्धियों के विकास होने से बच्चों में अनेक प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं, जिनके कारण वे अनेक प्रकार की क्रियाएँ करते रहते हैं।

भाव के प्रकारः—प्रत्यक्ष भाव तो शरीर पर बाह्य वस्तुओं के प्रभाव के पड़ने के कारण होते हैं; किन्तु प्रत्यक्ष भावों के अतिरिक्त हम में ऐसे भी भाव उत्पन्न होते हैं, जिनका होना अनेक विचारों पर निर्भर होता है। यथा:—(१) किसी मनुष्य के नीच कर्म के विचार जब मन में आते हैं, तो हममें घृणा करने के भाव उत्पन्न होते हैं,

(२) दूसरे की उन्नति के विचार जब मन में आते

हैं, तो हम में उस व्यक्ति से अधिक उन्नति करने के भाव उत्पन्न होते हैं, अर्थात् हम में स्पर्द्धा के भाव जाग्रत् होते हैं; (३) किसी व्यक्ति की करुणाजनक दशा के विचारों से दया के भाव उत्पन्न होते हैं; इत्यादि धार्मिक शिक्षा में अधिकांश इन्हीं भावों से काम पड़ता है। अतः इस अध्याय में हम इन भावों का अधिक विवरण लिखेंगे।

बाल्यकाल की तीन अवस्थाएँ
(Three Stages of childhood)

हम पीछे बतला आये हैं कि अनेक नैसर्गिक बुद्धियों के विकास के कारण बच्चे में अनेक प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं; किन्तु यह भी बतला दिया जाय कि किस अवस्था के बच्चे में किस प्रकार की नैसर्गिक बुद्धियाँ तथा रुचियाँ होती हैं, तो पाठकों को बच्चे के भावों का और भी उत्तम बोध होगा। बाल्यकाल की तीन अवस्थाएँ होती हैं:—

(१) प्रथम बाल्यकाल २½ वर्ष से ७ वर्ष तक होता है।

(२) द्वितीय बाल्यकाल ७ वर्ष से ९ या ११ वर्ष तक होता है।

(३) तृतीय बाल्यकाल ९ या ११ वर्ष से लेकर यौवन काल के प्रारम्भ होने तक होता है।

नोटः—इन्हीं तीन अवस्थाओं से स्कूल के शिक्षक का सम्बन्ध होता है। यौवन काल का सम्बन्ध या तो कालिज

के अध्यापकों से होता है या उस समाज से जिसमें युवक प्रवेश करता है या सम्मिलित होता है।

प्रथम बाल्यकाल
(First childhood)

प्रथम बाल्यकाल में बच्चे की रुचि खेल के प्रति अत्यन्त प्रबल होती है। वह अनेक प्रकार के खेल और खिलौने खेला करता है। विविध भाँति की वस्तुओं से खेलने में उसे अनेक प्रत्यक्ष तथा उपलम्भन होते हैं, जिनके कारण उसको बाह्य वस्तुओं का ज्ञान होता है। वह अपने मन में नाना भाँति की प्रतिमाएँ बनाता है; यथा किसी छड़ी की सवारी करने से वह घोड़े की प्रतिमा अपने मन में बनाता है। ईंटों से खेलते समय वह समझता है कि वह सचमुच कोई घर बना रहा है। जब वह अपनी गुड़ियों को खाना देता है, तो वह समझता है कि उनमें वस्तुतः जान होती है। इससे स्पष्ट है कि उसमें कल्पना-शक्ति की प्रबलता होती है। उसकी कल्पनाओं को देख-देखकर हम उस पर हँसते हैं और उसकी कल्पनाओं को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। इस अवस्था में उसमें अनुसरण की नैसर्गिक बुद्धि भी अधिक होती है। वह अपने माँ-बाप की तरह बोलने का प्रयत्न करता है और उनके अनेक कार्यों की नक़ल करता है। यदि किसी बच्चे का पिता सैनिक हो तो कभी-कभी वह अपने आपको भी सैनिक समझकर क़वायद किया करता है। वह केवल

अपने माँ-बाप की ही नक़ल नहीं करता, वरन् अपने आस-पास वालों की नक़ल भी किया करता है। यथा स्काउटों की तरह मार्च करना, जानवरों की तरह मुँह से पानी पीना। जिज्ञासा की नैसर्गिक बुद्धि का भी उसमें बाहुल्य होता है। वह बहुधा यही पूछा करता है कि वह क्या है? यह क्या है? यह कैसे हुआ? गाय घास क्यों चरती है? मनुष्य क्यों सोता है? इस प्रकार के अनेक प्रश्न पूछते-पूछते वह माँ-बाप को परेशान कर डालता है। इस अवस्था में उसे यदि अपने प्रश्नों का अपूर्ण से अपूर्ण उत्तर भी मिल जाता है, तो वह सन्तुष्ट हो जाता है। इस नैसर्गिक बुद्धि के कारण वह अनेक वस्तुओं को खोल-खोलकर देखता है। यथाः—टॉर्च को खोलकर देखता है कि उसके अन्दर क्या है; घड़ी को खोलकर देखता कि वह टिक-टिक क्यों अथवा काहे से करती है; खिलौने फोड़-फोड़कर देखता कि उनके अन्दर क्या है।

उसके मन में बड़ी चंचलता होती है। उसका ध्यान किसी वस्तु पर भी अधिक समय तक नहीं जमता। इस कारण से भी छोटे बच्चों के लिये घंटे छोटे-छोटे होने चाहिए।

इस अवस्था में बच्चे का ज्ञान अत्यन्त परिमित होता है। सूक्ष्म भावों का उसमें अभाव होता है। यही कारण है कि वह विविध वस्तुओं की पारस्परिक तुलना नहीं कर

सकता। जब उसके माँ-बाप उससे पूछते हैं कि बेटा तुम दुकानदार होकर क्या करोगे ? तो वह झट से कह देता है कि मिठाई बेचूँगा। वह दुकानदार के विशेष-विशेष गुण जानता है; किन्तु उन विशेष-विशेष गुणों से एक साधारण भाव नहीं बना सकता अर्थात् प्रत्याहार तथा अनुगम की क्रियाओं को करना अभी उसके मानसिक शक्ति से बाहर है। इन मानसिक शक्तियों की कमी के कारण वह साधारण वस्तुओं की परिभाषाएँ भी नहीं बतला सकता। अतः जब उससे पूछा जाता है कि बकरी किसे कहते हैं, तो वह बकरी की विशेषताओं का वर्णन कर देता है। यथाः—बकरी हमको दूध देती है; या बकरी की चार टाँगें होती हैं; या बकरी के दो सींग होते हैं। उपरोक्त बातों से सिद्ध है कि छोटे बच्चों के निमित्त ऐसे पाठों की महान् आवश्यकता है, जिनमें उन्हें अपनी इन्द्रियों का प्रयोग करना पड़े।

द्वितिय बाल्यकाल (Second stage of childhood)

द्वितीय बाल्यकाल में बच्चे में कोई बड़ा परिवर्तन नहीं होता। अब भी उसकी दशा लगभग वैसी ही रहती है, जैसी कि प्रथम बाल्यकाल में। उसमें अनुकरण, खेल, जिज्ञासा तथा कल्पना की नैसर्गिक बुद्धि की प्रबलता इस काल में भी रहती है; किन्तु इस काल में बच्चा इतनी उन्नति कर लेता है कि प्रथम काल की अपेक्षा अब वह

वस्तुओं पर अधिक समय तक ध्यान जमा सकता है। अतः अब स्कूल में उसके लिए पहले की अपेक्षा कुछ अधिक लम्बे घंटे होने चाहिए। अब उसकी रुचि कार्य-पटुता प्राप्त करने की ओर होती है। अतः वह अन्य व्यक्तियों के कार्यों का अनुकरण करने से प्रथम यह विचार लेता है कि जिस कार्य की मैं नक़ल करना चाहता हूँ उसको ठीक प्रकार से करने में सफल भी होऊँगा या नहीं। इस कारण अब उसका ध्यान अपने कार्यों के परिणाम की ओर अधिक रहता है।

इस अवस्था में उसकी कल्पना-शक्ति इतनी उन्नत हो जाती है कि अब वह अन्य देशीय बच्चों के विषय में भी कुछ जानने की इच्छा करता है। अतएव उसको अन्य देशीय बच्चों की कहानियाँ और वृत्तांत सुनने में आनन्द आता है। इसी लिए हमने इस पुस्तक के चतुर्थ अध्याय में स्कीमों, पिगमी और खिरगीज़ इत्यादि भौगोलिक कहानियों की सूची भी दी है। तत्सम्बन्धी तस्वीरों को वह बड़े ध्यान से देखता है। अब वह अपने प्रति-वेश के बाहर की वस्तुओं के विषय में भी कुछ जानने की इच्छा प्रकट करता है। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए हमने विविध चित्रों का पढ़ना तथा चित्र-पहे-लिकाओं का प्रयोग भी इस पुस्तक के चतुर्थ अध्याय में दिया है।

द्वितीय बाल्यकाल में आत्मप्रकाश की नैसर्गिक बुद्धि की भी प्रबलता बच्चे में पाई जाती है; क्योंकि वह अपने माँ-बाप या अध्यापक से बहुधा यह कहता है कि देखिए मैंने यह काम कैसी अच्छी तरह किया है; पंडितजी मैं तो इन लड़कों की तरह ऐसा अनुचित काम नहीं करता। वह इस बात से अधिक प्रसन्न होता है कि उसके अध्यापक या माँ-बाप उसकी अन्य सहपाठियों या भाइयों से अधिक प्रशंसा करें। इससे विदित होता है कि आत्म-गौरव की ओर भी बच्चे का ध्यान आकर्षित रहता है। इस नैसर्गिक बुद्धि की उपस्थिति के कारण इस अवस्था में बच्चा स्वकीय भावों (Personal feelings) से परिपूर्ण रहता है। अतः वह दूसरों का कुछ भी ख़याल नहीं रखता। वह तो अपनी प्रशंसा, अपने सुख-दुःख, अपनी वृद्धि तथा अपने मान में ही मग्न रहता है। घर में जब माँ-बाप मिठाई, खिलौने या अन्य सुन्दर वस्तुएँ बाँटते हैं, तो वह उनसे कहता है कि मुझे औरों की अपेक्षा अधिक देना। इन स्वकीय भावों का प्रभाव तीक्ष्ण तथा प्रबल होता है। यदि कोई छोटे बच्चे से कहे कि अगर तुम हमारे घर चलोगे, तो तुम्हें खूब मिठाई खाने को और सुन्दर-सुन्दर वस्त्र पहनने को मिलेंगे, तो यह सुनकर वह ऐसा कहनेवाले व्यक्ति के संग जाने को उद्यत हो जाता है। बच्चे का किसी अपरिचित वस्तु को देखकर डरना या रोना

भी स्वकीय भावों के कारण होता है। ये स्वकीय भाव आत्मिक दुर्बलता के कारण अचिरस्थायी होते हैं; क्योंकि रोते हुए बच्चे को यदि कोई खिलौना दे दिया जाय, तो उसका रोना तुरन्त बन्द हो जाता है। एवम् यदि बच्चा किसी कहानी को कहते-कहते तथा सुनते-सुनते थक जाय, तो उस कहानी-सम्बन्धी चित्र दिखाने से वह फिर पाठ में पूर्ववत् ध्यान देने लगता है। इस सिद्धान्त को दृष्टिगोचर रखते हुए हमने इस पुस्तक के प्रथम अध्याय में इस बात को अत्यन्त प्रधानता दी है कि शिक्षक पाठ में अनेक प्रकार के परिवर्तन कर सकता है। यही कारण है कि पुस्तक में एक ही पाठ पढ़ाने के अनेक ढंग दर्शाए गये हैं।

स्वकीय भावों के अतिरिक्त इस अवस्था में देश-भक्ति के भाव (Patriotic Feelings) भी बच्चे में जाग्रत् होते हैं। प्रथम अवस्था में तो बच्चा प्रायः वही काम करने की इच्छा प्रकट करता है जो कि उसके माँ-बाप करते हैं; किन्तु अब वह आत्मप्रकाश के कारण ऐसा काम करना चाहता है कि बहुत से लोग अर्थात् सम्पूर्ण मुहल्लेवाले या नगर-वाले उसकी प्रशंसा तथा उसका मान करें। वह सेवा-समिति के बालचरों के साथ काम करने की इच्छा प्रकट करता है। वह रेड क्रौस सोसाइटी तथा अन्य उपकारी संस्थाओं, जैसे सर्वेन्ट्स आव इन्डिया सोसायटी में भी प्रवेश करना चाहता है।

तृतीय बाल्यकाल (Third stage of Childhood)

तृतीय बाल्यकाल में बच्चे में अद्‌भुत परिवर्तन हो जाते हैं; क्योंकि उसका शरीर भी बढ़ जाता है और उसमें मानसिक तथा आत्मिक ज्ञान की भी उन्नति हो जाती है। उसमें अब यूथचारित्व (Gregarious Instinct) की नैसर्गिक बुद्धि उत्पन्न हो जाती है, जिसके कारण वह अपने साथियों से अलग रहना पसन्द नहीं करता। इस नैसर्गिक रुचि के कारण बहुत से छात्र पाठशाला में यथाशक्ति प्रति दिन आने का प्रयत्न करते हैं। उन्हें अब मदारी का तमाशा (जिसके विषय में हमने इस पुस्तक के तृतीय पृष्ठ में प्रश्न किया है) पाठशाला जाने से रोक नहीं सकता। अब बालक शरीर-दण्ड को उतना बुरा नहीं समझता, जितना कि प्रथम और द्वितीय बाल्यकाल में (स्वकीय भावों के कारण) समझता था; किन्तु इस अवस्था में यदि उसे अपने सह-पाठियों से अलग किया जाय, तो उसे यह दण्ड शरीर-दण्ड (Corporal Punishment) से भी कई गुना बुरा अनुभव होता है। अतः "ताडयेत् षट्‌वर्षाणि" का नियम जो हमारे मुनीश्वर चाणक्य स्थापित कर गये हैं, वास्तव में यथार्थ है। बच्चे में से स्वकीय भाव धीरे-धीरे हटते जाते हैं और उनके स्थान में अब सामाजिक भाव (Social Feelings) उसमें भरते रहते हैं। स्वार्थपरता उसे हानिकारक प्रतीत होती है। वह अपने साथियों के अधिकारों को उसी

दृष्टि से देखने लगता है, जिससे कि अपने को मिलकर रहना, खेलना, खाना अब उसे अच्छा लगता है। दूसरों से प्रीति, सहानुभूति तथा दया करना अब उसकी प्रकृति के प्रधान गुण हैं। दूसरों के विचार अब उस पर तुरन्त अपना प्रभुत्व डालते हैं। इस कारण माँ-बाप तथा शिक्षक को सर्वदा सावधानतया इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कहीं बालक बुरे स्वभाव या विचार ग्रहण न कर ले। इस उत्तम अवसर में माता-पिता तथा शिक्षक बालक के अन्दर गुरु-भक्ति, पितृ भक्ति, समाज-सेवा इत्यादि अच्छे गुण भर सकते हैं।

अब बालक में संग्रह की नैसर्गिक बुद्धि की अत्यन्त प्रबलता होती है। अतः बालक हफ़्तों और महीनों तक विविध प्रकार की वस्तुओं को संग्रह करता रहता है। यथा टिकट, चित्र, सिगरेट के डिब्बे इत्यादि। संग्रह की नैसर्गिक बुद्धि का उचित प्रयोग शिक्षा-कार्य में यह हो सकता है कि बालकों से भाँति-भाँति की पत्तियाँ, भाँति-भाँति के बीज, विविध प्रकार की भौगोलिक तथा ऐतिहासिक कहानियाँ और महापुरुषों के उपदेश इकट्ठे कराए जा सकते हैं। इससे उनके ज्ञान की वृद्धि होगी और उनमें सौन्दर्य विवेकी भाव (Aesthetic Feelings) जाग्रत् होंगे; क्योंकि वे संगृहीत वस्तुओं की परस्पर तुलना करेंगे। वे प्रत्येक वस्तु में परम पिता जगदीश्वर की विविध

रचनाओं को देखेंगे और परिणाम यह होगा कि वे प्रत्येक वस्तु में कोई न कोई विचित्र सौंदर्य प्रतीत करेंगे। उनके भाव मधुर तथा पवित्र बनेंगे।

इस अवस्था में एक विचित्र परिवर्त्तन बालकों में यह देखा गया है कि वे प्रहेलिकाओं (Riddles) के उत्तर ढूँढ़ने में बड़ी रुचि प्रकट करते हैं। इससे प्रतीत होता है कि उनके मन में विभावना-शक्ति का आवेश हो रहा है। इस विभावना-शक्ति के कारण अब व्याकरण, अंकगणित, रेखागणित आदि विषय उन्हें रोचक लगते हैं। विभावना शक्ति के विकास होने से उनमें यह इच्छा होती है कि वे अपने विभावों का प्रयोग करें। विभावों को व्यवहार में लाने से विवेक की वृद्धि होती है। विवेक के द्वारा बालक सत्य-असत्य, उचित-अनुचित, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का भेद अनुभव करते हैं। वे इस शक्ति के द्वारा अपने कर्तव्यों को सन्मान तथा आदर की दृष्टि से देखते हैं अर्थात् उनमें धार्मिक भाव (Moral Feelings) उत्पन्न होते हैं। इस दशा में उन्हें दण्ड देने की आवश्यकता नहीं पड़ती। यही कारण है कि इस अवस्था में बालकों के अन्दर अनेक धार्मिक भाव उपस्थित होते रहते हैं। धार्मिक भावों के अनुकूल काम करने से उनका संकल्प बलिष्ठ होता है। संकल्प की बलिष्ठता के कारण बालकों की आत्मा (Conscience) भी बलिष्ठ हो जाती है और वे उसी के अनुसार

काम करते हैं। अब अधिकतर वे उस काम को नहीं करते, जिसको करने में उनकी आत्मा गवाही नहीं देती। समाज के झगड़े-बखेड़े अब उनके ऊपर कोई अधिक प्रभाव नहीं डाल सकते। प्रत्येक काम के करने में अब वे सम्पूर्ण मानवजाति का ध्यान रखते हैं। न्याय के अनुसार चलना जातीय भावों को त्याग देना, भेदाभेद को बुरा समझना इत्यादि गुणों का उनमें शनैः-शनैः आवेश होता रहता है। स्मरण रखना चाहिए कि ये सर्वोच्च गुण बालक तभी ग्रहण करते हैं, जब कि उनकी शिक्षा उचित रीति से हुई हो। चूँकि तृतीय बाल्यकाल में बालकों में विभावना, निर्णय, विवेक आदि शक्तियों की जागृति हो जाती है, इसलिए हमने इस पुस्तक के पाँचवें अध्याय में ऐसे पाठों की सूची दी है, जिनसे पूर्वोक्त शक्तियों का साधन हो। यथा, भिन्न-भिन्न विषयों की लाभ-हानि के ऊपर विचार करना, अनर्थक बातों की आलोचना करना, व्याकरण के नियमों के अनुसार वाक्यों का रूपान्तर करना, इत्यादि-इत्यादि।

प्रेरक (Motives):—अनेक नैसर्गिक बुद्धियों, रुचियों तथा विचारों के कारण बच्चे के मन में भिन्न-भिन्न प्रकार के भाव (प्रत्यक्ष, स्वकीय, सामाजिक, ज्ञान-विषयक (Intellectual) सौंदर्य, विवेकी तथा धार्मिक) उत्पन्न होते हैं। भिन्न-भिन्न भावों के उत्पन्न होने से बच्चे के मन

करता है और यह निश्चित करता है कि अमुक इच्छा को पूरा करना उचित है।

इस प्रकार वह उपरोक्त तीनों इच्छाओं में से किसी एक इच्छा को चुन लेता है और उस चुनी हुई इच्छा (अर्थात् प्रेरक) के अनुकूल काम करने की अपने मन में ठान लेता है। प्रेरक (अर्थात् चुनी हुई इच्छा) का एक और उदाहरण नीचे दिया जाता है:—

(क) मान लो कि कोई बालक पाठशाला को जा रहा है। रास्ते में वह एक चोट लगे हुए विद्यार्थी को देखता है। विद्यार्थी के पैर में इतनी चोट लगी है कि उसमें से रुधिर वह रहा है। विद्यार्थी को इस करुणा-जनक दशा में देखकर उसके मन में उसे अस्पताल पहुँचाने की प्रवल इच्छा होती है।

(ख) किन्तु विद्यार्थी को अस्पताल पहुँचाने की इच्छा के साथ उस (बालक) को याद आता है कि वह अपनी कक्षा का मॉनिटर है और उसके जेब में गुरुजी के पेटी की कुंजी है। वह विचार करता है कि यदि मैं आज पाठशाला न जाऊँगा, तो गुरुजी के वहुत से काम रह जायँगे और सम्पूर्ण कक्षा के छात्रों को वड़ी हानि पहुँचेगी।

(ग) किन्तु जब वह इन विचारों में मग्न है, उसी समय कुछ और छात्र आते हैं और वे भी उस पीड़ित विद्यार्थी

की करुणाजनक दशा को देखकर कहते हैं कि भाई साहब परसों भी ठीक इसी दशा में और इसी सड़क पर एक विद्यार्थी पड़ा हुआ था। हमने तो उसको अस्पताल में ले जाकर भरती करवा दिया। इस कारण हम परसों पाठशाले न जा सके थे। वे उस बालक से कहते हैं, यह विद्यार्थी तो तुम्हारे घर के निकट रहता है। इसके माँ-बाप भी इस समय कहीं बाहर गये हैं। इसको तुम इसके घर ही पहुँचा देते; किन्तु वहाँ भी इसकी देखभाल करनेवाला कोई नहीं है। अतः तुम्हारे लिये यह ठीक होगा कि तुम इसको अस्पताल ही ले जाओ। बस यह कहकर अन्य छात्र तो पाठशाला चले जाते हैं।

जब बालक गुरुजी की कुंजी देने का, पीड़ित विद्यार्थी की करुणाजनक दशा का और अन्य छात्रों के कहने का पूर्ण विचार करता है और अपने मन में किसी एक इच्छा को पूरी करने का निश्चय करता है और जिस इच्छा को वह पूरी करने का निश्चय करता है, उसी के अनुसार काम करने की अपने मन में ठान लेता है अर्थात् चुनी हुई इच्छा (प्रेरक) के अनुसार वह अपने मन में काम करने का संकल्प करता है। मान लो कि बालक ने पीड़ित विद्यार्थी को अस्पताल पहुँचाने का संकल्प किया है।

संकल्पः—इस संकल्प के कारण बालक अपनी सम्पूर्ण शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों को प्रेरक-पूर्ति (पीड़ित

विद्यार्थी को अस्पताल पहुँचाने) में लगा देता है। फलतः उसकी बुद्धि भी उन्हीं बातों को विचारती है, जिनसे उसका उद्देश्य फलीभूत हो और उसका शरीर भी उन्हीं कामों को करता है, जिनसे वह अपने उद्योग में सफल हो।

उपरोक्त बातों का ध्यानपूर्वक मनन करने से हम निम्नांकित सिद्धांतों को निकाल सकते हैं।

(क) संकल्प में मन के सम्पूर्ण व्यावहारिक काम पाये जाते हैं; यथाः—(१) शारीरिक क्रियाएँ—हाथ पैर आदि की गति। पीड़ित बालक को अस्पताल ले जाने में बालक अनेक शारीरिक परिश्रम करता है।

संकल्प में मन की सभी क्रियाएँ पाई जाती हैं

(२) अनेक काम की इच्छा करना—बालक पाठशाला जाने की इच्छा करता है; वह गुरुजी को प्रसन्न करने की इच्छा करता है और वह अन्य छात्रों के उपदेश को पूरा करने की इच्छा करता है।

(३) भिन्न-भिन्न प्रकार की इच्छाओं के ऊपर सोच-विचार करना और उनकी पारस्परिक तुलना करके यह निश्चय करना कि अमुक इच्छा ही मेरे कार्य की प्रेरक बनेगी। यथाः—बालक का इस इच्छा का चुनना कि मुझे पीड़ित विद्यार्थी को अस्पताल पहुँचा ही देना चाहिए। सारांश यह है कि संकल्प में मन की तीनों आदि क्रियाएँ

(ज्ञान, अनुभव और संकल्प) सम्मिलित होती हैं।

(ख) आदि में बच्चों का संकल्प दुर्बल होता है। अतः उनके अवधान को कोई भी मनोहर या सुन्दर वस्तु खींच लेती है। इस सिद्धान्त के अनुसार छोटे बच्चों के निमित्त रोचक पाठ होने चाहिए; किन्तु धीरे-धीरे बाह्य वस्तुओं को देखने, छूने, चखने, तोड़ने, फोड़ने से उनका ज्ञान विस्तृत होता जाता है। उनके विभाव स्पष्ट तथा पूर्ण होते जाते हैं, जिसके कारण उनमें विविध वस्तुओं तथा अपने विभावों की पारस्परिक तुलना करने की शक्ति बढ़ती जाती है। इस प्रकार निर्णय करने की शक्ति उनमें बढ़ती जाती है और वे निर्णयों के अनुसार काम करने लगते हैं। बार-बार अपने स्थापित किये हुए निर्णयों के अनुसार काम करने से उनका संकल्प दृढ़ तथा पुष्ट होता जाता है और संकल्प के अनुकूल काम करने से वे अपनी सम्पूर्ण शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों को इष्ट काम की पूर्ति में लगा देते हैं। इस दशा में बाह्य मनोहर या सुन्दर पदार्थ उनके अवधान को अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकते। उनमें कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञानोदय हो जाता है। अनेक रूखे, फीके या निरस पाठों में भी उनका ध्यान जमने लगता है। इन सिद्धांतों को बालकों को शिक्षित बनाने में पूर्णतया ध्यान में रखना अत्यावश्यक है।

संकल्प से शिक्षा-प्रदान में लाभ

संकल्प के दुष्परिणामः—(ग) संकल्प की दृढ़ता के कारण बालक अच्छे-बुरे सभी प्रकार के काम कर सकते हैं; यथाः—बार-बार सिगरेट या तम्बाकू पीने से किसी बालक में बुरे काम यानी तम्बाकू या सिगरेट पीने का पक्का संकल्प उत्पन्न हो सकता है। एवम् बार-बार शुभ कामों के करने से बच्चे में शुभ काम करने तथा शिष्टाचार पर चलने का दृढ़ संकल्प उत्पन्न हो सकता है। हिंसक का संकल्प हिंसा करते-करते दृढ़ हो जाता है। इस कारण वह हिंसा को बुरा काम नहीं समझता। चोरी करते-करते चोर का संकल्प चोरी करने में (जो कि एक बुरा काम है) दृढ़ हो जाता है और वह इस काम को बुरा नहीं समझता।

शुभ और अशुभ संकल्प (Good Will and Bad Will)

स्पष्ट है कि संकल्प दो प्रकार के होते हैं, शुभ संकल्प और अशुभ संकल्प। अब प्रश्न उठता है कि शिक्षक को कौन सा संकल्प बच्चों में पुष्ट तथा दृढ़ करना उचित है? इसी प्रश्न को हम इस प्रकार भी रख सकते हैं—

शुभ संकल्प की ही साधना शिक्षा का ध्येय है

क्या संकल्प उचित या अनुचित मार्ग को ग्रहण करने में स्वतन्त्र है? इस विषय पर अनेक मत-मतान्तर हैं। किसी का मत है कि संकल्प उचित या अनुचित मार्ग को ग्रहण करने

में पूर्णतया स्वतन्त्र है। विपरीत इसके किसी-किसी का कथन है कि संकल्प निपट परतन्त्र है; क्योंकि कहा भी है—"बाबावाक्यं प्रमाणम्।"

(Training Good Will only Should be the aim of Education)

एवम्—

"अनुचित उचित विचारि तजि, जे पालहिं पितु बैन।
ते भाजन सुख सुयश के, बसहिं अमरपति ऐन॥"

एवम्—

"महाजनो येन गतः स पन्थाः।" इत्यादि-इत्यादि।

उपरोक्त प्रश्न अत्यन्त ध्यान देने योग्य है। अतः उसका उत्तर देना परमावश्यक है। मनुष्य कोई यन्त्र या कल नहीं है, जो नितान्त दूसरों की इच्छानुसार काम करती है और मनुष्य पशु भी नहीं है, जो बुद्धि के अभाव के कारण आगे-पीछे की कुछ भी नहीं सोचता, वरन् जैसा अवसर या घटना आ पड़े उसी के अनुसार काम करता है। मनुष्य में तो बुद्धि होती है। वह समझता है कि मैं एक सामाजिक व्यक्ति हूँ और समाज के मण्डल से बाहर जाना मेरे लिए अहितकर है। वह समझता है कि मैं अपने कामों में किसी सीमा तक तो स्वतन्त्र हूँ और किसी सीमा तक परतन्त्र। मनुष्य की प्रकृति पर जन-

संकल्प को परिमित स्वतंत्रता ही दी गई है (Limited Freedom has been Granted to Will.)

समूह के कार्यों का प्रबल प्रभाव पड़ता है। मानव-जाति की आदि दशा से लेकर और वर्तमान काल तक प्रत्येक मनुष्य के व्यक्तिगत कार्यों का वही ढंग है, जो समाज के कार्यों का होता चला आ रहा है। मनुष्य में यूथचारिन की नैसर्गिक बुद्धि तथा अनुकरण की नैसर्गिक बुद्धि का होना यही बात सिद्ध करता है कि वह एक सामाजिक व्यक्ति है। अतः समाज के नियमों के अनुसार उसके कार्य होने चाहिए। वह अपने संकल्प के अनुकूल उसी सीमा तक चल सकता है, जहाँ तक समाज के अधिकारों पर उसके कार्यों का बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। इससे प्रकट होता है कि हमारा संकल्प उचित या अनुचित मार्ग को ग्रहण करने में स्वतन्त्र नहीं है। हममें व्यक्तित्व तब ही उत्पन्न हो सकता है, जब कि हम समाज के नियमानुकूल काम करें। समाज में ही रहकर हम व्यक्तित्व प्राप्त कर सकते हैं। यदि समाज ही नहीं, तो व्यक्तित्व काहे का? संकल्प की स्वतन्त्रता सामाजिक नियमों के बाहर नहीं जा सकती। अर्वाचीन शिक्षा-प्रणाली में हमें इस सिद्धान्त को पूर्णतया दृष्टिगोचर रखना चाहिए। हम चाहते हैं कि छात्र को इतनी स्वतन्त्रता देनी चाहिए कि उसका व्यक्तित्व पूर्ण रूप से बढ़े; किन्तु हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि व्यक्तित्व किसी शून्य स्थान में नहीं बढ़ सकता, वरन् व्यक्तित्व दूसरे व्यक्तियों के संसर्ग में ही रह

कर बढ़ता है। उन अन्य व्यक्तियों का भी स्वतन्त्रता प्राप्त करने का उतना ही अधिकार है, जितना किसी व्यक्तिविशेष का है। अतः शिक्षा में छात्र को परिमित स्वतन्त्रता देनी चाहिए, ताकि छात्र-समुदाय के अधिकारों में किसी प्रकार की अड़चन न पड़े। छात्र-समुदाय में ही रहकर छात्र व्यक्तित्व प्राप्त कर सकता है। परिमित स्वतन्त्रता से यह न समझ लेना चाहिए कि शिक्षक छात्रों के प्रत्येक कार्य में हस्तक्षेप न करे और उनको अनुचित निष्ठुरता, कठोरता और मारपीट से शासन में रक्खे। उसे बच्चों की प्रकृति का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए। हर समय बच्चों से यह कहना ठीक नहीं है कि यह करो, वह करो, ऐसा करो, वैसा मत करो, यों चलो, यों बैठो, फलाँ घंटे में हिंदी पढ़ो, अमुक समय पर खेलो, अमुक घंटे में हिसाब करो, अमुक समय पर मुँह-हाथ धोवो, अमुक समय में ब्यालु करना चाहिए, ऐसा प्रश्न मत पूछो इत्यादि-इत्यादि; क्योंकि इससे उनकी संकल्प-शक्ति दुर्बल पड़ जाती है। उनका व्यक्तित्व बढ़ने नहीं पाता; क्योंकि व्यक्तित्व बढ़ने के लिए उचित स्वतन्त्रता की आवश्यकता है। कदाचित् हमारे इस कथन से पाठक यह शंका करें कि यदि लड़कों को खुला छोड़ दिया जाय, तो वे मनमाने अनेक कार्य करेंगे, पाठ में ध्यान न देंगे, बुरे आचरण सीखेंगे और नटखट बन जायँगे। किन्तु उनकी यह शंका निर्मूल है;

क्योंकि यदि शिक्षा में वालकों की प्रकृति तथा रुचि का ध्यान रक्खा जाय, तो शिक्षक सरलतापूर्वक वालकों का अवधान पाठ की ओर आकर्षित कर सकता है। इसी लिए हमने इस पुस्तक में जहाँ-तहाँ बालकों की प्रकृति तथा रुचि का विवरण दिया है। शिक्षक को विदित है कि आदि में वच्चों में संकल्प की दुर्वलता के कारण बच्चों का अवधान अचिरस्थायी होता है; क्योंकि वे एक विषय पर या वस्तु पर अधिक समय तक ध्यान नहीं जमा सकते। विविध मनोहर या सुन्दर बाह्य वस्तुएँ तुरन्त उनके ध्यान को आकृष्ट कर लेती हैं। आत्मप्रशंसा, आत्मश्लाघा, आत्म-सुख और आत्मदुःख की ओर आदि में बच्चों का अधिक ध्यान होता है। अनुकरण और संग्रह की नैसर्गिक बुद्धियों के कारण बच्चे दूसरों की नक़ल करने और भिन्न-भिन्न प्रकार की वस्तुओं को इकट्ठा करने में मग्न रहते हैं। यदि इन सबको शिक्षक उचित रीति से बरते, तो बच्चे स्वयम् पाठ में ध्यान देंगे और विद्या-प्राप्ति में अपना उत्साह प्रकट करेंगे। पूर्वोक्त सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए हमने इस पुस्तक में छोटे बच्चों के लिए ऐसे पाठों की सूची दी है, जिनमें कि वे अपनी सहज रुचि प्रकट करते हैं; (१) यथा निकटवर्ती स्थूल पदार्थों के ऊपर पाठ; (२) चित्रों का पढ़ना; (३) खेल-कूद; (४) अपने सम्बन्धियों को पत्र लिखना; (५) खिलौनों के ऊपर

पाठ और कहानियों के पाठ; इत्यादि-इत्यादि। हमने पीछे बतलाया है कि इन पाठों के पढ़ाने से शिक्षक किस प्रकार छात्रों की धीरे-धीरे मानसिक उन्नति करता है और उनके संकल्प को दृढ़ करता है, ताकि वे रूखे, फीके पाठों में भी अपना ध्यान दें। वाद-विवाद के ऊपर हमने एक अलग प्रकरण दिया है। वाद-विवाद के घंटे में बालक अपनी सम्मति या भाव स्वतन्त्रतापूर्वक प्रकट कर सकते हैं। वे अपनी इच्छानुसार किसी विषय के पक्ष में या विपक्ष में बोलना स्वतन्त्रतापूर्वक चुन सकते हैं। अपनी सम्मति और इच्छा को प्रकट करने से उनका संकल्प दृढ़ होता है। वे संकल्प के अनुसार काम करने लगते हैं। संकल्प * के अनुकूल चलने से बाह्य मनोहर वस्तुएँ उनके ध्यान को खींच नहीं सकतीं। इस प्रकार शिक्षा-प्राप्ति की उनमें अधिक आन्तरिक प्रेरणा हो जाती है। अतः पाठशाला की सर्वोच्च परीक्षा पास करने पर जब वे पाठशाला को छोड़ देते हैं और सांसारिक जीवन में प्रवेश करते हैं, तो तब भी वे पढ़ने-लिखने का कार्य करते ही रहते हैं। ऐसा स्वभाव लड़कों में उत्पन्न कर देना पाठशाला का एक प्रधान धर्म है। पाठशाला के काम की वास्तविक कसौटी यही है।

* संकल्प का अर्थ यहाँ पर पूर्णतया स्वतन्त्र संकल्प नहीं है, क्योंकि संकल्प को हम यहाँ शिक्षा-प्राप्ति की ओर लगा रहे हैं।

अब तक जो कुछ वर्णन हुआ है, उससे पाठकों को विदित हुआ होगा कि मनुष्य एक सामाजिक जीव (Social being) है। उसके संकल्प को सामाजिक स्वतन्त्रता नियमानुकूल प्राप्त है। संकल्प को पूर्ण स्वतन्त्रता देना उसकी जड़ काटना है; क्योंकि स्वतन्त्र संकल्प के अनुसार काम करने से जन-समूह के अधिकारों को हानि पहुँचेगी। जन-समूह स्वतन्त्र संकल्प के अनुकूल चलनेवाले व्यक्ति के कार्यों में इतना हस्तक्षेप करेगा कि उस व्यक्ति का संकल्प दुर्बल पड़ जायगा। सामाजिक दृष्टि से और (मनुष्य की) प्रकृति की दृष्टि से यदि संकल्प की परीक्षा की जाय, तो सिद्ध है कि संकल्प को परिमित स्वतन्त्रता अवश्य प्राप्त है; किन्तु पूर्ण स्वतन्त्रता उसे कदापि प्राप्त नहीं है। छात्रों को भी छात्र-समाज से निकलकर एक बड़े (सांसारिक) समाज में प्रवेश करना है। अतः उनको भी पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं दी जा सकती। पाठशाला भी एक छोटे समाज की नाईं है। सब छात्रों के एक से अधिकार हैं। वे सब भाई-भाई हैं। शिक्षक के लिए वे सब छात्र पुत्रवत् हैं। प्रत्येक छात्र का कर्त्तव्य है कि वह अपने संकल्प के अनुसार मनमाना काम नहीं कर सकता। उसे अन्य छात्रों के अधिकारों को पूर्णतः दृष्टिगोचर रखना चाहिए। वह अपने व्यक्तिगत (Individual) कार्यों में उसी सीमा तक स्वतन्त्र है, जहाँ

तक कि उसके कार्य दूसरे छात्रों के अधिकारों में दखल नहीं देते। समाज-प्रिय होना उसके लिए परमावश्यक है। समाज-प्रिय वह तभी हो सकता है, जब कि वह अच्छे स्वभाव, अच्छे आचरण और अच्छे विचार रखता हो, अर्थात् शुभ संकल्प के अनुसार काम करे। शुभ संकल्प में क्या गुण होते हैं ? इसका उत्तर हम श्रेष्ठ पुरुषों के तथा शुभाचरण के नियमों के आधार पर नीचे देते हैं—

शुभ संकल्प के लक्षण
Qualities of Good Will.

(१) शुभ संकल्प का प्रथम लक्षण—शुभ संकल्प वह संकल्प है, जिसमें दूसरों के सुख-दुख का पूर्ण विचार हो।

(२) दूसरा लक्षण—समाज के स्थापित नियमों का जिसमें पूरा ध्यान हो, ताकि झगड़ा-बखेड़ा न होने पाए।

(३) तीसरा लक्षण—जिसमें न्याय-अन्याय का पूर्ण खयाल हो, ताकि न्याय-पथगामी को पारितोषिक और अन्यायपथगामी को दण्ड देने का उसमें भाव हो।

(४) चौथा लक्षण—जिसमें स्वार्थ तथा बुरी इच्छा-वाञ्छा न हो।

(५) पाँचवाँ लक्षण—जिसमें परिमित स्वतन्त्रता हो।

हम उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए कह सकते हैं कि छात्रों के शुभ संकल्प की साधना करना ही शिक्षा का ध्येय है। शुभ संकल्प का साधन करना ही बालकों में

धार्मिक या आत्मिक उन्नति करना है। यदि शिक्षा से बालकों की धार्मिक या आत्मिक उन्नति हुई हो, तभी उनकी शिक्षा पूर्ण समझनी चाहिए, क्योंकि कहा भी है—

(१) विद्या ददाति विनयं विनयात् याति पात्रताम् ।
पात्रत्वात् धनमाप्नोति धनात् धर्मं ततः सुखम् ॥
(चाणक्यनीति)

एवम्—(२) "धर्मेण हीनः पशुभिः समानः।"

एवम्—

(३) पूर्ण तथा उदार शिक्षा मैं उसे कहता हूँ, जिसके द्वारा मनुष्य में धर्मपूर्वक, पटुतापूर्वक और औदार्यपूर्वक सम्पूर्ण व्यक्तिगत तथा सार्वलौकिक काम करने की योग्यता प्राप्त हो, चाहे वे काम युद्ध के हों किंवा शान्ति के हों। (मिल्टन)

शुभ संकल्प का साधन करने से बालकों को व्यक्तित्व प्राप्त होता है। व्यक्तित्व के उत्तम गुणों से अलंकृत या सुशोभित कर बालकों को पाठशाला से निकालना और सांसारिक समाज में भेजना शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य है ताकि उन्हें अपने जीवन-संग्राम में सफलता प्राप्त हो। इत्यलम्। ॐ शान्तिः ! ॐ शान्तिः !! ॐ शान्तिः !!!

प्रथम परिशिष्ट

मनोविज्ञान के आधार पर बनी हुई नवीन शिक्षा-प्रणालियाँ

अध्यापक को मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का ज्ञान अवश्य होना चाहिए

जो अध्यापक वास्तव में उपयोगी होना चाहते हैं, उनका प्रधान उद्देश्य "शिक्षा" रहता है। वे अपने उपार्जित ज्ञान को बालकों को इस प्रकार प्रदान करना चाहते हैं कि उनमें वृद्धि और मौलिकता का साथ ही साथ विकास होता जाय। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये पाठक को शिक्षा के मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों से परिचित होना उतना ही अनिवार्य है जितना कि हकीम या वैद्य को प्राणयोषधि जीवन-शास्त्र से। मानसिक शक्तियों के विकास-क्रम की मुख्य-मुख्य बातें तो उसे सम्भवतः सम्यक् प्रकार विदित हो गई हैं और उसे यह भी विदित हो गया है कि शिक्षा के विविध विषयों का इस विकास-क्रम से क्या सम्बन्ध है। अतः हमें पूर्ण आशा है कि अब वह स्वयम् उचित शिक्षा-विधि निश्चित कर सकता है। शिक्षक को यह स्पष्ट हो गया होगा कि उसे स्वयम् अपने विषय में दक्ष होना चाहिए। साधारण जनता का यह समझना उसकी भूल है कि प्रत्येक व्यक्ति उतना तो पढ़ा ही सकता है, जितना वह स्वयम् पढ़ा है। विषय-ज्ञान उतना प्रधान

कदापि नहीं है, जितना कि मानसिक शक्तियों के विकास-क्रम का ज्ञान और विषयों के पढ़ाने का मनोवैज्ञानिक ढंग का जानना है। बहुधा यह होता है कि छोटे-छोटे बच्चों की शिक्षा ऐसे शिक्षकों के सिपुर्द कर दी जाती है, जिन्होंने पाठशाला की दो-एक परीक्षाएँ उत्तीर्ण करके थोड़ा बहुत टूटा-फूटा ज्ञान प्राप्त कर लिया है; किन्तु मनोविज्ञान और मानसिक शक्ति के विकास-क्रम से निपट अपरिचित हैं। जो ऐसे अध्यापकों के हाथ पाठशालाओं का भार देकर (क्योंकि उन्हें अल्प वेतन देना पड़ता है) ग्राम-ग्राम में पाठशालाएँ खोलने का स्वप्न देखते हैं, नितांत भूल करते हैं। ऐसे अध्यापकों को प्रथम नार्मल स्कूल में भली भाँति शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। नहीं, तो ये अलहड़ बछड़े शिक्षा के साथ-साथ बालकों को भी चौपट कर डालेंगे। सौभाग्य की बात है कि संयुक्त प्रान्त का शिक्षा-विभाग भी यह निश्चय कर रहा है कि नार्मल स्कूलों में विषय-ज्ञान के उपार्जन में अधिक समय नष्ट न किया जाय। अधिक समय शिक्षा-विधि तथा शिक्षा-सम्बन्धी सिद्धान्तों के सिखलाने में व्यतीत किया जाय। यह सिद्ध है कि अध्यापक को मनोवैज्ञानिक होना परमावश्यक है।

कक्षा भी एक प्रकार का समाज है, जिसके न्यूनाधिक मात्रा में वे ही नियम होते हैं, जो समाज के होते हैं। इन सब नियमों पर मनोविज्ञान के वेत्ता एक मत नहीं हो सके हैं, परन्तु इस पर तो सभी सहमत हैं कि समाज में एकता उद्देश्य के कारण होती है। यदि किसी एक जन-समूह का एक ही उद्देश्य होता है, तो उस समूह

में एकता हो जाती है; जहाँ उद्देश्य में पृथकता आई कि फूट पैदा हुई। कक्षा में उद्देश्य की इतनी एकता का कारण यही है कि सब छात्रों को अमुक विषय का ज्ञान प्राप्त करना है और अमुक परीक्षा-उत्तीर्ण होना है। अतएव पाठक कक्षा में उद्देश्य की एकता पर्याप्त मात्रा में पा सकता है। सभी बालकों का लक्ष्य एक ही होता है। सामाजिक एकता इसी को कहते हैं।

कक्षा-प्रणाली से हानियाँ (Disadvantages of Class system)

परन्तु कक्षा में भिन्नता भी उपस्थित रहती है। यह भिन्नता तब और भी कठिन होने लगती है, जब कक्षा के बालकों में मस्तिष्क के विकास में भिन्नता होती है। कक्षा में चतुर और मन्दबुद्धि बालकों की उपस्थिति पाठक के लिए एक कठिन समस्या उपस्थित कर देती है। यदि वह मन्द बालकों के साथ चलने का प्रयत्न करता है, तो बहुत से चतुर बालकों का समय नष्ट होता रहता है और यदि वह केवल चतुर बालकों का ही ध्यान रखता है, तो मन्दबुद्धि कोरे के कोरे ही रह जाते हैं।

इससे यह निश्चित होता है कि या तो कक्षा-प्रणाली ही उखाड़ कर फेंक दी जाय या कक्षाबन्दी ऐसी सावधानी से की जाय कि एक के कारण दूसरे बालक को किसी प्रकार की क्षति न उठानी पड़े। इस सिद्धान्त को दृष्टिगोचर रखते हुए शिक्षा-कौशल के आचार्यों ने नवीन-नवीन शिक्षा-प्रणालियाँ स्थापित की हैं, जिनमें कक्षा-निर्माण का महत्त्व घट गया है और बालक के व्यक्तित्व का ध्यान अधिक रक्खा गया है। इन प्रणालियों

के नाम हमने पूर्व में भी दिये हैं और आगे भी इन्हीं का सूक्ष्म उल्लेख किया जायगा। लेखक आशा करता है कि वह उनका पृथक्-पृथक् विस्तृत वर्णन भविष्य में प्रकाशित करेगा।

मॉन्टेसरी-प्रणाली (Montessori Method)

श्रीमती मॉन्टेसरी आचार्या ने अपने इटालियन गुरु सर्जी महोदय से मानव-विज्ञान के अध्ययन में यह देखा कि मनुष्य कैसे उन्नति करता है और उसे कैसे उन्नति करनी चाहिए। इसी समय 'रूसो' ने स्वतन्त्रता का राग अलापा कि शिक्षा का आधार स्वतन्त्रता ही पर है और 'मॉन्टेसरी' ने भी अपनी बाल-शिक्षा-प्रणाली में स्वतन्त्रता का स्वर मिला दिया। शिक्षा में स्वतन्त्रता का शिलारोप मॉन्टेसरी ही के कर-कमलों से हुआ, जिसके लिए समस्त शिक्षा-संसार उनका ऋणी है। यहाँ स्वतन्त्रता से कोई यह तात्पर्य न निकाले कि शासन का नितान्त अभाव ही कर दिया जाता है। स्वतन्त्रता से यह अभिप्राय है कि बालक को सोचने, बोलने और कार्य करने की स्वतन्त्रता दी जाय, जैसा कि हमने संकल्प के अध्याय में इङ्गित किया है।

मॉन्टेसरी-प्रणाली में इन्द्रियों के साधन को प्रधानता दी गई है। इसमें ऐसे उपाय और अभ्यास निकाले गये हैं, जिनसे बालकों की चाक्षुष, श्रावण, स्पर्शन आदि इन्द्रियाँ उन्नत और सशक्त होती हैं और इन्द्रियों को ज्ञान-प्राप्ति के साथ-साथ ज्ञान-प्रकाशन का अवकाश भी दिया जाता है। श्रीमती मॉन्टेसरी का स्वयम् यह कथन है कि "इन्द्रिय-ज्ञान द्वारा ही बालक वस्तुओं को पह-

जानना है और श्रेणी-बद्ध करता है अथवा विभावना से काम करता है।"

मॉन्टेसरी-प्रणाली की दूसरी विशेषता यह है कि वह बालकों की कल्पना-शक्ति को भी प्रधानता देती है।

बालक में कल्पना की अधिकता उसकी अपूर्णता का चिह्न है। जितनी कल्पना-शक्ति बालकों में होती है, उतनी बड़े होने पर नहीं रह जाती। छोटे बच्चे कथाओं में निस्तब्ध विश्वास रखते हैं; भूत-प्रेत की बातें अक्षरसः सत्य मानते हैं; बालक भय दिखाते हैं और एकांत में बैठे-बैठे अद्भुत मानसिक प्रतिमाएँ बनाया करते हैं। वे बहुधा कक्षा में शरीर से तो उपस्थित रहते हैं; किन्तु मन से कहीं और रहते हैं। यह कल्पना शक्ति यदि प्रयोगिक विधि से साधी जाय, तो वह जीवन में बड़ी लाभदायक हो सकती है। शिक्षा कार्य में इससे बड़ी सहायता मिल सकती है। अतः उसको सदा सुमार्ग में लगाना चाहिए।

मॉन्टेसरी-प्रणाली के सिद्धान्तों को ध्यानपूर्वक पढ़ने से पाठकों को विदित हो गया होगा कि उसके सिद्धांत कोई नवीन नहीं हैं, क्योंकि उनका वर्णन इस पुस्तक के पिछले सात अध्यायों में सम्यक् रीति से किया गया है। सिद्धान्त तो सर्वदा एक से रहते हैं; किन्तु उनको व्यवहार में लाने के ढंग भिन्न-भिन्न होते हैं।

डाल्टन-प्रणाली (Dalton Plan)

प्रत्येक अध्यापक के मन में, जो बाल-प्रकृति (Child-nature)

का ध्यानपूर्वक अवलोकन करता है, निम्न बातें अवश्य खटकती रहती हैं:--

(१) बालकों की मानसिक विभिन्नता (Mental Differences)

(२) कक्षा में बहुत से छात्र आगे-पीछे भरती हुआ करते हैं, जिससे उनको पढ़ाने में कठिनाई प्रकट होती है।

(३) कभी-कभी कोई बालक रुग्ण होने के कारण कक्षा में उपस्थित नहीं हो सकता और उसकी पढ़ाई का क्रम बिगड़ जाता है।

(४) बालक के माता-पिता उसकी पढ़ाई में पाठक से अधिकांश सहयोग नहीं करते, जिससे उसके स्वाध्ययन का अच्छा प्रबन्ध हो सके।

(५) एक पाठशाला से दूसरी पाठशाला में जाने से भी छात्रों की पढ़ाई में गड़बड़ी हो जाती है।

(६) बहुत से बालक साल भर तो गुलछर्रे उड़ाते रहते हैं और परीक्षा निकट आने पर इतना परिश्रम करते हैं कि उनका स्वास्थ्य ख़राब हो जाता है।

(७) वार्षिक परीक्षा में संयोग इतना प्रभावशाली होता है कि कभी मन्दबुद्धि (Dullard) भी (यदि दैवात् उसका पूर्व रात्रि का पढ़ा ही परीक्षा में आ गया तो वह) चतुर और सतत परिश्रमी (Intelligent and Diligent) बालकों से नम्बर मार ले जाता है।

(८) जब तक परीक्षा नहीं होती तब तक शिक्षक तथा विद्यार्थी को यह पता नहीं चलता कि वे कितने गहरे पानी में हैं, अर्थात् शिक्षक यह नहीं जान सकता कि उसकी पढ़ाई से बालक लाभ उठा रहे हैं या नहीं और छात्र भी यह नहीं जान सकते कि वे कितनी उन्नति कर रहे हैं।

(९) बहुधा देखा गया है कि कोई चतुर बालक यदि किसी एक विषय में पर्याप्त उन्नति नहीं कर सका, तो उसको अगले साल भी उसी कक्षा में रहना पड़ता है और सब विषयों को फिर से पढ़ना पड़ता है । इस कारण पठन-पाठन उसे अरोचक लगता है।

(१०) कोई बालक इतिहास पढ़ना चाहता है; किन्तु समय-विभाग उसे भूगोल पढ़ने के लिए बाध्य करता है । एवम् जब बालक को अंकगणित के प्रश्न हल करने में मज़ा आने लगा कि इतने में घंटा बज गया। इस तरह उसकी रुचि इन विशेष-विशेष रुकावटों के कारण मारी जाती है।

उपरोक्त त्रुटियों को दूर करने के हेतु मिस पैन्कहर्स्ट ने एक नवीन शिक्षा-प्रणाली निकाली है। जिसका नाम "डाल्टन-शिक्षा-प्रणाली" है। इसका नाम अमेरिका के उस नगर पर पड़ा है, जहाँ पर यह पहले-पहल मिस पैन्कहर्स्ट द्वारा कार्य रूप में परिणत की गई थी। इस प्रणाली में तीन मुख्य सिद्धान्तों के अनुसार काम किया जाता है। वे तीन मुख्य सिद्धांत ये हैं:--(१) स्वतंत्रता, (Freedom), (२) मौलिकता (Individuality) और

(३) भ्रातृत्व (Fraternity)। इन तीनों सिद्धांतों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है:—

स्वतंत्रता (Freedom)

अनुचित परतंत्रता और कठोर शासन के कारण छात्रों का संकल्प दुर्बल पड़ जाता है। यदि छात्र प्रति क्षण अध्यापक की आज्ञानुसार काम करते हैं, तो उनकी बुद्धि का उचित विकास नहीं होने पाता। वे मिट्टी के माधव ही रह जाते हैं। इस विषय में हम सातवें अध्याय में बहुत कुछ कह आये हैं। बालकों को स्वतंत्रता देने के लिए इस प्रणाली में कक्षाबन्दी के स्थान में प्रयोगशालाएँ (Laboratories) होती हैं, यथा इतिहास-प्रयोगशाला, भाषा-प्रयोगशाला, भूगोल-प्रयोगशाला, इत्यादि। प्रत्येक प्रयोगशाला एक विषय-दक्ष (Especialist) पाठक के अधिकार में होती है। प्रयोगशाला में आवश्यक सामग्री संचित होती है। बालकों को पूर्ण अधिकार है कि वे जिस प्रयोगशाला में पढ़ना चाहें, पढ़ें और जब चाहें तब एक प्रयोगशाला को छोड़ दूसरी में जाकर पढ़ें। इस प्रणाली में समय-विभाग का पालन नहीं किया जाता, प्रत्युत उसमें घंटे केवल इस कारण बजाए जाते हैं कि छात्रों को समय का ज्ञान हो जाय। इस प्रणाली में एक मास के काम को निश्चित कर दिया जाता है। ऐसे काम को निर्दिष्ट कार्य कहते हैं। निर्दिष्ट कार्य (Assignment) लिखित तथा मौखिक होता है। निर्दिष्ट कार्य कठिनाई के हिसाब से तीन प्रकार का होता है —(क) साधारण, (ख) कुछ कठिन, और (ग)

अधिक कठिन। साधारण काम मन्द बुद्धिवाले बालकों के लिए होता है। अधिक चतुर बालकों को अधिक कठिन काम करने को दिया जाता है, और बिचली श्रेणी का काम उन बालकों को दिया जाता है, जो न तो मन्दबुद्धि ही होते हैं और न अधिक चतुर ही। इस प्रकार एक बालक को दूसरे के कारण क्षति नहीं उठानी पड़ती। यदि कोई बालक अस्वस्थ होने के कारण पाठशाला से अनुपस्थित रहा हो, तो वह निर्दिष्ट काम को देखने से जान सकता है कि उसे कितना काम और करने को बाक़ी है। निर्दिष्ट कार्य में छात्रों के लिए यह लिखा होता है कि उन्हें अमुक-अमुक अध्यायों में अमुक-अमुक बातें ज्ञात करनी हैं। बालक निर्दिष्ट काम को निर्दिष्ट कार्य-विषयक प्रयोगशाला में जाकर अध्यापक की सहायता से पूर्ण करते हैं। निर्दिष्ट कार्य को पूर्ण करने में छात्र परस्पर एक दूसरे से सहायता ले सकते हैं। जो बात उनकी समझ में नहीं आती, उसे वे अपने गुरु से पूछ सकते हैं। इस प्रकार इस प्रणाली में बालकों को अपनी मौलिकता तथा परस्पर भ्रातृत्व बढ़ाने का अच्छा अवसर मिलता है। जब वह निर्दिष्ट कार्य पूर्ण हो जाता है, तो अध्यापक उसकी जाँच करता है और उन्नति-सूचक कार्ड (Progress Card) में अंकित कर देता है कि निर्दिष्ट कार्य पूरा हो गया और आगे के लिए काम निश्चित कर देता है। इस रीति से प्रत्येक बालक को लाभ पहुँचता है; क्योंकि जो बालक अपना कार्य समाप्त कर लेता है, वह आगे बढ़ता चला जाता है। मन्द बुद्धिवाले बालक भी धीरे-धीरे अपना कार्य समाप्त करते चले

जाते हैं। यदि कोई बालक अपना निर्दिष्ट कार्य किसी निश्चित समय में पूर्ण नहीं कर पाता, तो उसे वह कार्य उन्नति समीकरण-शाला (Adjustment Room) में समाप्त करना पड़ता है। जो छात्र अपने सम्पूर्ण निर्दिष्ट कार्यों को एक वर्ष से पहले ही समाप्त कर लेता है, वह अगली श्रेणी में तुरन्त कार्य पूर्ति के होने पर ही चढ़ा दिया जाता है। इस रीति से छात्रों में अटूट परिश्रम करने की बान डाली जाती है। माँ-बाप भी अपने बालकों की उन्नति का पता उन्नति-सूचक कार्ड के देखने से लगा सकते हैं। इस प्रणाली की एक विशेषता यह भी है कि सम्पूर्ण निर्दिष्ट कार्य छात्र स्वयम् अपने परिश्रम से ही करते हैं, अध्यापक तो उन्हें केवल इतनी ही सहायता दे देता है कि वे आगे बढ़ते चले जायँ। वास्तव में पढ़ना-लिखना तो विद्यार्थी का ही काम है, अध्यापक तो उसके लिये एक मार्ग-दर्शक है।

डॉल्टन-प्रणाली का आधार भी मॉन्टेसरी-प्रणाली की नाईं स्वतन्त्रता पर है, परन्तु स्वतन्त्रता जैसा कि संकल्प के प्रकरण में दिखा आए हैं, परिमित है; क्योंकि बालक इस प्रणाली में उसी सीमा तक स्वतन्त्र है, जहाँ तक कि वह निर्दिष्ट कार्य को पूर्ण करता है। निर्दिष्ट कार्य की पूर्ति न होने पर उसे उन्नति समीकरण-शाला की शरण लेनी पड़ती है।

होअर्ड-शिक्षा-प्रणाली (Howard Plan)

इस प्रणाली का सम्बन्ध पूर्वोक्त डॉल्टन-प्रणाली से वही है, जो डॉल्टन-प्रणाली का मॉन्टेसरी-प्रणाली से है। संक्षेप में यों कहिए

कि सबों का मूल मन्त्र है "शिक्षा में स्वतन्त्रता।" इसका आविर्भाव एक आंग्ल विदुषी श्रीमती डा० श्रोबाइनहैरिस द्वारा क्लैंप्टन (इङ्गलैण्ड) के उस स्थान की पाठशाला में हुआ था, जो जान होअर्ड का जन्मस्थान था। अतएव इसका नाम होअर्ड-प्रणाली रक्खा गया। डा० ब्राइन का लक्ष्य यह है कि प्रत्येक बालक अपनी योग्यतानुसार काम करे। उसने यह दिखाया है कि यह एक स्थूल अनौचित्य का दृष्टान्त है कि एक कक्षा के प्रत्येक बालक को बैठने के लिए एक ही आकार और माप की कुर्सी या डेस्क दिया जाता है। किसी के पैर तो धरती पर रहते हैं और जिसका स्थूल शरीर है, उसे बैठना ही कठिन होता है। तो क्या यही दशा एक ही पाठ, एक ही विषय और एक ही समय को (कक्षा के प्रत्येक बालक के लिए) रखने से उन्हें शारीरिक और मानसिक कष्ट न होगा? इस प्रणाली में यही सोचकर बालकों को यह स्वतन्त्रता दी गई है कि वे एक विषय को दूसरे की अपेक्षा कम या अधिक, जैसी रुचि हो, पढ़ सकते हैं, चाहे आदि में पढ़ें या दिवस के अन्त में। यह तो स्वाभाविक है कि कोई बालक किसी विषय में अधिक सफलता प्राप्त कर सकता है और किसी में कम। अतः सब बालकों से एक ही विषय में बराबर सफलता प्राप्त करने का प्रयत्न कराना उनके साथ सरासर अन्याय करना है। बहुधा यही कारण होता है कि बहुत से बालक किसी एक विषय में पहले निपुणता प्रकट करते हुए दिखाई देते हैं; किन्तु आगे चलकर उनका यह उत्साह मारा जाता है। परिणाम यह होता है

कि वे ज्यों के त्यों रह जाते हैं । इस प्रणाली में कक्षाओं के स्थान पर विषय-गृह (Subject-House) बनाये गये हैं, यथा—इतिहास-गृह, भूगोल-गृह, गणित-गृह, और भाषा-गृह इत्यादि, जिनके नाम भी उस विषय के अनुसार ही रक्खे गये हैं। इस देश में इतिहास-गृह का नाम पानीपत-गृह, भूगोल का नाम विन्ध्य या हिमालय-गृह हो सकता है। एवम् भाषा-गृह का नाम ब्रज-गृह, अवध-गृह, काशी-गृह या नदिया-गृह हो सकता है और गणित-गृह का नाम चक्रवर्ती-गृह या लीलावती-गृह बड़ा अच्छा होगा। बालकों को स्वतन्त्रता रहती है कि जिस गृह में चाहें जितनी देर रहें और जिस गृह में चाहें पहले प्रवेश करें। ये गृह अपने विषय-सम्बन्धी सामग्री से सम्पन्न रहते हैं। वहाँ के अध्यापक बालकों की उन्नति-सूचक सामग्री से सम्पन्न रहते हैं और बालकों के उन्नति-सूचक कार्ड रखते हैं। जब कोई बालक अपना निर्दिष्ट कार्य समाप्त कर लेता है, तो अपने उन्नति-सूचक कार्ड पर अध्यापक के हस्ताक्षर करा लेता है और आगे बढ़ता है।

बालकों के हृदय में यह उत्साह उत्पन्न किया जाता है कि वे तुलनात्मक दृष्टि से देखते रहें कि वे अपने लक्ष्य के प्राप्त करने में कहाँ तक सफल हुए हैं। इस प्रणाली में भी बालकों को अपनी मौलिकता प्रकट करने का बहुत अवसर मिलता है और पुराने करीक्युलम की अपेक्षा बालक काव्य-सौंदर्य के अनुशीलन तथा कला-कौशल-सम्बन्धी कार्य करने का अधिक समय पाते हैं। इस प्रणाली में यह विशेषता भी है कि पाठक विषय-पाठन का अधिक अवकाश पाता है।

ग्रे-प्रणाली (Gray Method)

ग्रे-प्रणाली भी पूर्वोक्त प्रणालियों (मॉन्टेसरी, डाल्टन और होअर्ड) की तरह शिक्षा-सम्बन्धी स्वतन्त्रता अपना ध्येय रखती है। इस प्रणाली के प्रवर्तक एक मि० विलियम ए० रिट थे। यह पहले-पहल ग्रे नामी नगर (शिकागो, उत्तरी अमेरिका) की पाठशाला में चलाई गई थी। मि० रिट का कथन है कि यह एक निस्सार लोकोक्ति है कि पाठशाला में जितने लड़के हों उतने ही डेस्क और स्टूल होने चाहिए। उन्होंने पाठशाला में बाल-संख्या की आधी डेस्कें रक्खीं; क्योंकि उनके कार्य-क्रम और काल-विभाग में ऐसे काम बहुत थे, जिनमें बालकों को कक्षा में रखने की आवश्यकता न थी; जैसे उपवन का काम, ड्रिल और व्यायाम, तैरना, मैनुअल ट्रेनिंग, इत्यादि-इत्यादि। इस विधि से पाठशाला के प्रबन्धक और माता-पिता बड़े प्रसन्न हुए; क्योंकि व्यय घट गया और बालकों को भी विषय-चुनाव में बहुत विस्तार मिल गया।

पाठकों के नियोग में विषय दक्ष पाठक रक्खे गये; जिन्हें एक ही विषय पढ़ाना होता था। इस नियुक्ति में नगर के कर्मचारी और व्यवसायी भी लिए जाते हैं; यथा पाठशाला में स्वास्थ्य-रक्षा का विषय नगर का हेल्थ-ऑफ़िसर पढ़ाता है। वह नगर की घटनाओं से दृष्टान्त देता है। वह नगर के खाद्य पदार्थों को लाकर बालकों के सामने रखता है और उनमें अशुद्धता तथा मैल इत्यादि की जाँच कराता है। इससे बालकों के हृदयांकित होता है कि वे सांसारिक और प्रयोगिक बातें सीख रहे हैं।

प्रत्येक विषय को पर्याप्त समय देने के लिए पाठशाला का समय प्रतिदिन सात घंटे का होता है और पाठशाला सप्ताह में सातों दिन होती है। विषयों की अधिकता होने से बालकों के लिए चुनाव का क्षेत्र बहुत विस्तृत रहता है और प्रत्येक अध्यापक या बालक के लिए आराम तथा परिवर्त्तन के निमित्त उचित समय मिल जाता है।

प्रोजेक्ट-प्रणाली (Project Method)

प्रोजेक्ट-प्रणाली समस्त आधुनिक शिक्षा-प्रणालियों का सार है। यह वह वस्तु है, जिसमें सबका पुट है। अब बालकों का पढ़ाना भेड़ हाँकना नहीं है कि भेड़ी सिर झुकाए उधर भागती चली जाती है, जिधर हँकवाहा डन्डे मार-मार दौड़ रहा है। बेचारी को यह पता नहीं कि वह हरी घास चरने जा रही है या वधस्थान को। अब पाठकों को बतलाना पड़ता है कि बालक जो कुछ पढ़ते हैं, वह सब क्यों पढ़ते हैं। वस्तुतः यह जानना उनका स्वत्व और अधिकार है। बहुत से विषय मानसिक साधन के लिए हैं और यह भी एक उद्देश्य-पूर्त्ति है। अब जो प्रश्न हल करने के लिए बालकों के सामने उपस्थित किये जायँ, वे उनके वास्तविक जीवन से सम्बद्ध हों और प्रयोगिक हों। अब ऐसे प्रश्न नहीं होते कि किसी दो मील लम्बी सड़क को अगर १५ आदमी ३ घंटे काम करके १२ दिन में बनाते हैं, तो ४ दिन में १५ घंटे काम करके कितने आदमी बनाएँगे ? अब सड़क गाँव और नगर से सम्बन्धित होगी; समय लोक-रीति के अनुसार होगा; जन-संख्या भी अनुभव-सिद्ध और उस

काम के लिए उचित होगी; और यह समस्या यहीं तक परिमित नहीं रहेगी। बालक निश्चय करें कि काम किस समय आरम्भ किया जाय कि काम कराने में या पर्याप्त जन-संख्या पाने में कठिनाई न हो; कब बहुत आदमी निठल्ले रहते हैं; दुर्भिक्ष में ऐसे काम होने चाहिए; सड़क बनाने में और किस-किस वस्तु की आवश्यकता होती है ? (कंकड़, पानी, इत्यादि) औरत, बालक, मर्द सभी लगाए जायँ, या केवल मर्द ही, या यदि दोनों, तो किस अनुपात में, ताकि कम से कम ख़र्च में काम हो और किसको कौन काम दिया जाय और किसको कितना वेतन दिया जाय? बालकों को सड़क बनवाने के समस्त विधानों का सामना करना पड़ता है। इसी से इसका नाम प्रोजेक्ट-प्रणाली पड़ा। यद्यपि ऊपर के प्रश्न में अनुपात और समानुपात का प्रयोग है, पर अब अनुपात केवल अनुपात के लिए नहीं है, वरन् अनुपात जीवन की आवश्यकता-पूर्त्ति के निमित्त है।

अब देखना है कि इस विधि का मनोविज्ञान से कैसे समर्थन होता है ? बालक ऐसी समस्याओं को सांसारिक तथा वास्तविक समझते हैं और उन्हें निज जीवन से सम्बद्ध पाते हैं। इस कारण वे उन्हें रुचिकर प्रतीत होते हैं। रुचिकर वस्तुएँ मन को आकर्षित करती हैं और आनन्द देती हैं। अतएव पाठक का काम सरल हो जाता है। बालक मन की प्रेरणा से जनित कार्य को शीघ्र करते हैं। सबसे बड़ा लाभ तो यह है कि बालक आदि से ही अपने को समाज का एक अंग समझने लगते हैं, जिससे वे सांसारिक कठिनाइयों और जटिल समस्याओं से धीरे-धीरे परिचित होते

जाते हैं। इस परिचय का प्रभाव उनके कर्तव्यों पर पड़ता है। वे समाज-प्रिय तथा सदाचारी बनते हैं। शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान-प्राप्ति ही नहीं है, वरन् सदाचार के आधार पर बालक के व्यक्तित्व का बनाना भी है। यह स्मरण रहे कि न तो संसार में और न कक्षा में प्रत्येक कार्य रोचक तथा प्रिय हो सकता है; परन्तु रोचक को अरोचक क्यों बनाया जाय ?

नोट:—पूर्वोक्त नवीन शिक्षा-प्रणालियों का उल्लेख हमने इस पुस्तक में इस उद्देश्य से किया है कि पाठकों को इस बात का पता चल जाय कि अर्वाचीन शिक्षा के आचार्य मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का किस प्रकार से शिक्षा के प्रणाली में प्रयोग कर रहे हैं। मॉन्टेसरी, ग्रे, डॉलटन, होअर्ड और प्रोजेक्ट-प्रणालियों के सिद्धांतों को ध्यान-पूर्वक मनन करने से ज्ञात होता है कि वे सब (सिद्धान्त) प्राचीन हैं। परिमित स्वतन्त्रता, मौलिकता, व्यक्तित्व तथा भ्रातृत्व के विषय में प्राचीन शिक्षा के आचार्य भी कहते-कहते थक गये हैं। सारांश कहने का यह है कि सिद्धान्त तो सर्वदा एक से रहते हैं; किन्तु उनको बर्तने के ढंग विभिन्न होते हैं। यदि कोई शिक्षक मनो-वैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर पढ़ाता है, तो उस । ढंग भी ठीक हो सकता है। कोई भी ढंग "ब्रह्म वाक्य" नहीं समझना चाहिए। हमें पूर्ण आशा है कि शिक्षक शिक्षा-सिद्धान्तों का मनन कर मॉन्टेसरी, होअर्ड, डॉल्टन, ग्रे इत्यादि प्रणालियों से भी बढ़कर प्रणालियों का आविष्कार करेंगे। ईश्वर हमारी कामना को पूर्ण करे।

द्वितीय परिशिष्ट

स्मृति या स्मरण-शक्ति

स्मृति का मन की अन्य क्रियाओं से घनिष्ठ सम्बन्ध है। स्मृति के विषय में कुछ बातें इस पुस्तक में यत्र-तत्र आ गई हैं, किन्तु उन लघु विवरणों से स्मृति का उचित बोध नहीं हो सकता। इस हेतु स्मृति के सम्बन्ध में प्रस्तुत परिशिष्ट लिखने की आवश्यकता पड़ी।

स्मृति का मानसिक जीवन (Mental life) से सम्बन्ध

यह कह देना अनुचित न होगा कि मानसिक जीवन की सम्पूर्ण उन्नति स्मृति पर अत्यधिक निर्भर है। गत अनुभवों को मन में संचय रखना स्मृति का ही काम है। यदि स्मृति इस काम को न करे, तो हमारी दशा पशुओं से भी बुरी हो जाय। आग में हाथ डालने से दारुण दुःख का हमें जो अनुभव होता है, वह हम भूल जायँगे और सम्भव है कि भभकती हुई आग में हम पुनः हाथ डालें। पानी से वस्त्र भीग जाते हैं, इसका हमें कुछ ध्यान न रहेगा। फलतः हम मूसलाधार वर्षा में बिना किसी छाते या बरसाती कोट के चले जायँगे और भीग जायँगे। छोटे बच्चे को ऊँचाई से गिरने पर जो चोट आती है, उसका स्मरण न रहेगा। इस कारण वह छत पर से फिर गिरेगा और दुःख

पाएगा। हम भूल जायँगे कि अमुक वस्तु को छाता, टोपो, पत्थर, पुस्तक या लेखनी कहते हैं। जब-जब हम इन वस्तुओं को देखेंगे, तब-तब हमें उनका नाम पूछना पड़ेगा। हम यह भी भूल जायँगे कि दूसरों के लिये अपशब्दों का प्रयोग करने से क्या हानि होती है। अवलोकन (Observation) तब तक नहीं हो सकता, जब तक कि पूर्व अनुभव या विचार मन में उपस्थित न हों। मान लो कि अध्यापक को बच्चों को बिल्ली का अवलोकन कराना है। जब बच्चों के सम्मुख बिल्ली लाई जायगी, तो वे पूछेंगे—मास्टर साहब, इस पशु को क्या कहते हैं, टाँगों की ओर संकेत करके पूछेंगे—ये क्या हैं? भला बताइए, जब बच्चे इन बातों को भी नहीं जानेंगे, तो वे बिल्ली का अवलोकन कैसे कर सकते हैं? एवम् विभावना (Ideation), कल्पना (Imagination), तर्कना (Reasoning), इत्यादि मानसिक शक्तियाँ ठप्प रह जायँगी; क्योंकि हम उपलब्धि (Perception) द्वारा उपार्जित ज्ञान को भूल जायँगे। वस्तुओं को न पहचानने और उनके गुणों को न जानने से जातिवाचक, व्यक्तिवाचक और सूक्ष्म भाव हम में उत्पन्न ही नहीं होंगे। बिना इन भावों के कल्पना और तर्कना कैसे हो सकती है?

स्मृति के गुण

सिद्ध है कि हम पूर्व विचारों और अनुभवों को केवल स्मृति की सहायता से ही मन में इकट्ठा रखते हैं, या धारण करते हैं। बहुत सी ऐसी बातें होती हैं, जिनको हम मन में धारण तो करते हैं; परन्तु उनको प्रकाशित नहीं कर सकते। यथा:—कभी-कभी हम अपने किसी परिचित व्यक्ति का

नाम भूल जाते हैं। हम अपने मन में यह तो अनुभव करते रहते हैं कि अमुक व्यक्ति का नाम हमें आता तो अवश्य है, किन्तु इस समय वह ध्यान में नहीं आ रहा है। ऐसी अवस्था में हम अनेक नामों को मन ही मन में स्मरण करने का उद्योग करते हैं और याद आने पर कह बैठते हैं, हाँ, उसका नाम यह है। इसी प्रकार हम बहुत सी वस्तुओं को ख़रीदने के लिये बाज़ार जाते हैं और वहाँ पहुँचने पर हमें ज्ञात होता है कि उनमें से कुछ के नाम हम भूल गये हैं। हम उन सब चीज़ों के नाम फिर याद करते हैं, किन्तु फिर भी भूली हुई वस्तुओं के नाम स्मृति में नहीं आते। यदि हमारे साथ कोई नौकर होता है, तो हम उससे पूछते हैं कि ज़रा उन सब चीज़ों के नाम तो लो, जो आज ख़रीदने को हैं। अब नौकर सब चीज़ों के नाम कहता जाता है और हम ध्यानपूर्वक सुनते जाते हैं। ज्यों ही वह भूली हुई वस्तुओं के नाम लेता है, त्यों ही हम कह देते हैं--हाँ, ये ही चीज़ें हैं। एवम् परीक्षार्थी को बहुत सी बातों की धारणा तो होती है, किन्तु परीक्षा के समय वे स्मृति में नहीं आतीं और कभी-कभी ऐसा भी होता है कि परीक्षा समाप्त होने पर भूली हुई बातें उसकी स्मृति में आ जाती हैं। ऐसी दशा में परीक्षार्थी को बड़ा दुःख होता है। वह कहने लगता है—अरे! यदि ये बातें कुछ समय पहले याद आ जातीं, तो मैं अमुक प्रश्न को बिना हल किए न छोड़ता। किन्तु अब क्या करूँ? अब तो मैं परीक्षा के कमरे से बाहर निकल आया हूँ और फिर से अमुक प्रश्न को हल नहीं कर सकता। वह बेचारा

अपनी स्मृति की न्यूनता पर बड़ा पश्चात्ताप करता है। स्मृति में धारण (Retention) के अतिरिक्त प्रत्युत्पन्नता (Readiness) और प्रकाशन (Expression) का होना भी आवश्यक है। बहुत से छात्र ऐसे होते हैं कि उन्हें पढ़ा हुआ पाठ स्मरण रहता है, झटपट सुनाना भी प्रारम्भ कर देते हैं; किन्तु उसे सुनाने में अनेक अशुद्धियाँ करते हैं। उनकी स्मृति में धारण, प्रकाशन और प्रत्युत्पन्नता आदि गुण तो अवश्य होते हैं; किन्तु भाव-शुद्धता (Correctness of ideas) का उनमें अभाव होता है। इसी कारण पाठ सुनाने में वे अनेक अशुद्धियाँ करते हैं।

उत्तम स्मृति के चार लक्षण

कहने का तात्पर्य यह है कि उत्तम स्मृति वही कही जा सकती है, जिसमें धारण, प्रकाशन, प्रत्युत्पन्नता और शुद्धता चार गुण विद्यमान हों। जहाँ इनमें से एक भी कम हुआ और स्मृति में अल्पता पैदा हुई। शिक्षक को चाहिए कि वह छात्रों की स्मृति में पूर्वोक्त चारों गुण उत्पन्न करे। अब जानना यह है कि ये गुण छात्रों की स्मृति में किस प्रकार उत्पन्न किए जा सकते हैं ?

स्मृति के विषय में प्राचीन भ्रान्त धारणा

स्मृति के विषय में शिक्षकों की पहले यह भ्रान्त धारणा थी कि वे उसे शरीर के अन्य अवयव हस्त-पाद आदि की तरह एक अवयव समझते थे। वे समझते थे कि जैसे हाथ-पैर काम लेने से उन्नत होते हैं, उसी प्रकार स्मृति से जितना अधिक काम लिया जायगा, उतनी ही अधिक उन्नत दशा को

वह प्राप्त होगी । इसका यह परिणाम हुआ कि छात्रों से पाठ भली भाँति रटाये जाते थे और बार-बार दोहराये जाते थे, ताकि वे स्मृति में दृढ़ हो जायँ । आज से लगभग १५ वर्ष पूर्व जो विद्यार्थी रहे होंगे, वे अच्छी तरह जानते हैं कि इतिहास और भूगोल आदि विषय कण्ठ करने में उन्हें कितनी कठिनाई होती थी । "हिस्ट्री और जियोग्राफ़ी बड़ी बेवफ़ा, सुबह को पढ़ो और शाम को सफ़ा" उस काल में एक प्रचलित कहावत थी । मुझे अपना अनुभव है कि यदि मैं बाबर के बयान में कहीं 'की' के स्थान में 'का' कह देता था, तो फ़ौरन् मेरे ऊपर दण्ड-प्रहार होता था । एक समय ४ थी कक्षा की छमाही परीक्षा में मुझसे यह प्रश्न पूछा गया कि हिन्दुस्तान के जलवायु का हाल बयान करो । मैंने और तो सब हूबहू वैसा ही कह सुनाया जैसा कि भूगोल की पुस्तक में लिखा हुआ था; किन्तु मैंने एक यह अशुद्धि अवश्य की थी कि दक्षिणी-पूर्वी मानसून का हाल दक्षिणी पश्चिमी के पूर्व ही कह सुनाया । निदान मैं भूगोल में उत्तीर्ण न हो सका । मेरे असफल रहने का दोष शिक्षकों के ऊपर नहीं लगाया जा सकता, वरन् उस समय की उस भ्रान्त धारणा के ऊपर लगाया जाना उचित है, जो कि तब प्रचलित थी । अध्यापक बेचारे स्मृति को उन्नत करने की यही एक उत्तम क्रिया समझते थे और इस कारण वे उसी को स्मृति-साधन का एकमात्र उचित उपाय ख़याल करते थे । बहुत से आधुनिक शिक्षक जो स्मृति-साधन के वैज्ञानिक नियमों से अपरिचित हैं, अब भी वही १५

वर्ष पूर्व का ढंग बर्तते हैं और छात्रों से बार-बार पाठ दोहराया करते हैं। किसी बात को स्मृति में जमाने के लिए आवृत्ति भी निस्सन्देह एक उपाय है।

"करत-करत अभ्यास के, जड़ मति होत सुजान।
रसरी आवत जात ते, सिल पर परत निशान॥"

उपरोक्त दोहे का भाव यह है कि नितान्त दोहराने से स्मृति उन्नत तो हो जाती है; किन्तु इस रीति द्वारा पाठ याद करने में समय बहुत लगता है। किसी कविता को बार-बार पढ़ने से अन्त में वह कण्ठाग्र हो ही जाती है। ऐसे बहुत से व्यक्ति हैं, जो संस्कृत के श्लोकों को ठीक-ठीक सुना तो देते हैं; किन्तु उनका अर्थ ख़ाक भी नहीं समझते। मैंने एक तीन वर्ष के बच्चे को निम्नांकित श्लोक कहते सुना है:—

स्मृति के दो प्रकार

आदौ रामतपोवनादिगमनं हत्वा मृगं काञ्चनं
वैदेहीहरणं जटायुमरणं सुग्रीवसम्भाषणम्।
बालीनिग्रहणं समुद्रतरणं लङ्कापुरीदाहनं
पश्चाद्रावण कुम्भकरणहननम् एतद्धि रामायणम्॥

पाठक स्वयम् सोच सकते हैं कि यह श्लोक बच्चे ने कैसे कंठ कर लिया होगा? क्या वह इस श्लोक के अन्तर्गत भावों को समझता है? आशा है, आप यही कहेंगे कि बच्चे के माँ-बाप ने उपरोक्त श्लोक बच्चे से बार-बार कहलवाया होगा, जिससे अन्त में वह जिह्वाग्र हो गया। बात भी यही ठीक है। बेचारे बच्चे ने अभी राम-रावण के नाम तक को तो सुना ही नहीं, भला श्लोक के अर्थ

को कैसे समझ सकता है ? पाठ-पूजा करते समय बहुत से व्यक्ति स्तव के स्तव बिना पुस्तकों के पढ़ते चले जाते हैं; किन्तु अर्थ किंचित् भी नहीं समझते। ठीक यही दशा हमारे बहुत से छात्रों की भी होती है। वे पाठ के पाठ पढ़ते चले जाते हैं; किन्तु यदि उनसे किसी शब्द का अर्थ पूछा जाय, तो कोरे के कोरे मालूम पड़ते हैं।

अभ्यास-जन्य स्मृति (Habit memory)

स्पष्ट है कि केवल अभ्यास से भी बहुत सी बातें स्मरण हो जाती हैं। अभ्यास द्वारा उत्पन्न की हुई स्मृति को अभ्यास-जन्य स्मृति कहते हैं। प्राचीन शिक्षा-प्रणाली में अभ्यास-जन्य स्मृति से बहुत काम लिया जाता था। "विद्या कण्ठ और पैसा गण्ठ" का मसला सर्वदा से ख़ूब प्रचलित रहा है; किन्तु इसके महत्त्व को कतिपय व्यक्ति ही समझते हैं।

सहज स्मृति (Pure memory)

शिक्षक महाशयों को ज्ञात होगा कि बच्चे मनोहर कथाओं को तुरन्त स्मरण कर लेते हैं। वे उन्हें बार-बार सुनने के उत्सुक रहते हैं। किसी कहानी को दोबारा कहने में यदि कोई शिक्षक नवीन शब्दों को प्रयोग में लाता है, तो बच्चे झट कह उठते हैं--मास्टर साहब, अब की बार आपने और ही शब्दों में कहानी कही है। इससे सिद्ध होता है कि मनोहर कहानियों को बच्चे एक बार के सुनने से ही स्मरण कर लेते हैं। नहीं, तो वे ऐसा कदापि न कह सकते कि मास्टर साहब ने कहानी को दोबारा कहने में अमुक नवीन शब्दों को प्रयुक्त

किया है। यह हाल बच्चों का ही नहीं, वरन् बड़े लोगों का भी है। हमारे जीवन में अनेक घटनाएँ केवल एक ही बार हुई हैं; किन्तु हम उनको भली भाँति स्मरण रखते हैं। यथाः—अपने भाई के विवाह का वर्णन हम सम्यक् रीति से कर सकते हैं। एवम् अपने किसी प्रिय की मृत्यु का वृत्तान्त हम कई वर्ष पश्चात् भी ठीक-ठीक सुना सकते हैं। ये घटनाएँ हमारे जीवन में एक-एक ही बार हुई हैं; किन्तु हम उन्हें भूल नहीं गये हैं। इसी प्रकार अंकगणित के ऐसे अनेक सिद्धांत हैं, जो हमको अभी तक अच्छी तरह स्मरण हैं, यद्यपि हमने उन्हें १० या २० वर्ष पहले पढ़े थे। यह क्यों ? आगे चलकर इस प्रश्न का उत्तर स्वयम् ही विदित हो जायगा। मान लो कि अध्यापक को निम्न-लिखित शब्द बच्चों को याद करवाने हैं:—धनी, चाक़ू, खाना, मीठा, बाज़ार, पैसे, काटना, आम।

यदि वह इन शब्दों को वैज्ञानिक क्रम से रक्खेगा, तो बच्चे उन्हें थोड़े समय में अल्प परिश्रम से याद कर लेंगे। अथवा यदि वह उनको कुछ सम्बन्धित वाक्यों में रख दे, तो तब भी वे उन्हें शीघ्रता से स्मरण कर लेंगे। उपरोक्त शब्दों का एक वैज्ञानिक क्रम यह भी हो सकता है:—धनी, पैसे, बाज़ार, आम, चाक़ू, काटना, खाना, मीठा इस क्रम को हमने वैज्ञानिक क्यों कहा है ? इसका कारण यह है कि धनी के पास पैसे होते हैं। पैसों से बाज़ार में आम ख़रीदा जा सकता है। आम चाक़ू से काटा जाता है और उसके पश्चात् खाया जाता है। खाने से मालूम होता है कि आम मीठा है या खट्टा।

देखियत चक्रवाक खग नाहीं।
कलिहिं पाइ जिमि धर्म पराहीं॥
ऊसर बरसे तृण नहिं जामा।
सन्त हृदय जस उपज न कामा॥
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना।
जिमि इन्द्रियगण उपजे ज्ञाना॥
(रामायण से)

(ख) माला फेरत जुग गया, पाया न मन का फेर।
कर का मनका छाँड़िके, मन का मन का फेर॥
(कबीर की साखी से)

(ग) रसमय वचनों से नाथ जो सर्वदा ही,
मम सदन बहाता स्वर्ग मंदाकिनी था।
श्रुति-पुट टपकाता बूँद जो था सुधा की,
वह नवखानि न्यारी मंजुता की कहाँ है॥
(यशोदा-विलाप से)

उपरोक्त कविताएँ प्रथम तो गूढ़ भावों से परिपूर्ण हैं, दूसरे उनके शब्द भी ऐसे हैं, जो बच्चों की पहुँच के बाहर हैं। ऐसी दशा में बच्चे उन्हें समझ नहीं सकते। परन्तु शिक्षक की भय के कारण और परीक्षा में उत्तीर्ण होने की अभिलाषा से वे उनके अर्थों को किसी कुंजी की सहायता से बार-बार रटकर याद कर लेते हैं। वास्तव में ऐसी शिक्षा पाने से छात्र कोई लाभ नहीं उठा सकते। क्योंकि वे अपने ज्ञान को व्यवहार में लाने में अस-

मर्थ रहते हैं। या यों कहिए कि शब्दावली तो वे खूब जानते हैं; किन्तु उनका भाव तथा प्रयोग नहीं जानते । उनका हाल ठीक उस तोते का सा है जो 'राम-राम' कहना तो जानता है; किन्तु उसके महत्त्व को नहीं समझता। मैंने हिन्दी की अनेक रीडरों (पाठ्य पुस्तकों) को पढ़ा और मुझे मालूम हुआ कि उनमें प्रायः दो बड़ी त्रुटियाँ हैं:—

एक तो वे इतनी क्लिष्ट हैं कि बच्चे उनके शब्दों और भावों को समझ नहीं पाते । फलतः वे कुंजियों की शरण लेते हैं और अनेक पाठों के अर्थ विना समझे-बूझे घोट देते हैं। दूसरे, बाल-जीवन से उनका बहुत कम सम्बन्ध है। मानव-जीवन की पेचीदा बातों को बच्चे क्या समझ सकते हैं, जब बड़े-बड़े लोग तक उनको कठिनता से समझ पाते हैं? छोटे बच्चे तो उन बातों से प्रेम करते हैं, जो उनके जीवन से सम्बन्ध रखती हों।

राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक मर्मों को बच्चे क्या समझें? उन्हें तो अपने 'टेसू के राग', 'झूले के राग', 'काली बिल्ली की कहानी', 'चन्दा मामा' खेल-कूद के विषय पसन्द आते हैं। 'कर का मनका छाँड़िके, मन का मन का फेर', 'जिमि बुध तजहिं मोह मद माना', 'साईं अपने चित्त की भूल न कहिए कोय' इत्यादि गूढ़ बातों को सीखने से वे मुँह मोड़ते हैं; क्योंकि वे उन्हें रुचिकर ज्ञात नहीं होतीं। रुचि और शिक्षा का हम पहले ही घनिष्ठ सम्बन्ध बतला चुके हैं। जो शिक्षा बच्चों को रुचिकर न लगेगी, उससे वे कुछ भी लाभ नहीं उठा सकते। मान लो कि किसी

मनुष्य को वैद्यक-शास्त्र पढ़ने की प्रबल इच्छा है। वह किसी आयुर्वेदिक पाठशाला में जाकर भरती हो जाता है। अब यदि प्रारम्भ में ही उसे रसायन-शास्त्र पढ़ाया जाय, तो वह उसे क्या समझेगा ? परिणाम यह होगा कि उसको वैद्यक-शास्त्र बड़ा ही कठिन मालूम होगा और उसकी रुचि वैद्यक-शास्त्र के पढ़ने से हट जायगी। सम्भव है कि वह उसे छोड़कर और कोई नवीन विषय पढ़ने लगे। यह हाल तो बड़ों का है, फिर छोटे बच्चों का क्या कहना ? यदि प्रारम्भिक कक्षाओं की पाठ्य-पुस्तकें अत्यन्त क्लिष्ट होंगी और बाल-जीवन से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध न होगा, तो लाभ के स्थान में वे हानि पहुँचाएँगी। बच्चे उनमें रुचि प्रकट न करेंगे। पाठशाला उन्हें कारागार मालूम होने लगेगी। पढ़ने-लिखने का काम उन्हें सर्वदा घृणा-जनक प्रतीत होगा। उनका भविष्य बिगड़ जायगा। अत: सिद्ध है कि हिन्दी में कठिनाई के अनुकूल क्रम बद्ध तथा बाल-जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध रखनेवाली पाठ्य-पुस्तकों की बड़ी आवश्यकता है। यदि उनकी यह त्रुटि दूर कर दी जाय, तो अभ्यास-जन्य स्मृति से अधिक काम लेने की आवश्यकता घट जायगी और लड़के सहज-स्मृति का अधिक उपयोग करेंगे अर्थात् उन नियमों का प्रयोग करेंगे, जिनके कारण स्मृति की उन्नति सरलता से होती है। अब हम यह मालूम करेंगे कि स्मृति की उन्नति किन-किन नियमों से सरलतापूर्वक हो सकती है।

अपने भाई का चिट्ठी पाते ही हमारे मन में अपने घर के

भाव साहचार्य
(Law of Association.)

सम्बन्ध में अनेक भाव जाग्रत् हो जाते हैं। हमें अपने घर की बनावट का ध्यान होने लगता है। माता-पिता का ध्यान आ जाता है। यदि हमारे घर के सामने कोई मन्दिर या मसजिद हो, तो उसका भी हमें ध्यान हो जाता है। धीरे-धीरे मुहल्ले भर का समाँ आँखों के सामने बँध जाता है। इतना ही नहीं वरन् अपने गाँव का चित्र आँखों के सामने खड़ा हो जाता है।

एवम् 'नारङ्गी' शब्द के सुनते ही हमें नारङ्गी के छिलके का ध्यान हो जाता है। हमें नारङ्गो की मिठास, सुगन्ध, फाँकें, बीज, पेड़ और बाजार का भी ध्यान हो जाता है।

ऐसा क्यों होता है? इसका कारण यह है कि बहुत से विचार पारस्परिक सम्बन्ध के कारण इस प्रकार जुड़ जाते हैं, जिस प्रकार कि किसी श्रृंखला की कड़ियाँ। ज्यों ही एक कड़ी को उठाया और सब कड़ियाँ स्वतः उठने लगीं; ज्यों ही एक विचार स्मृति में जाग्रत् हुआ त्यों ही तत्सम्बन्धा अन्य विचार भी अपने आप उत्पन्न होने लगे। भाई की चिट्ठी का घर से, घर का माता-पिता से, माता-पिता का मुहल्ले से, और मुहल्ले का ग्राम से सम्बन्ध है। यही कारण है कि चिट्ठी के पाते ही सम्पूर्ण ग्राम का चित्र आँखों के सामने खिंच जाता है।

नारङ्गी के बीज, फाँक, पेड़, सुगन्ध, मिठास, छिलके का परस्पर सम्बन्ध है। नारङ्गी बाज़ार में मिलती है। इस कारण बाज़ार का भी नारङ्गी से सम्बन्ध है। और चूँकि 'नारङ्गी शब्द'

'नारङ्गी फल' से सम्बन्ध रखता है, इसलिये केवल शब्द से ही यथार्थ वस्तु का बोध हो जाता है। इन सम्बन्धों के कारण स्मृति नारङ्गी के विविध भावों को मन के सामने तुरन्त रख देती है और हमें नारङ्गी का स्मरण हो जाता है।

उपरोक्त बातों से हम यह नियम निकाल सकते हैं कि हिन्दी की पढ़ाई अलग शब्दों से प्रारम्भ नहीं होना चाहिए; वरञ्च आरम्भ से ही शिक्षकों को वाक्यों का प्रयोग करना चाहिए, क्योंकि शब्दों को अलग-अलग स्मरण रखने की अपेक्षा उनको कुछ सम्बन्धित वाक्यों में याद रखना कठिन है। मैंने ऐसी बहुत सी हिन्दी प्राइमरें देखी हैं, जिनमें सबसे प्रथम अक्षरों के पाठ हैं, या शब्दों के हैं। ऐसी प्राइमरों को याद करने में बच्चों को अधिकतर अभ्यास-जन्य स्मृति को प्रयुक्त करना पड़ता है; क्योंकि अलग शब्दों में वे सम्बन्धों को स्थापित करने से असमर्थ रहते हैं। बहुत से शिक्षक बच्चों से नवीन शब्दों को वाक्यों में प्रयोग तो कराते हैं; किन्तु वे इस बात का ध्यान नहीं रखते कि उन शब्दों का किसी विशेष वस्तु से सम्बन्ध है या नहीं। इसका परिणाम यह होता है कि बच्चे नवीन शब्दों को वाक्यों में प्रयोग तो कर लेते हैं; किन्तु थोड़े दिनों के पश्चात् उनको भूल जाते हैं।

विपरीतता का नियम (Law of Contrast.)

काली वस्तु के देखने से श्वेत का ध्यान आ जाता है। एवम् मोटी चीज़ से पतली का, गरम जल से ठण्ढे का, और ऊँचे स्थान से नीचे का, इत्यादि। अर्थात् भावों की विपरीतता के कारण भी स्मृति

की उन्नति होती है । अतः बहुत से विपरीत भाव एक संग सिखाने हितकर हैं । हिन्दी-रीडरों में यदि कोई पाठ किसी बहादुर मनुष्य के बारे में हो, तो कोई डरपोक के बारे में भी होना चाहिए, जिससे कि बच्चे विपरीतता के नियम की सहायता से उन्हें शीघ्र याद कर लें । यदि पुस्तक में केवल अच्छे ही आचरणवाले व्यक्तियों का वर्णन होगा, तो बच्चों को शुभाचरण का उचित ज्ञान नहीं हो सकता ।

सादृश्य-नियम (Law of resemblance.)

अपने पिताजी की श्वेत डाढ़ी देखकर हमें अन्य श्वेत डाढ़ी-वाले पुरुषों का स्मरण हो जाता है । अपने राजा का नाम सुनने से हमें दूसरे राजाओं के नाम भी याद आ जाते हैं । किसी ग्राम का विवरण पढ़ने से हमें अपने ग्राम का ध्यान भी हो जाता है । गुड़ के खाने से हमें जलेबी, रेवड़ी, पेठे की मिठाई, हलवा इत्यादि की भी याद आ जाती है । [illegible]ी काले मनुष्य को देखने से हमें हब्शी की याद आ जाती [illegible] टट्टू को देखने से अरबी घोड़े का विचार जाग्रत् होता है । यह क्यों ? यह इसलिये कि अनेक सदृश भाव आपस में जुड़ जाते हैं और एक की याद आने से दूसरा भी याद आ जाता है । सिद्ध है कि एक सादृश्य दूसरे सादृश्य को स्मृति में उत्पन्न कर देता है ।

यदि बच्चों ने कबूतर के बारे में कोई पाठ पढ़ा हो, तो उन्हें और दूसरी चिड़ियों के ऊपर पाठ दिये जा सकते हैं । इससे वे कबूतर की तुलना अन्य चिड़ियों से कर सकते हैं । इस सादृश्य-

नियम से हमनें भाषा-शिक्षा-प्रणाली में कुछ परिवर्तन कर दिये हैं। यथाः—वर्णमाला पढ़ाने के स्थान में हम ऐसे शब्द पढ़ाते हैं, जिनका उच्चारण तथा स्वरूप एक दूसरे के सदृश हों। प्राचीन शिक्षा-प्रणाली में सबसे प्रथम वर्णमाला ही सिखाई जाती थी। अब वर्णमाला के स्थान में एक रूपवाले तथा वाक्यों में प्रयुक्त शब्द पढ़ाए जाते हैं। अंकगणित के पढ़ाने में यह ध्यान रक्खा जाता है कि साधारण भिन्न से दशमलव भिन्न और प्रति सैकड़ा इत्यादि के नियमों से बच्चों को सादृश्य बताए जायँ, जिससे वे समझें कि दशमलव भिन्न साधारण भिन्न की एक क़िस्म है और प्रति सैकड़ा भी साधारण भिन्न की ही दूसरी क़िस्म है। भाषा पढ़ाने में पाठ के अन्त में बच्चों से ऐसे शब्द पढ़ाए जानें लगे हैं, जिनके रूप और उच्चारण लगभग एक से होते हैं। समान उच्चारण-वाले शब्दों को पढ़ाने में बच्चों को अब ख़ूब अभ्यास दिया जाने लगा है (Phonetic Drill).

अब तक जो कुछ कहा गया है, उसका यह प्रयोजन नहीं है कि अभ्यासजन्य स्मृति को बालकों की शिक्षा से नितान्त उठा देनी चाहिए। हम सब जानते हैं कि गुणन के पहाड़े कितनी ही उत्तम रीति से बच्चों ने स्वयम् क्यों न निकाले हों; किन्तु फिर भी यह आवश्यकता होती है कि वे इन्हें किसी प्रश्न को हल करनें में झटपट प्रयोग में लाएँ, जिससे प्रश्न शीघ्र हल हो जाय। जब तक बच्चे गुणन के पहाड़ों को भली भाँति रट न लेंगे, तब तक वे उनको शीघ्रता से प्रयोग में नहीं ला सकते।

कहने का सारांश यह है कि जो कुछ बातें बच्चों से रटाई जायँ, वह पहले उन्हें खूब समझा देनी चाहिए। जिससे कि वह सुगमता-पूर्वक स्मृति में स्थित हो जायँ। जो बात हम समझ-बूझकर रटते हैं, वह शीघ्र याद होने के अतिरिक्त चिरकाल तक स्मृति में स्थित रहती है। यही कारण है कि बहुत से अंकगणित के नियम हमें अभी तक याद हैं।

तृतीय परिशिष्ट

लेखक को इस पुस्तक की रचना करने में निम्न-लिखित पुस्तकों से बड़ी सहायता मिली है । अतः वह उन पुस्तकों के रचयिताओं तथा प्रकाशकों को हार्दिक धन्यवाद देता है:—

(1) A Primer of Teaching Practice.

(2) Child Mind.

(3) The Teaching of English in India.

(4) Psychology applied to Education.

(5) Modern Ideas and Methods.

(6) Talks to Teachers on Psychology.

(7) Ground Work of Psychology.

(8) Psychological Tests c [illegible] ble Capacity.

(9) Elements of General Method.

(10) Herbartion Psychology.

(11) Science of Teaching.

(12) Psychology of Language.

(13) Psychology (Dumville.)

(14) The Practical Sanskrit Dictionary.

(15) Shabdarth Parijat.

(16) Shabd Sagar.

(17) Criticisms of my Practical Teaching * at Government Training College, Agra.

* No. 17 is not a book but it is a Practical Teaching Note Book. It is my own Note book. It contains a good many suggestions from my worthy Professors.

(18) Education on the Dalton Plan.

(19) The Rise and Progress of the Dalton Plan.

(20) Individual work in Infant's School.

(21) The Dalton Plan (a series of Lectures delivered by my learned Guru, J. D. Talibuddin Esq Principal, Training College, Agra.)

(22) The Dalton Plan (by L. N. Mathur Esq.)

(23) Human Nature and Education with special reference to India.

(24) Picture Composition (by Lewis Marsh Esq.)

(25) Picture Comp[illegible] Cooper & Co. Bombay.)

(26) Composition Teaching.

(27) Occasional Reports on Education.

(28) Suggestions for Teachers.

(29) The Teaching of English.

(30) Towards Freedom.

(31) Psychology in the Class-room.

(32) Hindi Scientific Glossary.

(33) Supervised Study.

(24) Project Method.

(35) Hindi Vyakarn (by Mr. Kamata Prasad Guru).

(36) Bhasha Bhaskar.

(37) Bhasha Prabhakar.

(38) Hindi Middle Vayakaran.

(39) Hindi Bhasha Vyakaran.

(40) Hindi Vyakaran (by Ganga Prasad Esq),

(41) Manual of Hygiene (by Mr. Banks).

(42) Chanakya Niti.

(43) Hitopdesha.

(44) Raghuvansh.

(45) Ramayan.

(46) Hindi Composition.

(47) Reading and Thinking.

(48) Read and Do Books.

(49) Scouting Games.

(50) Direct Method (by P. S. Wren Esq.)

(51) Direct Method (by L. Tipping Esq.)

(52) Psychology (by Oak Don).

(53) Story Primers (by A. Goode).

(54) Human Nature and Conduct.

(55) Modern Developments in Educational Practice.

(56) My Thirty years Teaching Experience.

(57) The unfolding of personality.

(58) Psychology (by Kirkpatric Esq.)

(59) Introduction to the Psychology of Education.

(60) Instruction Indian Schools.

(61) School Management by H. T. Knowlton Esq.

(62) The New Psychology and the Teacher.

(63) The New Psychology and the Parent.

(64) Play Method in Education.

(65) Education as a Science.

(66) Education and Morality.

(67) Instinct in Man.

(68) A manual of Psychology.

(69) The New Examiner.

(70) The Project Method of Teaching.

(71) Swasthya Vig Cooper m Prasad Brothers, Agra.)

(72) Physical Educatio.

(73) Educational Principles (by Thring).

(74) Various story readers and class Readers (in use).

(75) How to Tell Stories to Children.

(76) The History of Rural Education in U. P. (by S. N. Chaturvedi Esq.)